आपका पाठ्यक्रम

राजा शंकरशाह विश्वविद्यालय, छिन्दवाड़ा

एम. ए. हिन्दी साहित्य

चतुर्थ सेमेस्टर : प्रश्न-पत्र (तृतीय)

नाटक, निबंध एवं अन्य गद्य विधाएँ

इकाई-प्रथम

हिन्दी गद्य विधाओं का स्वरूप एवं प्रवृत्तियाँ- निबन्ध, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज, डायरी एवं फीचर लेख।

इकाई-द्वितीय

आचार्य रामचंद्र शुक्ल- चिंतामणि- कविता क्या है, श्रद्धा और भक्ति, क्रोध
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- कल्पलता, अशोक के फूल, कुट्ज।

इकाई-तृतीय

मुक्तिवोध- एक साहित्यिक की डायरी, अज्ञेय- अरे यायावर रहेगा याद,
हरिवंश राय वच्चन- क्या भूलूँ क्या याद करूँ।

इकाई-चतुर्थ

हरिशंकर परसाई- प्रतिनिधि व्यंग्य- विकलांग श्रद्धा का दौर, भोलूराम का जीव, एक दीक्षांत भाषण।

इकाई-पंचम

महादेवी वर्मा- पथ के साथी- रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'।

इकाई-1

हिन्दी गद्य विधाओं का स्वरूप एवं प्रवृत्तियाँ

प्रश्न 1. हिन्दी निबन्ध के स्वरूप एवं उसकी प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए। अथवा हिन्दी गद्य की प्रमुख विधा निबन्ध के विकास का वर्णन कीजिए।

उत्तर-

निबन्ध का अर्थ एवं स्वरूप

निबन्ध का अर्थ—निबन्ध अत्यन्त परिष्कृत और प्रौढ़ गद्य का प्रतीक है। इसका शाब्दिक अर्थ है- 'सूत्रों में आबद्ध गठी हुई रचना'।

निबन्ध शब्द हिन्दी में तत्सम शब्द के रूप में प्रयोग किया जाता है। संस्कृत के 'बंध' धातु में 'नि' उपसर्ग और 'घञ्' प्रत्यय के योग से निबन्ध शब्द निर्मित हुआ है। बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार, "निबन्ध अर्थात् पु(स:) बंधन। संलग्नता, संग्रह ग्रंथ, लेख, गीत, प्रतिबंध।" प्रामाणिक हिन्दी कोश में रामचन्द्र वर्मा ने निबन्ध शब्द का अर्थ बताते हुए लिखा है कि 'निबन्ध अर्थात् अच्छा तरह बांधने की क्रिया"। निबन्ध अर्थात् बंधन। किसी विषय का वह सविस्तार विवेचन जिसमें उससे सम्बन्ध रखने वाले अनेक मतों, विचारों, गंतव्यों आदि का तुलनात्मक और पांडित्यपूर्ण विवेचन है। निबन्ध एक प्रकार का छोटा लेख जो विद्यार्थी अपनी लेखन शक्ति और विवेचन बुद्धि बढ़ाने के अभ्यास के रूप में लिखते हैं। इन सभी व्याख्याओं के अतिरिक्त भारतीय परम्परा में निबन्ध शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम भागवत गीता में 'बांधने' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ था। सातवीं शती के सुबंधु ने वासवदत्तार मंगलाचरण में ग्रंथ रचना के अर्थ में निबन्ध शब्द का प्रयोग किया था। निबन्ध शब्द के विकास के बारे में गुलाबराय और हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि यह शब्द संस्कृत भाषा से विकसित हुआ है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "प्राचीन संस्कृत साहित्य में निबन्ध नाम का एक अलग साहित्यांग है। इन निबन्धों में धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों की विवेचना है। विवेचना का ढंग यह है कि पहले पूर्व पक्ष में बहुत से प्रमाण उपस्थित किए जाते हैं जो लेखक के अभीष्ट सिद्धान्त के प्रतिकूल पड़ते हैं। इस पूर्व पक्ष वाली शंकाओं का एक-एक करके उत्तर-पक्ष में जवाब दिया जाता है। सभी शंकाओं का समाधान हो जाने के बाद उत्तर-पक्ष के सिद्धान्त की पुष्टि में कुछ प्रमाण उपस्थित किए जाते हैं। चूँकि इन ग्रंथों में प्रमाणों का निबन्धन होता है इसलिए उन्हें निबन्ध कहते हैं।" किन्तु यह प्राचीन रूप आधुनिक रूप में महत्वहीन है, क्योंकि प्राचीनों के जैसे शास्त्रीय खंडन-मंडन की दृष्टि आज लुप्त हो चुकी है। आज अन्य बहुत सी बातों का निबन्धन किया जाता है। निबन्ध शब्द तो भारतीय परम्परा से लिया गया है, पर वह पर्याय बन गया है, ऐसे का। जिसका मूल अर्थ प्रयोग होता है। फलत: निबन्ध की आत्मा का सारतत्व भी वही है, जो अंग्रेजी के ऐसे का है।

डॉ. वार्ष्णेय के शब्दों में, "निबन्ध रचना केवल खड़ी बोली की विशेषता है। खड़ी बोली गद्य के लिए उन्नीसवीं शताब्दी और उसमें भी निबन्ध रचना की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से निबन्ध हिन्दी साहित्य का नितान्त आधुनिक रूप है।"

हिन्दी का निबन्ध शब्द अंग्रेजी के 'Essay' शब्द फ्रेंच 'Essai' से बना है- Essai का अर्थ होता है- To attempt अर्थात् प्रयास करना। 'Essay' में 'Essayist' अपने

व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करता है, अर्थात् निबन्ध में निबन्धकार अपने सहज, स्वाभाविक रूप को पाठक के सामने प्रकट करता है।

कुछ विद्वान निबन्ध, प्रबंध और लेख- इन तीनों में कोई अन्तर नहीं मानते। पर निबन्ध, प्रबंध और लेख में स्पष्ट अन्तर है। प्रबंध में व्यक्तित्व उभरकर नहीं आता। लेखक परोक्ष रूप में रहकर अपनी ज्ञानचातुरी, दृष्टिसूक्ष्मता, प्रकाशन-पद्धति और भाषा शैली उपस्थित करता है। प्रबन्ध आकार में निबन्ध से दस-बीस गुणा बड़ा भी हो सकता है। उसमें निबन्ध की अपेक्षा विद्वता अधिक रहती है। निबन्ध में अनुभूति और विचार का प्राधान्य रहता है और प्रबंध में समाजशास्त्र, लोक संग्रह और पुस्तकीय ज्ञान का प्रबंध में प्रबन्धकार अपने विषय में कुछ नहीं कहता, परन्तु निबन्धकार अपनी पसन्द-नापसन्द, आचार-विचार के संबंध में खुलकर पाठकों से विचार-विमर्श करता है।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी दोनों में अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते हैं- 'जिस ग्रंथ में एक ही विषय के प्रतिपादनीय अनेक व्याख्याएँ संग्रहीत होती थीं, उसे निबन्ध कहते थे। प्रबन्ध का क्षेत्र निबन्धन की अपेक्षा अधिक व्यापक था। प्रबन्ध में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अनेक मत संग्रहीत होते थे। शाब्दिक अर्थ के आधार पर कसावट दोनों की विशेषता मानी जा सकती है।''

निबन्ध का स्वरूप—मनुष्य आदिकाल से निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर हो रहा है। इस विकास के साथ-साथ उसके सोचने-समझने की क्षमता भी विकसित हो रही है। सृजन मानव मस्तिष्क का एक अभिन्न पहलू है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य कहीं न कहीं सृजन में लीन रहता है। साहित्य, संगीत, कला, वास्तुकला, शिल्पकला आदि सब सृजन के ही प्रत्यक्ष अनेक रूप हैं। विद्वानों का मत है कि यदि कोई मनुष्य किसी भी एक सृजन कार्य में लीन है तो उसे निश्चय ही ईश्वर का वरदान प्राप्त है। साहित्य लेखन सृजन का ही माध्यम है। साहित्य अपने युग में हर समय प्रभावी रहा है। जिसके माध्यम से हम किसी भी समय की स्थितियों को जान सकते हैं। प्राचीन काल से आज तक साहित्य का स्वरूप निरन्तर परिवर्तनशील होता रहा है। काव्य से लेकर गद्य तक की विधाओं में विविध प्रकार के बदलाव होते रहे हैं। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल विविध विधाओं में सम्पन्न रहा है। इस काल में काव्य और गद्य दोनों ही विधाएँ प्रतिष्ठित हुईं। आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के फलस्वरूप मुख्य रूप से जिन विधाओं का विकास हुआ, उनमें नाटक, उपन्यास, कहानी, जीवनी, निबन्ध और आलोचना आदि हैं। निबन्ध गद्य की सबसे महत्वपूर्ण विधा है, क्योंकि गद्य की छटा, शैली का चमत्कार, भाषा का अधिकार और व्यक्तित्व का निखार सर्वाधिक निबन्ध में देखने को मिलता है।

हिन्दी निबन्ध का उद्भव एवं विकास

आधुनिक हिन्दी गद्य विधाओं में निबन्ध का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका उद्भव भी भारतेन्दु युग से ही स्वीकार किया जाता है। कतिपय समीक्षा सदासुख लाल अथवा राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द को हिन्दी का पहला निबन्धकार मानते हैं, परन्तु एक सुव्यवस्थित एवं सुनिश्चित निबन्ध परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु हरिशचन्द्र और उनके समसामयिक निबन्धकारों से ही होता है।

हिन्दी निबन्ध के विकास को चार भागों में बाँटा गया है-

1. भारतेन्दु युग (1868 ई. से 1900 ई.)

गद्य की अन्य विधाओं के साथ ही भारतेन्दु युग से हिन्दी निबन्ध का सूत्रपात एवं विकास होता है। इस युग के निबन्धकारों में भारतेन्दु हरिशचन्द्र प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन, श्री निवासदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु हरिशचन्द्र आधुनिक हिन्दी गद्य के जन्मदाता हैं। वे इस युग के प्रतिभा सम्पन्न निबंधकार हैं। उन्होंने समाज, राजनीति, धर्म, इतिहास, साहित्य आदि विविध विषयों पर निबन्ध रचना की है। इनके यात्रा सम्बन्धी निबन्ध भी विशेष महत्व रखते हैं। जिन्दादिली, आत्मीयता एवं व्यंग्यात्मकता भारतेन्दु के निबन्ध साहित्य की विशेषताएँ हैं।

बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार कहे जा सकते हैं। भट्ट जी हिन्दी प्रदीप पत्रिका के सम्पादक थे। इनके निबन्ध भट्ट निबन्धमाला भट्ट निबन्धावली तथा साहित्य सुमन संग्रहों में संकलित हैं। विचारात्मक एवं भावात्मक दोनों प्रकार के निबन्धों की रचना में भट्ट जी सफल रहे हैं। प्रतापनारायण मिश्र इस युग के स्वच्छन्द एवं मस्तजीवी निबन्धकार हैं। इनके निबन्ध ब्राह्मण पत्रिका में प्रकाशित होते थे। प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली में इनके निबन्ध संग्रहित हैं। मनोरंजन तथा व्यंग्य इनके निबन्धों की विशेषताएँ हैं। समग्र रूप से भारतेन्दु युग के निबन्धों में हास्य-व्यंग्य, देश-प्रेम, समाज-सुधार और मनोरंजन जैसी विशेषताएँ प्रधान रूप से पाई जाती हैं।

2. द्विवेदी युग (1901 ई. से 1920 ई.)

द्विवेदी युग के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी आचार्य, समीक्षक और निबन्धकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आचार्य द्विवेदी ने सरस्वती के संपादक रहते हुए विविध विषयों पर निबन्धों की रचना की थी। उन्होंने संस्कृति, साहित्य, समाज, धर्म, शिक्षा, इतिहास आदि विषयों पर विचारात्मक एवं आलोचनात्मक निबन्धों की रचना की थी। उनके निबन्धों में निबन्ध कला के उत्कर्ष के स्थान पर विचारों एवं तथ्यों की प्रधानता है। अत: उनके निबन्ध बातों का संकलन बन गए हैं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पद्म सिंह शर्मा, बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्दनारायण मिश्र, श्यामसुन्दरदास, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अध्यापक पूर्णसिंह इस युग के प्रसिद्ध निबन्धकार हैं। इस युग के निबन्धों से निबन्ध का विचार क्षेत्र व्यापक हुआ है। विचार-प्रधान निबन्धों की रचना में इस युग के लेखक की सफलता मिली है, परन्तु भारतेन्दु युगीन आत्मीयता जिन्दादिली तथा सजीवता का इस युग के निबन्ध में अभाव है।

3. शुक्ल युग (1921 ई. से 1940 ई.)

शुक्ल युग के निबन्धकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल शीर्षस्थ हैं। आचार्य शुक्ल ने मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबन्धों की रचना की है, जो चिन्तामणि (दो भाग) में संग्रहीत हैं। शुक्ल जी के निबन्ध विचारात्मक निबन्धों का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इनमें बुद्धि और भाव का सन्तुलित समन्वय मिलता है। उत्साह, करुणा, भय आदि शुक्ल जी के मनोभाव सम्बन्धी प्रसिद्ध निबन्ध हैं। कविता क्या है? आदि इनके साहित्यिक एवं समीक्षात्मक निबन्ध हैं। शुक्ल जी की भाषा भावों और विचारों की अभिव्यक्ति में पूर्णतया सक्षम हैं।

शुक्ल युग के निबन्धकारों में बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, महादेवी वर्मा, राहुल सांकृत्यायन आदि उल्लेखनीय हैं। इन निबन्धकारों की अपनी

मौलिक विशेषताएँ हैं। बाबू गुलाबराय ने आत्म-परक निवन्धों की रचना की है। महादेवी के निबन्ध संस्मरणातमक हैं। राहुल के निवन्धों में विषय-वैविध्य है। सियारामशरण गुप्त के निबन्ध वैयक्तिक हैं। इस युग में श्रीराम शर्मा ने आखेट विषयक निवन्ध लिखे हैं। डॉ. रघुवीर सिंह के भावात्मक निवन्ध भी प्रसिद्ध हैं। शुक्ल युग के इन निवन्धकारों में विचारों की गम्भीरता के साथ-साथ भाषा-शैली की प्रौढ़ता भी मिलती है।

4. शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्ध (1940 ई. से अब तक)

शुक्लोत्तर युग के निवन्धकारों में हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने ललित निवन्धों के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्हें सांस्कृतिक चेतना का निवन्धकार माना जा सकता है। प्राचीन और नवीन का सामंजस्य उनकी उल्लेखनीय विशेषता है। अशोक के फूल, कुटज, कल्पलता, आलोक पर्व आदि संग्रहों में द्विवेदी जी के निवन्ध संग्रहित हैं। उनकी भाषा प्रौढ़ हैं और शैली में व्यंग्य-विनोद। इस युग के अन्य निवन्धकारों में वासुदेवशरण अग्रवाल, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, भगतशरण उपाध्याय, जैनेन्द्र, रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, डॉ. सत्येन्द्र आदि के नाम भी पर्याप्त चर्चित है।

विगत चार दशकों में हिन्दी निवन्ध के क्षेत्र में कतिपय नई प्रतिभाओं का आविर्भाव हुआ है। इन्होंने ललित निवन्ध के मार्ग को प्रशस्त किया है। इन निवन्धकारों में डॉ. विद्यानिवास मिश्र, धर्मवीर भारती, नामवर सिंह, शिवप्रसाद सिंह, श्रीलाल शुक्ल, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, हरिशंकर परसाई, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने निवन्ध के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। इन्होंने आचार्य द्विवेदी की सांस्कृतक-साहित्यिक ललित निवन्ध- परम्परा को विकसित किया है। छितवन की छाँह, कदम की फूली डाल, तुम चन्दन हम पानी आदि मिश्र जी के निवन्ध संग्रह हैं। इनके निवन्धों में अनुभूति और चिन्तन का मेल है और भाषा में लालित्य और प्रवाह है। हरिशंकर परसाई हास्य व्यंग्य प्रधान निवन्धों के लिए प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार ललित निवन्ध का उज्जवल कहा जा सकता है।

हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

हिन्दी निवन्ध, भाषा की तरह, समय के साथ विकसित हो रहा है। आधुनिक युग में, निवन्धों में अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ देखी जा रही हैं–

1. विषयवस्तु में परिवर्तन

- पहले, हिन्दी निवन्धों में साहित्यिक आलोचना, सामाजिक मुद्दों और ऐतिहासिक घटनाओं पर भी ध्यान केन्द्रित किया जाता था।
- आजकल, विषयों का दायरा काफी बढ़ गया है। लेखक अब निम्नलिखित विषयों पर भी लिखते हैं–

मनोविज्ञान—मानसिक स्वास्थ्य, तनाव, अवसाद आदि।
विज्ञान और तकनीकी—कृत्रिम बुद्धिमत्ता, रोबोटिक्स, अंतरिक्ष यात्रा आदि।
पर्यावरण—जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, वन-विनाश आदि।
अन्तरिक्ष—ग्रहों की खोज, अन्तरिक्ष यात्रा, अन्तरिक्ष विज्ञान आदि।
व्यक्तिगत अनुभव—यात्रा, बचपन की यादें, जीवन के अनुभव आदि।

2. शब्दावली और शैली पर प्रभाव—नई प्रवृत्तियों के कारण, हिन्दी निवन्धों की शब्दावली और शैली में भी परिवर्तन हो रहा है। आइए देखें कुछ महत्वपूर्ण बन्दु-

• **सरल और स्पष्ट भाषा**—पाठकों को आकर्षित करने के लिए अब कठिन और जटिल शब्दों के प्रयोग से बचा जाता है। लेखक सरल, आधुनिक हिन्दी का प्रयोग करते हैं, जिसे आम पाठक आसानी से समझ सकें।

• **अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग**—कुछ तनकीकी विषयों पर लिखते समय, अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग अपरिहार्य हो जाता है। हिन्दी में ऐसे शब्दों के पर्यायवाची शब्दों के विकास की आवश्यकता है।

• **लाक्षणिक भाषा और मुहावरों का प्रयोग**—कुशल लेखक अभी भी अपनी रचना को रोचक बनाने के लिए लाक्षणिक भाषा और मुहावरों का प्रयोग करते हैं। हालाँकि, पाठकों की समझ को ध्यान में रखते हुए उनका प्रयोग सन्तुलित होना चाहिए।

• **विविध शैलियों का प्रयोग**—लेखक पाठकों को बाँधे रखने के लिए विभिन्न शैलियों का प्रयोग करते हैं, जैसे- वर्णनात्मक, सूत्रात्मक, विनोदात्मक आदि।

3. शैली में बदलाव

- पहले, हिन्दी निबन्धों में औपचारिक और संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग होता था।
- अब, लेखन शैली अधिक सरल और बोलचाल की भाषा के करीब हो गई है।
- लेखक निम्नलिखित का प्रयोग करते हैं-

आधुनिक हिन्दी—सरल शब्दावली
चुटकुले और मुहावरे—भाषा को रोचक बनाने के लिए
कथात्मक शैली—निबन्ध को आकर्षक बनाने के लिए
व्यंग्य और हास्य—विषय को प्रभावी बनाने के लिए

4. डिजिटल युग का प्रभाव

- सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के प्रभाव से हिन्दी निबन्धों की शैली में बदलाव आया है।

संक्षिप्त निबन्ध—लोकप्रिय हो रहे हैं।
विषयों का चयन—अक्सर ऑनलाइन ट्रेंड और विचारों पर आधारित होता है।
भाषा में बदलाव—इमोजी, हैशटैग और संक्षिप्त रूपों का प्रयोग।

5. क्षेत्रीय भाषाओं का समावेश

- लेखक अब अपनी भाषा में स्थानीय रंग लाने के लिए क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग करते हैं।
- यह भारत की समृद्ध भाषाई विविधता को दर्शाता है और अधिक लोगों से जुड़ने में मदद करता है।

6. वैश्विक मुद्दों पर ध्यान

- हिन्दी निबन्ध अब केवल राष्ट्रीय चिन्ताओं तक सीमित नहीं है।
- लेखक अब निम्नलिखित वैश्विक मुद्दों पर भी लिखते हैं-

जलवायु परिवर्तन—जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, समाधान आदि।
आतंकवाद—आतंकवाद के कारण, प्रभाव, रोकथाम आदि।
सामाजिक असमानता—गरीबी, भेदभाव, शिक्षा का अभाव आदि।
मानवाधिकार—महिलाओं के अधिकार, बच्चों के अधिकार, समुदाय के अधिकार आदि।

7. निबन्ध लेखन को बढ़ावा देना—हिन्दी निबन्ध लेखन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रयास किए जा रहे हैं-

• **निबन्ध लेखन प्रतियोगिताएँ**—स्कूलों, कॉलेजों और साहित्यिक संगठनों द्वारा निबन्ध लेखन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है, जिससे युवा लेखकों को प्रोत्साहन मिलता है।

• **लेखन कार्यशालाएँ**—लेखन कार्यशालाओं के माध्यम से नए लेखकों को निबन्ध लेखन के कौशल सीखने में मदद मिलती है। अनुभवी लेखक मार्गदर्शन देकर उनकी लेखन शैली को निखारते हैं। ■

प्रश्न 2. आत्मकथा एवं जीवनी से आप क्या समझते हैं? इनके स्वरूप एवं विकास प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

अथवा

आत्मकथा से क्या तात्पर्य है? एक अच्छी आत्मकथा की विशेषताएँ बताइए।

अथवा

जीवनी से क्या अभिप्राय है? हिन्दी गद्य विधा में जीवनी के उद्भव एवं विकास का वर्णन कीजिए।

उत्तर-

आत्मकथा का अर्थ एवं परिभाषा एवं स्वरूप

आत्मकथा एक कलात्मक एवं मानवीय विधा है। आत्मकथा का स्वरूप व्यक्ति केन्द्रित होता है। आत्मकथा में लेखक स्वयं नायक होता है। सम्पूर्ण कथा उसके इर्द-गिर्द घुमती है। आत्मकथा गद्य का वह रूप है, जिसमें लेखक अपने जीवन-संघर्ष, उतार-चढ़ाव, गुणों-अवगुणों, सफलता-असफलताओं, पारिवारिक परिस्थितियों, परिवेश, वंश, योग्यता, कठिनाइयों, उपलब्धियों एवं अपने प्रेरणा स्त्रोतों आदि का स्वयं निःसंकोच भाव से यथार्थ रूप में कलात्मक लेखन करता है।

आज हिन्दी साहित्य में आत्मकथा हिन्दी की सभी विधाओं से रोचक एवं सजीव विधा है, क्योंकि अन्य सभी विधाओं में साहित्यकार व्यक्तिगत नीतियों अथवा सामाजिक समस्याओं का ही वर्णन करता है, जबकि आत्मकथा में वह स्वयं के नितान्त निजी व आत्मिक तथ्यों का ही उद्घाटन करता है। आत्मकथा व्यक्ति का वह अन्तःसाक्ष्य है, जो उसकी सम्पूर्ण जीवन-यात्रा का प्रमाणिक, यथार्थपूर्ण एवं आत्मिक दस्तावेज प्रस्तुत करती है।

आत्मकथा विधा के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय कोषों तथा विद्वानों ने अपनी-अपनी परिभाषा प्रस्तुत की है।

आत्मकथा अंग्रेजी के 'Auto-Biography' का हिन्दी रूपान्तरण है। यहाँ Auto का अर्थ आत्मा और Biography का अर्थ जीवनी है। इस प्रकार से आत्मकथा का अर्थ हुआ 'सम्बद्ध व्यक्ति द्वारा अपने जीवन की कहानी स्वयं लिखी जाना। अथवा यह भी कह सकते है कि 'स्व' के जीवन पर स्वरचित कथा ही आत्मकथा होती है।''

आधुनिक हिन्दी शब्दकोश में, ''आत्मकथा शब्द स्त्री लिंगी संज्ञा में दिया गया है, तथा उसका अर्थ स्वयं द्वारा लिया गया जीवन चरित्र, जीवनी, आपबीती, आत्मकहानी।'' आदि विकल्प स्वरूप लिया गया है। नूतन पर्यायवाची एवं विपर्याय कोश में आत्मकथा का अर्थ ''आत्मचरित्र, आत्मवृत्त, आत्मवृत्तांत, आप-बीती, जीवनी, स्वकथा'' आदि के रूप में लिया गया है। आत्मकथा शब्द मूलतः अंग्रेजी शब्द ऑटोबायोग्राफी के हिन्दी अनुवाद के तौर पर

स्वीकृत किया गया है। भारतीय संस्कृत साहित्य में आत्मवृत्तकथनम और आत्मचरितम् शब्द अवश्य मिलते हैं। जो आत्मकथा के अर्थ में स्वीकृत शब्द हैं। ऑटोबायोग्राफी के लिए हिन्दी में अनेक शब्द प्रचलित हैं- आत्मकथा, आत्मवृत्त, आत्मगाथा, आत्मचरित, आत्मचरित्र, आत्मचरित्र-चित्रण, स्व-कथा, आत्म-जीवनी, आत्मवृत्तांत, आत्मचरित रचना, आत्मचरित जीवन, आत्मनेपद, आत्मकहानी, आपबीती, मेरी कहानी, राम कहानी, अपनी कहानी, जीवनयात्रा, अपनी खबर, जीवन कहानी आदि। लेकिन इन सभी शब्दों के मध्य आत्मकथा समस्त पद ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया है और ऑटोबायोग्राफी के अनुवाद रूप में आत्मकथा शब्द को व्यापक स्वीकृति मिली है।

3. राजनैतिक आत्मकथाएँ—हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसी आत्मकथाएँ आती हैं, जो राजनैतिक पुरुषों द्वारा लिखी गयी है। राजनैतिक पुरुषों में महात्मा गाँधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं डॉ. राजेन्द्र प्रसाद प्रमुख हैं। राजनैतिक नेताओं का जीवन भी संघर्ष का जीवन रहा है। उत्थान और पतन उनके जीवन के दो समान महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। भाग्य का झकोरा उन्हें किस समय किस पक्ष की ओर ले जाकर पटकता है, यह कुछ नहीं कहा जा सकता। इन लोगों की आत्मकथाओं का सौन्दर्य भाग्य के उसी उत्थान और पतन की कहानी की सच्चाई से व्यक्त करने में निहित करता है। इन महापुरुषों द्वारा लिखी हुई सभी आत्मकथाएँ इसी श्रेणी में आती हैं।

4. धार्मिक आत्मकथाएँ—कुछ धार्मिक पुरुषों द्वारा लिखी हुई आत्मकथाएँ भी प्राप्त होती हैं। हरिभाऊ उपाध्याय की साधना के पथ पर एवं भवानीदयाल सन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा' इसी श्रेणी में आती है। संसार में बहुत से महान व्यक्ति हुए हैं, जो अपने जीवन के आरम्भिक काल में कुछ अधिक उच्छंखल रहे, किन्तु किन्हीं विशेष प्रेरणा और परिस्थितियों के फलस्वरूप उनके जीवन की गतिविधि सहसा बदल गई। आत्मकथाओं में हमें आत्मनिवेदन और आत्मविवेचना के साथ-साथ इन परिस्थितियों और घटनाओं का मार्मिक चित्रण भी मिलता है, जिन्होंने उनके जीवन की गतिविधि बदलने में योग दिया और उनके जीवन को सफल बना दिया। ये सभी आत्मकथाएँ इसी कोटि की हैं।

5. साहित्यिक आत्मकथा—साहित्यिक व्यक्तियों द्वारा लिखी गई आत्मकथाएँ साहित्यिक आत्मकथा की कोटि के अन्तर्गत आती हैं। यहाँ साहित्यिक व्यक्ति से अभिप्राय उन व्यक्तियों से है, जिन्होंने हिन्दी के विकास में अपनी कृतियों द्वारा योगदान दिया है। ऐसी श्रेणी में कवि, कथालेखक एवं आलोचकगण आते हैं।

आत्मकथा की विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर आत्मकथा की स्वरूपगत विशेषताएँ एवं तथ्य हमारे सामने उभरकर आये हैं, ये निम्नलिखित हैं-

1. आत्मकथा स्वयं के द्वारा लिखा गया स्वयं के जीवन का इतिहास है।
2. लेखक के आत्मानुभवों की प्रस्तुति होने व अन्तर्जगत से सम्बन्धित होने के कारण यह एक आत्मपरक विधा है।
3. स्व के जीवन का इतिहास लिखते समय लेखक (सामाजिक प्राणी होने के कारण) यथासम्भव बाह्य परिवेश तथा स्वयं से सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों का भी चित्रण आत्मकथा में करता है। इस प्रकार वह अन्तर्जगत् तथा बाह्य जगत् में सन्तुलन बनाए रखता है।

4. आत्मकथा में लेखक अपने सम्पूर्ण जीवन का विवरण न देकर कुछ विशेष अथवा चुनिन्दा घटनाओं को, जो उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक हुआ करती हैं, क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करता है।
5. आत्म-चरित्र लेखक अपनी आयु की अन्तिमावस्था में मानसिकता के परिपक्व होने पर मिलता है।
6. आत्मकथा लिखने में लेखक के विगत जीवन की स्मृतियाँ मुख्य रूप से सहायक हुआ करती है।
7. स्वयं भोक्ता होने के कारण आत्मकथाकार अपने जीवन की घटनाओं को सत्य एवं ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करता है।
8. यह सत्य ऐतिहासिक सत्य ने होकर लेखक का अनुभवगत सत्य हुआ करता है।
9. अपने जीवन के रहस्यों को ईमानदारी से पाकों के समक्ष रखने के लिए तटस्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।
10. यह नायक के सम्पूर्ण विवेचन का सुदृढ़ आधार है।
11. अपने मनोभावों को परखकर प्रकाशित करने का उपक्रम है।
12. प्रौढ़ता की प्राप्ति के बाद अतीत की पुनरावृत्ति है।
13. आत्मेतर पात्रों का प्राय: "आत्म" में अन्तर्भाव हो जाता है।
14. आत्मकथा दर्पण के समान स्पष्ट, सत्य, निश्छल, सहज, सरल, निर्भीक अभिव्यक्ति है।
15. यह विधा व्यक्तिगत अनुभवों, अनुभूतियों व संवेदनाओं की त्रिवेणी है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आत्मकथा में व्यक्ति के जीवन-संघर्ष, वैयक्तिकता, आत्मोद्घाटन, आत्मविश्लेषण आदि का यथार्थ एवं प्रमाणिक वर्णन होता है।

आत्मकथा का उद्भव एवं विकास

आत्मकथा गद्य साहित्य की अत्यन्त नवीन विधा है। इतिहास गवाह है कि भारतीय परम्परा आत्मप्रचार की अपेक्षा आत्मगोपन की ओर अधिक उन्मुख रही है। आत्मकथा साहित्य के संकेत हम प्राचीन काल में संस्कृत के साहित्य से मिलने आरम्भ हो गए थे, परन्तु आत्मकथा साहित्य का जन्म आधुनिक काल में ही हुआ है। संस्कृत के प्राचीन साहित्यकारों की आध्यात्म के प्रति रुचि होने के कारण उस काल में इस विधा के उदाहरण अत्यल्प हैं। फिर भी इस प्रकार की रचनाओं का सर्वथा अभाव नहीं रहा। इसके बीज हिन्दी से पूर्व संस्कृत, पाली तथा अपभ्रंश भाषा साहित्य में भी विद्यमान हैं, जिन पर पृथक्-पृथक् विचार करना असंगत न होगा।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में आत्मकथात्मक संकेत

संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम कवि माघ ने शिशुपाल वध की रचना की थी। इसमें उन्होंने अपना तथा पितामाह का परिचय दिया है। इसमें कवि ने अपने वंश का गौरव-गान भी किया है। इसी प्रकार कवि भट्टि ने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैंने श्रीधर के द्वारा शासित वल्लभी में भट्टि काव्य की रचना की है। श्रीधर सेन ने इन्हें कुछ भूमि दान मे दी थी। इस बात का उल्लेख एक शिलालेख में मिलता है। कवि भट्टि वल्लभी के शासक द्वारा प्रशंसित थे। इसके पश्चात् महाकवि बाण में आत्मकथा की प्रवृत्ति मिलती है। बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित और कादम्बरी दोनों में ही उन्होंने अपने जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख किया

है। इसमें इनके बचपन, देशाटन, परिवार एवं इनकी ज्ञान-पिपासा का वर्णन है। 'हर्षचरित' को गद्यमय चरित प्रधान ग्रंथ कहा गया है। इसमें सुप्रसिद्ध साहित्य मनीषी की वहुमुखी प्रतिभा की झलक दिखाई देती है। महाकवि वाण के पश्चात् कवि हर्ष ने 'नैषध-चरित' में अपने विषय में बहुत कुछ लिखा है। प्रत्येक सर्ग की समाप्ति के श्लोक में इन्होंनें अपना नाम 'श्री हर्ष' पिता का नाम 'श्री हरि' तथा माता का नाम 'भामल्ल देवी' वताया है। इनकी जन्मभूमि कश्मीर थी। महाकवि श्री भवभूति ने 'महावीरचरित' की रचना की। इन्होंने अपना पर्याप्त परिचय अपनी कृतियों के प्रारम्भ में दिया है। कवि का पहला नाम श्री 'नीलकंठ' है। इनके कंठ मे देवी सरस्वती का निवास था। इनके जन्म के प्रथम दिन से ही इनके चारों ओर सरस्वती की उपासना का वातावरण रहता था। इनका जन्म आठवीं शती के प्रथम पाद में हुआ था। इस प्रकार संस्कृत साहित्य आत्मकथा के जो छुटपुट विवरण मिलते हैं, वे आत्मकथा विधा की पूर्ति नहीं करते, फिर भी इन विवरणों से इतना तो स्पष्ट है कि उस काल में भी स्वयं को व्यक्त करने की इच्छा विद्यमान थी।

आधुनिक काल में आत्मकथा

आधुनिक युग में भारत में अंग्रेजी का शासन होने के कारण भारतीय जनता पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ने लगा। इस युग में राष्ट्रीयता की भावना का विकास होने लगा। इसी कारण हिन्दी साहित्य में भी राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति होने लगी। हिन्दी साहित्य में भी पद्य के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ। इसी समय साहित्य में नई विधाओं आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, डायरी, यात्रा वृत्तान्त, पत्र आदि का आगमन हुआ। यह काल आत्मकथा लेखन के लिए काफी समृद्ध रहा है। इस काल की आत्मकथाओं को चार भागों में बाँटा जा सकता है-

पूर्व भारतेन्दु एवं भारतेन्दु युग में आत्मकथा

यह काल हिन्दी आत्मकथा साहित्य के उद्भव और विकास का काल है। अध्ययन की दृष्टि से इस काल की आत्मकथाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

द्विवेदी युग में आत्मकथा

द्विवेदी युग हिन्दी आत्मकथा साहित्य का उन्नयन काल है। इस युग का नामकरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम के आधार पर किया गया है। द्विवेदी जी आत्मकथा के महत्व को भली-भाँति समझते थे। इन्होंने साहित्यकारों को आत्मकथा लिखने के लिए प्रेरित किया। इस युग में मानवतावादी विचारधारा स्थापित हुई। इसी भावना से प्रेरित होकर इस युग के साहित्यकारों ने स्वयं के व्यक्तित्व को जन-जन तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया। इस काल के लेखकों ने समष्टि के लिए व्यष्टि के उत्सर्ग की भावना पर बल दिया।

छायावादी युग में आत्मकथा

छायावादी युग मे साहित्य की सभी विधाओं का विकास हुआ। हिन्दी गद्य साहित्य में अन्य विधाओं के साथ आत्मकथा साहित्य में भी बहुत उन्नति की। इस समय के आत्मकथाकारों ने सामाजिकता के स्थान पर वैयक्तिक अनुभूतियों को स्थान दिया। छायावादी युग के आत्मकथाकारों ने सामाजिक बंधनों को तोड़कर पश्चिम के स्वच्छन्दतावादी विचारों को ग्रहण किया।

छायावादोत्तर युग में आत्मकथा

छायावादोत्तर युग में आत्मकथा साहित्य ने बहुत प्रगति की है। इस युग में साहित्यकारों के साथ-साथ अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने भी अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं। आज के युग में बहुत से व्यक्ति स्वयं को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहते हैं। इस प्रस्तुति का एकमात्र साधन आत्मकथा है। इस युग में आत्मकथा साहित्य ने परिणाम और गुणवत्ता दोनों दृष्टियों में खूब उन्नति की है।

निष्कर्ष—निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साहित्य और व्यक्ति का सम्बन्ध आदिकाल से चला आ रहा है और व्यक्तित्व सदैव ही अपनी भावनाओं और विभिन्न जीवनानुभवों की शाब्दिक अभिव्यक्ति के लिए आकुल रहा है। जब व्यक्ति प्रौढ़ावस्था में अपने विगत जीवन की स्मृतियों से व्यथित हों, उन्हें शब्द-बद्ध करना चाहता है तो उसका प्रतिफलन आत्मकथा के रूप में होता है। आत्मकथा आज एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है और यही कारण है कि आधुनिक युग में इस विधा का महत्वपूर्ण स्थान है।

जीवनी

किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृत्तान्त को जीवनी कहते हैं। जीवनी इतिहास, नायक और इतिहास की त्रिवेणी होता है। किसी विशेष व्यक्ति के जीवन-चरित्र को कलात्मक एवं प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करना जीवनी-लेखक का आदर्श होता है। जीवनी में लेखन की शैली वर्णनात्मक होती है। जीवनी में अतीत का चित्रण और सत्य घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण मिलता है। जीवनी में लेखक व्यक्ति के जीवन संघर्षों के साथ-साथ उसके आन्तरिक स्वभाव और व्यक्तित्व का चित्रण करता है।

बाबू गुलाबराय ने जीवनी के उपयुक्त स्वरूप को ध्यान में रखते हुए उसकी परिभाषा इन शब्दों में प्रस्तुत की है- "जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं वरन् चित्रण है। वह साहित्य की विधा है और उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण है। वह एक मनुष्य के अन्तर और बाहरी स्वरूप का कलात्मक निरूपण है।

जीवनी के आवश्यक तत्व

1. कलात्मकता एवं प्रमाणिकता—जीवनी एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसमें किसी व्यक्ति विशेष के जीवन की कथा किसी अन्य लेखक के द्वारा तटस्थ भाव से प्रस्तुत की गई कलात्मक रचना होती है। लेखक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन और यथेष्ट जीवन की जानकारी प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत करता है।

2. आलोचना एवं गुण-विवेचना—जीवनी में लेखक व्यक्ति के जीवन संघर्षों के साथ-साथ उसके आन्तरिक स्वभाव और व्यक्तित्व का चित्रण करता है। लेखक नायक के जीवन में छिपे उसके विकास को, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को, उसकी मुख्य जीवन धारा को खोलकर पाठकों के सामने रख देता है। ऊपर से मनुष्य के दिखाई पड़ने वाला रूप को दिखाकर ही जीवनी लेखन कला संतुष्ट नहीं होती, वह उस आवरण को भेदकर अंत: स्वरूप और आन्तरिक सत्य को प्रत्यक्ष करती है।

3. वस्तुनिष्ठता—जीवनी में लेखक बाहर से भीतर की ओर प्रविष्ट होता है। जीवनी लेखक को कुछ अनिवार्यताओं का ध्यान रखना पड़ता है। वह उपन्यास या कहानी की तरह कल्पना की उड़ान नहीं भर सकता, नहीं निबन्ध या आलोचना की तरह जीवन को कसौटियों

पर कस सकता है। उसे तटस्थ होकर जीवन के सभी पक्षों को यथेष्ट ईमानदारी से दिखाना पड़ता है।

उद्भव एवं विकास—जीवनचरित के प्राचीनतम रूपों के उदाहरण किसी भी देश के धार्मिक, पौराणिक आख्यानों और दंतकथाओं में मिल सकते हैं, जिनमें मानवीय चरित्रों, उनके मनोविकारों और मनोभावों का रूपायन हुआ हो। अधिकांशत: दैवी और मानवीय चरित्रों में जीवनचरित्र के कुछेक लक्षण मिल जाते हैं, जिनका निर्माण उस काल से ही होता चला आ रहा है, जब लेखनकला का विकास भी नहीं हुआ था।

प्राचीन समय में पत्थरों पर उकेरकर कई जगह जीवन-चरित लिखे गए। मंदिरों तथा कुछ राजप्रासाद की दीवारों पर खुदाई कर विभिन्न चिन्हों तथा प्रचलित भाषाओं के माध्यम से ये चरित लिखे गए। अशोक के समय तथा कुषाण काल में मन्दिरों की दीवारों तथा खंभों पर ऐसा चरित लिखवाना प्रसिद्ध हैं। गुप्त वंश में भी यह परम्परा चली। बाणभट्ट लिखित हर्षचरित इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

आदिकाल में प्रचलित रासो-साहित्य भी इसके अन्तर्गत ही आता है। अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में इस तरह के चरित-ग्रंथ लिखना उस समय के कवियों में बहुत प्रचलित था। इस परम्परा का पालन रीतिकाल के कवियों और राजाश्रित आचार्यों ने भी खूब किया। पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, शिवा बावनी, छत्रसाल शतक आदि इसके अन्तर्गत ही आयेंगे।

अनेक मुगल बादशाहों के भी फारसी में लिखे जीवन चरित प्रसिद्ध हुए। दरबारी कवियों और विद्वानों के लिखे ये चरित कलात्मक हैं। जैसे- आईने-अकबरी, जहाँगीरनामा।

आधुनिक युग में गद्य के विकास के साथ ही जीवनी का भी विकास हुआ। गोपालचन्द्र शास्त्री द्वारा 1881 में लिखित 'दयानन्द दिग्विजय' हिन्दी की प्रथम जीवनी मानी जाती है।

शरतचन्द्र पर विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखी 'आवारा मसीहा', गिरिराज किशोर द्वारा गाँधीजी पर लिखी जीवनी 'पहला गिरिमिटिया', रामविलास शर्मा द्वारा 'निराला की साहित्य साधना' उच्च कोटि का जीवनी साहित्य है। ■

प्रश्न 3. हिन्दी में रिपोर्ताज, यात्रा-वर्णन (वृत्तान्त) एवं संस्मरण का अर्थ, स्वरूप एवं विकास प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर-

रिपोर्ताज

रिपोर्ताज का तात्पर्य—रिपोर्ताज शब्द फ्रांसीसी भाषा का है। अंग्रेजी भाषा के 'रिपोर्ट' शब्द से भी इसका गहरा सम्बन्ध है। फिर भी, कुछ अर्थों में यह इससे भिन्न है। इसका पर्याय नहीं (जैसा की भ्रमवश मान लिया जाता है)। साधारण रूप से, किसी घटना का यथासाध्य वर्णन करना रिपोर्ट है और उसमें साहित्यिकता का समावेश हो जाने पर वह रिपोर्ताज बन जाती है। अतएव रिपोर्ट में केवल यथातथ्यता होती है, जबकि रिपोर्ताज में साहित्यिकता का होना भी अनिवार्य है। इसी से, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने रिपोर्ताज को परिभाषित करते हुए कहा है, 'रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं।'

हिन्दी में रिपोर्ताज का विकास—भारत में रिपोर्ताज की विधा पाश्चात्य साहित्य विशेषकर रूसी साहित्य से आई है। अभी यह अल्पवस्था में ही है। कारण यह है कि इनका श्री गणेश द्वितीय महायुद्ध (सन् 1939-42) से होता है। डॉ. देवीशरण रास्तोगी के शब्दों

में, "इसका इतिहास द्वितीय महायुद्ध से पीछे नहीं जा सकता। द्वितीय महायुद्ध का रण-स्थल ही इसका जन्मभूमि है। द्वितीय महायुद्ध में कितने ही विदेशी पत्रकारों और साहित्यकारों ने रण-स्थल से वहाँ का जो आँखों देखा हाल भेजा, उसी में साहित्य रचना की इस विधा का मूलोदगम स्थित है।" डॉ. रामविलास शर्मा भी इसी मत के समर्थक है।

हिन्दी में रिपोर्ताज-सृजन का श्रीगणेश बंगाल के अकाल, बम्बई के नाविक विद्रोह और तत्कालीन जन-आन्दोलन से हुआ। इस क्षेत्र में विशेष सफलता प्राप्त की। प्रकाशचन्द्र गुप्त, रांगेय राघव और प्रभाकर माचवे ने। इनके अतिरिक्त इस क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कुछ अन्य लेखक हैं- अमृतराय, शिवदानसिंह चौहान, हंसराज रहबर, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' तथा कुबेरनाथ राय। इतिहास क्रम में यूँ तो हिन्दी में रिपोर्ताज का श्रीगणेश सन् 1938 में (रूपाम- दिसम्बर अंक में) प्रकाशित श्री शिवदानसिंह चौहान के लक्ष्मीपुरा' मे ही हो गया था, फिर भी इस क्षेत्र में गिने-चुने प्रयत्न ही हो सके। स्वतंत्रता के पश्चात् अवश्य घटना प्रधान (यथा प्रकाशचन्द्र के 'स्वराज्य भवन, बंगाल का अकाल), कथात्मक (अश्क का 'पहाड़ों में प्रेममय संगीत), व्यंग्यात्मक (रामनारायण उपाध्याय का 'अमीर इरादे गरीब इरादे) आदि विविध प्रकार के रिपोर्ताज लिखे गए। प्रमुख लेखक जो अभी इस दिशा मे सक्रिय हैं, वे हैं- रेणु, विवेकी राय, कैलाश नारद, निर्मल वर्मा, सतीश कुमार, श्रीकान्त वर्मा तथा कमलेश्वर। अधिकांशत: अभी यह विधा पत्र-पत्रिकाओं के कॉलमों तक बद्ध है। लेखकों की इसके प्रति उदासीनता, व्यक्तिवादिता तथा पूर्वाग्रह आदि भी इसकी अल्पता के कारण हैं। नि:संदेह आवश्यकता, पश्चिमी पत्रकारों की भाँति, इस विधा को अपनाने और अधिकाधिक विकसित करने की है।

यात्रा-वर्णन (वृत्तान्त)

यात्रा-वर्णन का तात्पर्य और स्वरूप-मानव की एक आदिम-स्वाभाविक वृत्ति है- यायावरी अर्थात् घुमक्कड़पन। यूँ तो मानव का जीवन भी एक यात्रा ही हैं तथा जीवन में वैसे भी प्राय: हर मानव नाना स्थानों की यात्रा करता है, किन्तु इनको यात्रा साहित्य से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता। सच में तो यायावरी और उसके फलस्वरूप रचित साहित्य का मूल प्रेरक स्त्रोत है- सौन्दर्य बोध जो स्वयं अपने में एक आदिम-स्वाभाविक वृत्ति है। एकदम सच तो डॉ. ओमप्रकाश दीक्षित के शब्दों में यह है कि सौन्दर्यबोधक मूलक दृष्टि से अविष्ट और उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जाते हैं। उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को ही यात्रा-साहित्य कहा जाता है। साहित्यिक यायावर को एक अद्‌भत आकर्षण अपनी ओर खींचता है। वह मंत्रमुग्ध की भांति उस ओर खिचता चला जाता है और निरन्तर मुक्त मनोवृत्ति के साथ घूमता रहता है। उसकी सम्पूर्ण यात्रा निस्संग भाव से होती है। दृष्टिकोण उसका यायावरी होता है। इस प्रकार यायावरी और सौन्दर्य-बोध की वृत्तियों से परिचालित व्यक्ति साहित्यिक वृत्ति अपने आप पा जाता है। इसकी अभिव्यक्ति करना ही यात्रा-वर्णन कहलाता है। कुछ विद्वान इसको यात्रा-संस्मरण या यात्रा-साहित्य भी कहते हैं। इसमें स्थान या घटना की प्रधानता होती है। इसी से इसमें व्यक्ति (लेखक) गौण और स्थान या घटना प्रमुख हो जाते हैं। ऐसा न होने पर यात्रा-वर्णन मात्र संस्मरण बनकर रह जाता है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (हिन्दी साहित्य कोष- भाग 1) ने भी कहा है, यात्रा में स्वत: स्थान, दृश्य, प्रदेशष नगर, गाँव मुखरित होते हैं, उनका अपना व्यक्तित्व उभरता है।

इस पथ पर मिलने वाले नर-नारी, बच्चे-बूढ़े अपने नानाविध चरित्रों के साथ उनके व्यक्तित्व को अधिक स्पन्दित और मुखरित करते हैं। मार्ग में पड़ने वाले मन्दिरों, मस्जिदों, मीनारों, विजय स्तम्भों, स्मारकों, मकबरों, किलो और पुराने महलों से संस्कृति, कला और इतिहास के उपकरणों को जुटाकर रखना ही होता है। यात्री अपनी यात्रा के मानसिक प्रतिक्रियाओं के रूप में ही ग्रहण करता है। अपने को केन्द्र में रखकर भी प्रमुख न होने देना साहित्य यायावर (घुमक्कड़) का कर्तव्य है, क्योंकि यदि लेखक का व्यक्तित्व उभरेगा या अन्य सब गौण हो जाएगा और यात्रा-साहित्य न होकर आत्मचरित ही रह जाएगी, यात्रा-संस्मरण न रहकर आत्मसंस्मरण हो जाएगा। वास्तव में, यात्रा वर्णन में सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति और अर्ण्यवस्तु को रोचक बनाकर प्रस्तुत करने की क्षमता होनी चाहिए। कारण यह है कि इन गुणों के होने पर ही लेखक पाठक को जिज्ञासा और आश्चर्य-वृत्ति को सन्तुष्ट कर सकेगा।

यात्रा-वर्णन के प्रकार—यात्रा-वर्णन का वर्गीकरण तीन आधारों पर किया गया है-

(1) विषय-वस्तु के आधार पर, (2) साधनों के आधार पर तथा (3) उपलब्ध रूप के आधार पर। विषय-वस्तु के आधार पर, डॉ. सुरेन्द्र माथुर (यात्रा साहित्य का उद्‌भव और विकास नामक शोधग्रन्थ) यात्रा-वर्णन को आठ वर्गों में रखते हैं-

1. पशु-पक्षियों की यात्राएँ—जिसमें पशु-पक्षियों के माध्यम से की गई यात्राओं का वर्णन हो गया तथा 'गुलीवर की यात्राएँ'।

2. धार्मिक यात्राएँ—धर्मस्थलों के दर्शनार्थ की गई यात्राएँ तथा 'मेरी बद्रीनाथ की यात्रा' (विष्णु प्रभाकर)।

3. शिकारियों की यात्राएँ—जो शिकार करने के उद्देश्य से की जाती है, यथा 'शेर का शिकार' (वृन्दावनलाल वर्मा)।

4. सांस्कृतिक यात्राएँ—किसी देश की संस्कृति को समझाने-समझने के लिए की गई यात्रा तथा 'मेरी मास्को यात्रा' (डॉ. नगेन्द्र)।

5. साहित्यिक यात्राएँ—साहित्यकारों द्वारा साहित्यिक उद्देश्य से की गई यात्राएँ तथा 'आखिरी चट्टान तक' (मोहन राकेश)।

6. ऐतिहासिक यात्राएँ—पुरातत्व, अन्वेषण, अध्ययन एवं प्राचीन सुन्दरता के अवलोकन हेतु की गई यात्राएँ तथा 'एशिया के दुर्गम खण्डों में' (राहुल)।

7. भौगोलिक यात्राएँ—भौगोलिक ज्ञान-वृद्धि हेतु की गई यात्राएँ तथा 'ज्ञान की खोज में' (डॉ. जगदीशचन्द्र शर्मा)।

8. राजनैतिक यात्राएँ—देश-विदेश की राजनीति का अध्ययन करने, विभिन्न राजनीतिक सम्मेलनों में सम्मिलित होने तथा देशीय समस्याओं को हल करने हेतु की गई यात्राएँ यथा 'विश्व-भ्रमण' (सेठ गोविन्ददास) तथा बिना पैसे दुनिया का सफर' (सतीश कुमार)।

यात्रा के साधनों के आधार पर यात्रा-वर्णनों को जलीय, स्थलीय और आकाश-मार्गीय आदि वर्गों में रखा जाता है। कहना न होगा कि यह वर्गीकरण पूर्णतया स्थूल और असाहित्यिक है।

यात्रा-वर्णन से उपलब्ध रूप के आधार पर डॉ. सुरेन्द्र माथुर इसको-विशेषकर हिन्दी यात्रा-वर्णन के दो वर्गों में रखते हैं- (1) हस्तलिखित यात्रा-वर्णन तथा (2) प्रकाशित यात्रा-वर्णन। (भारतेन्दु युग से अब तक का यात्रा-वर्णन)। यहाँ पर एक बात और दृष्टव्य है। भारत में यात्रा-वर्णन प्राय: दो रूपों में पाया जाता है- (1) इतिहास रूप में तथा (2) साहित्यिक

रूप में। प्रथम प्रकार का यात्रा-वर्णन पूर्णतया इतिहास की सम्पत्ति है। इस वर्ग में प्राचीनकालीन राजपूतों, तीर्थयात्रियों आदि के यात्रा-वर्णन आते हैं। यह पूर्णतया तथ्य प्रधान और असाहित्यिक है। अतएव, साहित्य-वर्ग में नहीं आता। दूसरे यात्रा-वर्णन पूर्णतया साहित्यिक है और इसी रूप का यात्रा-वर्णन 'यात्रा-साहित्य' में आता है। यही साहित्य की नवीन विधा है।

हिन्दी-यात्रा-वर्णन का विकास—भारत में यात्रा-वर्णन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। अधिकांशत: वह इतिहास है और उसी वर्ग में आती है। जहाँ तक प्रश्न है, हिन्दी में साहित्यिक यात्रा-वर्णन का, उसके विकास अथवा परम्परा को सुविधा की दृष्टि से तीन वर्गों में रख सकते हैं-

(1) प्रारम्भिक युग (2) विकास युग (3) वर्तमान युग।

प्रारम्भिक युग में हमने हस्तलिखित यात्रा-वर्णनों को रखा है। डॉ. सुरेन्द्र माथुर इसका समय संवत् 1600 से संवत् 1966 तक मानते हैं। इन यात्रा-वर्णनों की भाषा ब्रज है और शैली कहीं गद्यात्मक तो कहीं पद्यात्मक। उपलब्ध सामग्री के आधार पर इस वर्ग के प्रमुख यात्रा-वर्णनकार और रचनाएँ हैं- एक वल्लभ सम्प्रदायी और दूसरी (गोकुलीय) तथा पं. वाचस्पति (बद्रीनारायण सुगम यात्रा)। इसी वर्ग में किन्हीं अज्ञात लेखकों की 'सेठ पद्मसिंह की यात्रा' और 'बात दूर देश की' जैसी रचनाएँ भी आती हैं।

विकास युग—हिन्दी में साहित्य यात्रा-वर्णनों का श्रीगणेश होता है- भारतेन्दु युग से। स्वयं भारतेन्दु का नाम इसमें सर्वप्रथम आता है। उनके जिन पाँच निबन्धों लखनऊ की यात्रा, हरिद्वार की यात्रा तथा वैद्यनाथ की यात्रा। इसी परम्परा में आने वाले कुछ अन्य यात्रा-वर्णनकार हैं- प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, भगवानदास वर्मा, दामोदर शास्त्री, तोताराम वर्मा, लाला कल्याणचन्द्र और देवीप्रसाद खत्री इसी प्रकार द्विवेदी युग में भी जिन लेखकों ने यात्रा-वर्णन प्रस्तुत किए, उनमें से कुछ हैं ठाकुर गदाधरसिंह, साधुचरण प्रसाद, धनपति लाल, सत्यदेव परिचायक, शिवप्रसाद गुप्त, रामशंकर व्यास, गोपालराम गहमरी।

उत्तर द्विवेदी काल में आकर, हिन्दी का यात्रा-साहित्य गुण और मात्रा दोनों में ही सम्पन्न बना। इस समय में यात्रा-वर्णन के प्रमुख उद्देश्य थे- देश-विदेश के व्यापक जीवन को मुखरित करना, विभिन्न देश-प्रदेशों या स्थानों का परिचय देना, स्थान विशेष के प्राकृतिक या अन्य प्रकार के सौन्दर्य को चित्रित करना तथा अपने संस्मरणों को प्रकट करना आदि। गुण और परिणाम दोनों ही दृष्टियों से सर्वोत्तम रहे- महापंडित राहुल सांकृत्यायन जिनके विषय में डॉ. राजनाथ शर्मा ने ठीक ही कहा है, "हिन्दी में यात्रा-साहित्य से सम्बन्धित एक ऐसी पुस्तक लिखी गई जो अपने ढंग की हिन्दी की एकमात्र पुस्तक है। वह है राहुल सांकृत्यायन की 'घुमक्कड़ शास्त्र'। इसमें राहुलजी ने यात्रा करने की कला का रोचक विवेचन करते हुए अपनी देश-विदेश में की गई अनेक यात्राओं का बहुत ही सरस वर्णन किया है।" इनकी, इसी प्रकार की कुछ अन्य रचनाएँ हैं- मेरी लद्दाख यात्रा, लंका, तिब्बत में सवा वर्ष, यात्रा के पन्ने, यात्रावली, एशिया के दुर्गम खण्डों में आदि। इनके अतिरिक्त इसी विकास काल के कुछ अन्य प्रमुख यात्रा-वर्णनकार और उनकी रचनाएँ हैं। अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा यदि, एक बूँद सहसा उछली), यशपाल (लोहे की दीवार के दोनों ओर तथा राहबीती) भागवतशरण उपाध्याय (लाल चीन, वो दुनिया, सागर की लहरों पर, कलकत्ते से पेकिंग तथा गंगा गोदावरी, अमृतराय (सुबह के रंग) रांगेय राघव (तूफानों के बीच), रामवृक्ष बेनीपुरी (पैरों में पंख बाँधकर, हरा पर, पेरिस नहीं भूलती), देवेशदास (यूरोपा तथा रजवाड़े), मोहन राकेश

आखिरी चट्टान तक), धर्मवीर भारत (ठेले पर हिमालय) अक्षय कुमार जैन (दूसरी दुनिया), यशपाल जैन (रूस में छियालीस दिन), ब्रज किशोर नारायण (नन्दन से लन्दन), डॉ. जगदीशचन्द्र वर्मा (ज्ञान की खोज में), सेठ गोविन्ददास विश्व भ्रमण), डॉ. नगेन्द्र (तन्त्रालोक से यन्त्रलोक तक) तथा बिना पैसे दुनिया का सफर (सतीश कुमार)।

वर्तमान युग—स्वातन्त्रयोत्तर-काल में यात्रा-साहित्य विपुल यात्रा में प्रकाश में आया है। वर्तमान में भी अनेक लेखक इस दिशा में सक्रिय हैं यथा गोपाल नेवटिया, अमृतराय, धर्मरक्षित, जगदीशचन्द्र जैन, काका कालेलकर, सत्यनारायण सिन्हा, हंसकुमार तिवारी, बलराज सहानी, अमृतलाल नागर, रामेश्वर, टांकिया, विष्णु प्रभाकर, श्री निधि, दिनकर और राजेन्द्र यादव। उनके यात्रा-वर्णनों में स्थान-विशेष की संस्कृति रहन-सहन प्रकृति-सौन्दर्य और सबका समन्वित प्रभाव बड़े से साहित्यिक रूप में मुखर हुआ मिलता है।

हिन्दी जगत में यात्रा-वर्णन की विधा गुण और मात्रा दोनों ही रूपों में पर्याप्त मात्रा में विकसित होकर लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है। आज साहित्य की यह विधा निरन्तर वृद्धि और समृद्धि की ओर गतिशील हो रही है। इसका प्रमुख कारण दिन-प्रतिदिन की बढ़ती हुई यात्रा-अभिरूचि, यातायात के साधनों का द्रुतगति से होता हुआ विकास और सर्वसुगमता-सुलभत एवं राजकीय-शासकीय सुविधाएँ आदि हैं।

संस्मरण

किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या विषय की हृदयस्पर्शी अनुभूतियों का स्मृति के आधार पर अत्यन्त रोचक और चिन्ताकर्षक रूप में चित्रण करना ही संस्मरण कहलाता है। इस प्रकार यह जीवन का वह यथार्थमय स्वरूप होता है, जो अनुभूतिमयी अभिव्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत होता है। संस्मरण शब्द का सीधा और सामान्य अर्थ है- सम्यक् स्मरण अर्थात् संस्मरण मे लेखक स्वयं अपनी अनुभूति किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना का आत्मीयता और कलात्मकता के साथ चित्रण प्रस्ततु करता है। यह स्पष्ट है कि संस्मरण महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित और आधारित होता है। इसलिए लेखक स्वयं को महत्व न देकर उस महापुरुष या व्यक्ति को ही देता है, जिसका वह संस्मरण लिख रहा होता है। इसमें वह उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के उन सभी आवश्यक पक्षों पर बल देता है, जो उसके स्वरूप, आकार-प्रकार, रंगरूप, स्वभाव, भाव-भंगिमा, जीवन-दर्शन-व्यवहार आदि अन्य सम्बन्धित होते हैं। वह उन तथ्यों को बड़ी विश्वसनीयता और आत्मीयतापूर्वक चित्रण करता है। अत: यह कहा जा सकता है कि संस्मरण में व्यक्तिपरकता का तत्व मूल रूप से विद्यमान रहता है।

आधुनिक काल में संस्मरण ने भी गद्य की अन्य विधाओं के समान प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि अर्जित कर ली है। संस्मरण में स्मरणीय विषय का ही संस्मरणकार वर्णन करता है। यह वर्णन सत्य घटित होता है। इसका प्रभाव पाठक वर्ग पर कैसे पड़े, इसकी क्षमता वह बटोरता है। लेखक को यह ध्यान देना चाहिए कि वह अनावश्यक रूप से किसी महत्ता का चित्रांकन न करे और न ही वह इसे आत्म-कथात्मकता का ही स्वरूप प्रदान करे। अगर यह अपने संस्मरण-विषयक व्यक्ति के विषय में ऐसा चित्रण या उल्लेख करता है तो उसका यह लेखन संस्मरण की ओर न होकर रेखाचित्र की ओर ही होने लगती है। इस प्रकार यह लेखन स्वरूप न तो संस्मरण और न ही रेखाचित्र का सच्चा रूप धारण कर पाता है। इसलिए संस्मरण कार को चाहिए कि वह वैसे ही व्यक्ति विशेष का जीवन-चरित्र उद्घाटित करे, जिसके साथ उसे अपने अंतरंग क्षणों को बिताए हैं। इसे ही सच्चा संस्मरण कहेंगे।

डॉ. भगवतीशरण भारद्वाज ने संस्मरण लेखन की तात्विक अवधारणा प्रस्तुत की है। उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध आलोचनात्मक पुस्तक हिन्दी जीवन सिद्धान्त और अध्ययन में लिखा है कि संस्मरण लेखन के कई नियामक और महत्वपूर्ण तत्व होते हैं। डॉ. भारद्वाज ने यह भी बतलाया हैं कि सहानुभूतिपूर्ण हृदय की अनिवार्यता व्यक्तिगत सम्पर्क और अनिवार्यत: लेखक के स्वर-निरीक्षण की क्षमता रचना के प्रारम्भ और अन्त का रोचक होना आदि उसके प्रमुख तत्व हैं। संस्मरण सफलता की एक शर्त सहानुभूतिपूर्ण हृदय की अनिवार्यता है। व्यक्ति के स्वभाव में झांकने का अवसर सहानुभूति के द्वारा ही सम्भव है। संस्मरण की दूसरी शर्त व्यक्तिगत सम्पर्क है। इसके अभाव में व्यक्ति की रुचि-अरुचि, आकर्षण-विकर्षण आदि का पता नहीं चल सकता है। व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा वातावरण आत्मीयतापूर्ण बन जाता है। इससे रचना सामान्य न होकर प्रभावशाली बन जाती है। रचना की प्रभविष्णुता नामक वैशिष्ट्यगत परम्परा की तीसरी शर्त है- लेखक के स्व-निरीक्षण की क्षमता। संस्मरण की यह भी विशेषता होती है, वह विषयगत चरित्र और स्वभाव का नि:संग विवेचन करे। वह इसे अनिवार्यत: स्वीकारें व अपनाये। इससे ही रचना की सार्थकता और सफलता सिद्ध होती है। इस परम्परा में चौथी और अन्तिम शर्त रचना का आरम्भ से अन्त तक सरस और रोचक होना भी नितान्त आवश्यक होता है। ऐसा इसलिए कि जब रचना का आरम्भ रोचक और सरस होगा और उसका अन्त भी ऐसा ही कुछ होगा, तभी वह अमिट और स्थायी बन सकेगी अन्यथा नहीं।

अब हम संस्मरण साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालना समुचित समझते हैं। इस प्रसंग में कहना है कि प्रेमचंद युग में ही संस्मरण साहित्य का भी उदय हुआ। इससे पहले संस्मरण का कहीं कोई पता निशान नहीं दिखाई देता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सबसे पहले संस्मरणात्मक निबन्ध लिखा। वर्णन के विषय बालकृष्ण भट्ट थे। कुछ विचारकों ने हिन्दी का सबसे पहला संस्मरण लेखक पद्मसिंह शर्मा को स्वीकार किया है। उन्होंने अकबर इलाहाबादी तथा कवि-रत्न सत्यनारायण पर संस्मरण लिखा। महात्मा गोखले पर महात्मा गाँधी ने संस्मरण लिखे। प्रेमनारायण टण्डन, गोपाल राम गहमरी, श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, सिवारामशरण गुप्त, डॉ. रघुवीर सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामनाथ 'सुमन', राम नरेश त्रिपाठी, अनुग्रह नारायण सिंह, शान्तिप्रिय द्विवेदी, मोहनलाल महतो 'वियोगी', श्रीमती शिवरानी (प्रेमचन्द- घर में) आदि इस युग के प्रमुख संस्मरण लेखक हैं। 'प्रेमचन्द- घर में' इस युग की सर्वश्रेष्ठ कृति है। प्रस्तुत कृति में प्रेमचन्द को आजीवन भाँति-भाँति के संघर्षों से जुझने का, उससे उत्पन्न सफलता-असफलता का, हर्ष-विषाद का सुख-दु:ख का वर्णन श्रीमती शिवरानी ने किया है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में संस्मरण की बाढ़ आ जाने पर अनेक साहित्यिकों ने अपनी कलम चलाई। विनोदशंकर व्यास (उनकी स्मृतियाँ), बनारसीदास चतुर्वेदी (संस्मरण), जैनेन्द्र कुमार (ये और वे), उपेन्द्रनाथ 'अश्क' (मण्टो- मेरा दुश्मन), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, माखनलाल चतुर्वेदी (समय के पाँव), डॉ. नगेन्द्र (चेतना के बिम्ब), जगदीशचन्द्र माथुर (दस तस्वीरें), महादेवी वर्मा (पथ के साथी), अमृतलाल नागर (जिनके साथ जिया) तथा बलराज साहनी (यादों के झरोखे) आदि युग प्रसिद्ध संस्मरणात्मक लेखक हैं। इनमें सबसे अधिक सूझबूझ, उच्च कोटि की संवेदनशीलता तथा अभूतपूर्व प्रभविष्णुता उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'मण्टो- मेरा दुश्मन' में किया गया है। इस विषय में डॉ. भगवतशरण

भारद्वाज ने लिखा है- "इन संस्मरणों को पढ़कर पाठक स्तब्ध और अभिभूत रह जाता है। एक रस्साकशी का बिम्ब, संस्मरण के दौरान, पाठक के दिमाग पर छाया रहता है। उतना ही गहरा, उत्सुक, झुंझलाहटपूर्ण तनाव जिनमें हार-जीत का कोई फैसला नहीं आता है और अन्त में जो एक झटके में मुँह के बल गिर पड़ता है, वह पाठक के साथ विजेता की भी सारी करुणा का अधिकारी बन जाता है।"

इस प्रकार संस्मरण अल्पायु का होते हुए भी पर्याप्त मात्रा में विकास प्राप्त कर चुका है। उसमें विषय-वैविध्य तथा शैली-वैविध्य भी है। उसमें रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे कलाकार तथा प्रभाववादी महादेवी वर्मा भी है। अपने-अपने व्यक्तित्व के अनुरूप प्रत्येक संस्मरण-लेखक ने विषय और शैली को चुना। उच्च कोटि के संस्मरण लेखन की पहचान तथा अन्तिम परिणति अपने-अपने रूप में ढालना है। ■

प्रश्न 4. डायरी से आप क्या समझते है ? हिन्दी गद्य साहित्य में डायरी के विकास का वर्णन कीजिए।

उत्तर-

डायरी का अर्थ एवं स्वरूप

'डायरी' शब्द हिन्दी में अंग्रेजी से आया है और इस शब्द के साथ उसकी पूरी अवधारणा भी पश्चिम से ही ग्रहण की गई है। हिन्दी में इसके लिए दैनिकी, दैनंदिनी, वासुरी, वासरिका आदि शब्दों का प्रयोग होता है। डायरी से रोज लिखे जाने वाले तथ्यों, घटनाओं और कार्यों का पता चलता है। जब कोई व्यक्ति दिन, तिथि, सन् के आधार पर जीवन में घटित अथवा देखी गई धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक या साहित्यिक परिस्थितियों का चित्रण करता है तो वह रचना डायरी के नाम से जानी जाती है। डायरी लेखक के निजी अनुभव का अभिन्न अंग होती है। अपने निजी कार्यों, विचारों और भावों की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति होने के कारण यह विधा अन्य साहित्यिक विधाओं से अधिक विश्वसनीय और प्रमाणिक मानी जाती है। डायरी निजी होती है। लेखक इसे प्रकाशित कराने के उद्देश्य से नहीं लिखता। इसमें तो भावनाओं और अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति होती है, जिससे लेखक की निजता उद्घाटित हो जाती है। कलात्मकता का इस विधा में अधिक महत्व नहीं होता। ऐसा डायरी की स्वाभाविकता को ध्यान में रखकर किया जाता है। विविधता इस विधा की प्रमुख विशेषता है। विषयवस्तु और मन:स्थिति के अनुसार इसमें प्रयुक्त शैली का स्वरूप भी बदलता रहता है। प्रतिदिन डायरी लिखना इसकी अनिवार्य शर्त नहीं है, अर्थात् डायरी लेखन में दिन, सप्ताह और महीनों का अन्तराल हो सकता है। इसलिए इसमें पूर्वापर संबंध जोड़ना उचित नहीं होगा। इस तरह डायरी लेखन का संबंध सिर्फ लेखक से होता है, जिसमें यह अपनी भावनाओं, विचारों और घटनाओं को सहज रूप में प्रस्तुत कर देता है।

डायरी लेखन डायरी लेखक का प्रमाणिक विश्लेषण होता है। इसमें सभी विधाओं के समावेश के साथ सभी लेखन विधियों का संस्पर्श होता है। डायरी लेखक समय-समय पर अपने अतीत के अनुभवों की पुनर्समीक्षा करता हुआ अपने को परिभाषित करता हुआ आगे बढ़ता है।

डायरी साहित्य का विभाजन व्यक्तिगत डायरी और साहित्यिक डायरियों के रूप में किया जा सकता है। व्यक्तिगत डायरी का संबंध व्यक्ति विशेष से होता है, जिसमें लेखक अपने जीवन की घटनाओं, प्रसंगों, निजी अनुभूतियों, विचारों तथा तथ्यों को लिखता रहता

है। ये डायरियाँ उसका अपना गोपन होती हैं। ये लेखक की, उसकी परिस्थितियों का लेखा-जोखा होती हैं। साहित्यिक डायरियाँ वस्तुतः दैनंदिनी नहीं होतीं, इनमें इसे शिल्प के रूप में अपनाया जाता है। साहित्यिक डायरी में कल्पना को अधिक स्थान दिया जाता है। ऐसी डायरी में रचनात्मक साहित्य का सृजन होता है। उदाहरण के लिए, डॉक्टर देवराज का उपन्यास 'अजय की डायरी' और मुक्तिबोधक पुस्तक 'एक साहित्यिक की डायरी'।

हिन्दी गद्य साहित्य में डायरी का विकास

हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास जितना ही पुराना है डायरी का इतिहास भी। पत्र-पत्रिकाओं का इसके विकास में विशेष योगदान रहा। इनमें विभिन्न लेखकों की डायरियों के अंश प्रकाशित होते रहे हैं। राधाचरण गोस्वामी की दैनंदिनी 1885 में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई। इसमें अपने हाथ से लिखी दिनचर्या और कुछ प्रतिज्ञाएँ मिलती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि हिन्दी के गद्य के प्रारम्भिक दौर में ही लेखकों की रूचि डायरी लेखन की ओर रही है। भारतेंदु के समकालीन बालमुकंद गुप्त की डायरी के अंश जो उन्होंने 1892-1907 के बीच लिखे थे, मिलते हैं। यह अंश श्री बनारसी दास गुप्त एवं पंडित झावरमल शर्मा द्वारा सम्पादित 'बालकृष्ण स्मारक ग्रंथ' (1950) में प्रकाशित हुए हैं। इसमें बालमुकुंद गुप्त की दिनचर्या का लेखा-जोखा है, जो वे रोज रात सोने से पहले एकांत में लिखते हैं। इसमें तत्कालीन परिवेश की दुर्लभ छवियाँ अंकित हैं 25 फरवरी, 1892 को वे लिखते हैं- "आज पंडित प्रताप नारायण जी को काव्य विषयक चिट्ठी जानी चाहिए थी जो लिखी नहीं जा सकी। रहबर का मैटर पूरा करके रवाना किया" शुरुआती दौर में लिखी गई यह डायरी धरोहर है।

स्वामी सत्यदेव की 'मेरी डायरी' (1909), 'अमेरिका दिग्दर्शन', 'अमेरिका पथ प्रदर्शक', और अमेरिका भ्रमण के रूप में मिलती है। अमेरिका भ्रमण वाली डायरी में आठ महीनों का लेखा-जोखा है। इस डायरी से यह भी पता चलता है कभी-कभी कई दिनों का वर्णन एक साथ लिखा गया है। लेखक ने स्वयं पुस्तक परिचय में कहा, यह मेरी अढाई महीने की दिनचर्या है, अभी छः महीने की दिनचर्या बाकी है। यह एक उत्कृष्ट डायरी है।

प्रभुदयाल द्वारा प्रस्तुत डायरी जो 'सरस्वती' के 1921 के सितम्बर अंक में प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक है 'एक डायरी के कुछ पृष्ठ', यह डायरी उन्हें किसी दुकान पर मिली थी, जो बांग्ला में थी, उन्होंने उसका अनुवाद किया।

नरेन्द्र शास्त्री वेदतीर्थ की 'जेल डायरी' (1930) मालिक और कलात्मक डायरी मानी जाती है। इसमें सच्ची घटनाओं के वर्णन के साथ संवेदनात्मक गहराई है। 'हंस आत्मकथात्मक अंक' जनवरी, 1932 में प्रकाशित हुआ। इसमें मुंशी अजमेरी के राय कृष्णदास को लिखे गए पत्र हैं, जिनमें 11 से लेकर 19 सितम्बर, 1929 तक गांधी जी के साथ का दिनचर्या के रूप में वर्णन है। हंस के इसी आत्मकथात्मक में ही डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की डायरी का मार्मिक अंश है। जिसमें वे लिखते हैं- "कभी-कभी शहर की गलियों में जाते हुए चित्त बड़ा उदास हो जाता है। जब दृष्टि सैकड़ों दुखित स्त्री-पुरुषों पर पड़ती है, जो भूख लगने के कारण घिसटते होते हैं। समझ में नहीं आता यह लोग किस प्रकार से अपना तथा संसार का भला कर रहे हैं।"

प्रोफेसर भगवत दयाल शर्मा द्वारा 1933 में लिखी 'सिंधिया व होल्कर की डायरी' मिलती है, जिसमें इन राजाओं की दिनचर्या का वर्णन है। शिवरानी देवी के द्वारा 25 जून,

1936 को लिखी डायरी जो 'हंस' के प्रेमचंद अंक में छपी है बड़ी मार्मिक है- अतिशय रुग्णावस्था में जबकि खून की कै हो रही है और नींद भी नहीं आ रही है.... भयंकर बेचैनी है। ऐसी अवस्था में भी प्रेमचंद मंगलसूत्र लिखे जा रहे हैं।''

1940 में घनश्याम दास बिरला की 'डायरी के कुछ पन्ने' प्रकाशित हुए, हालांकि इसमें मात्र घटनाओं का वर्णन है, पर वे वर्णन इस प्रकार करते हैं उसका चित्र पाठक के सामने साकार हो उठता है। रामनरेश त्रिपाठी की भी डायरी '30 दिन मालवीय जी के साथ' (1942) संस्मरणात्मक डायरी है।

1942 में ही रावी की डायरी प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक है 'बुकसेलर की डायरी' इसमें रावी जी ने जीविकोपार्जन के लिए घूम-घूम कर पुस्तकें बेचीं, जिसका मार्मिक वर्णन मिलता है। सुंदरलाल त्रिपाठी की 1939 की डायरी जो 1945 में प्रकाशित हुई, यह साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण डायरी है। वे लिखते हैं- ''वर्धा की 12.6.1939 की मेरी डायरी अधूरी रह गई। डायरी ही क्यों जीवन के ऐसे अनेक कार्य हैं, जो अधूरे रह गए।'' इसमें महात्मा गाँधी, शरत चंद्र चट्टोपाध्याय के अतिरिक्त तत्कालीन हिन्दी साहित्य साहित्यकारों के बारे में मार्मिक प्रसंग है।

1947 में भगवती चरण वर्मा और लक्ष्मीचंद वाजपेयी की 'डायरी का एक पृष्ठ' प्रकाशित हुआ। भगवती चरण वर्मा की 6 जनवरी, 1947 की डायरी है तो लक्ष्मीचंद बाजपेयी ने 28 अक्टूबर, 1946 के दिन को अपनी डायरी में दर्ज किया है। भगवती चरण वर्मा ने देवी पूजा एवं परिजनों की कथा एवं अर्चना के बारे में लिखा है, बाजपेई ने अपने जन्मदिन दीपावली के बहाने तत्कालीन स्थितियों पर टिप्पणी की है।

गाँधीजी की 'दिल्ली डायरी' 1948 में प्रकाशित हुई। इसमें उनके प्रवचनों का संग्रह । तिथि के अनुसार दिए गए प्रवचनों में कई विषय हैं जिन पर गाँधीजी ने चर्चा की है। महादेव भाई देसाई गाँधीजी के भक्त थे। वे सदा उनके सानिध्य में रहे, उन्हीं की गोद में उन्होंने अन्तिम सांस ली। महादेव भाई ने गाँधीजी को दृष्टि में रखकर वृहद डायरी लिखी, जो पहले गुजराती में प्रकाशित हुई और वाद में हिन्दी में। हिन्दी में इसका पहला भाग 10.3.1932 से 4.9.1932 तक 'गाँधीजी के साथ यरवदा जेल में' दिसंबर, 1948 में अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ। इसमें दिनचर्या के वर्णन के साथ गाँधीजी के भाषण, भेंट, पत्र-व्यवहार के साथ रोजमर्रा की घटनाएँ और गाँधीजी के विचारों का समावेश है। मनुबैन गाँधी की गुजराती से हिन्दी में अनूठेदित डायरी भी महत्वपूर्ण है। इसमें 1946 से 1948 तक के गाँधीजी के जीवन से संबंधित जीवन-चर्या का वर्णन है। यह चार भागों में प्रकाशित है- एकला चलो रे (19.12.1946 से 4.3.1947), कलकत्ते का चमत्कार (1.8.1947 से 7.8.1947) बिहार की कौमी आग में (5.3.1947 से 24.5.1947) तथा दिल्ली डायरी। (8.9.1947 से 30.1.1948) गाँधीजी के साथ की ये डायरी भी एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

हिन्दी डायरी में गांधी युग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वतंत्रता आन्दोलन एवं गाँधीजी के साथ गांधीवादियों के बारे में भी पता चलता है। सुशीला नायर की 'बापू की कारावास कहानी' का अपना योगदान है। यह डायरी बापू ने स्वयं सुशीला नायर से लिखवाई थी, जब वह आगा खां कारावास में बापू के साथ थीं। इसमें वहाँ की घटनाओं के वर्णन के साथ कस्तूरबा के वहाँ निधन और बापू पर उसका क्या असर पड़ा की चर्चा हुई है। जमनालाल बजाज बापू के साथ रहे। इनकी डायरी में 1912 से 1915 तक के जीवन का वर्णन है।

गाँधीजी के सम्पर्क में आने के कारण उनके जीवन में आए परिवर्तनों के साथ, उस समय के भारत की स्थितियों को इसमें देखा जा सकता है। निर्मला देशपांडे और दामोदरदास मूंदड़ा की विनोवा भावे की पदयात्रा से सम्बन्धित दो महत्वपूर्ण डायरियाँ हैं।

निर्मला देशपांडे की 'सर्वोदय पदयात्रा' और दामोदरदास मूंदड़ा की 'विनोबा के साथ' में विनोबा भावे की भूदान यात्रा के दौरान की गई यात्राओं से संबंधित घटनाओं का वर्णन है। इनका ऐतिहासिक महत्व है। इसी तरह 1957 में प्रकाशित श्रीमन्नारायण अग्रवाल की 'विनोबा जी के साथ सात दिन की डायरी' भी उल्लेखनीय है।

1960 में स्वामी सत्यभक्त द्वारा डायरी के पृष्ठों में 'भगवान महावीर का अंतस्थल में' महावीर के विचारों पर प्रकाश डाला गया है। 1960 में गुलाब राय की 'मेरी असफलताएँ' पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें 'मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ' शीर्षक से सितम्बर, 1945 का रोचक वर्णन है।

'राज्यपाल की डायरी से' भी इसी वर्ष प्रकाशित हुई, जिसमें उत्तरप्रदेश के तत्कालीन सूचना निदेशक भगवती शरण सिंह ने प्रस्तुत किया है। इसमें राज्यपाल के कर्तव्य निष्ठा के साथ उसके जीवन के अन्तरंग पहलुओं का चित्रण किया गया। बाल्मीकि चौधरी की 'राष्ट्रपति की डायरी' (1960) में राजेन्द्र प्रसाद के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। बाल्मीकि चौधरी के अनुसार, ''इस पुस्तक में राष्ट्रपति भवन में रोजमर्रा की घटनाओं तत्संबंधी क्रियाकलापों, राजनीतिक चित्रपट बनने-बनाने में जो तरह-तरह के दृश्य सामने आए, उन्हें गूंथने का प्रयास किया है।''

जगदीश माथुर की पुस्तक 'दस तस्वीरें' में उनके पिता लक्ष्मीनारायण माथुर आदर्श हेड मास्टर और शिक्षक लेख में 2 अक्टूबर, 1918 की उनकी निजी डायरी का जिक्र है- ''लोग कहते हैं कि स्कूल के घंटों के बाद भी मैं क्यों स्कूल में काम करता हूँ? काश मैं उन्हें वता पाता कि अगर मेरे स्वास्थ्य और शक्ति ने साथ दिया होता तो इससे भी अधिक काम करने में मुझे खुशी होती।

गजानन माधव मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' प्रसिद्ध डायरी है, जो विचार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें दैनंदिन जीवन की घटनाओं का वर्णन न होकर विचारों की श्रृंखलाबद्ध कड़ियाँ हैं। यहाँ 1968 में प्रकाशित हुई। 1971 में हरिवंश राय बच्चन की 'प्रवास की डायरी' प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने लंदन में अपनी पीएचडी के दौरान के अनुभवों को दर्ज किया है। 1973 में रामधारी सिंह दिनकर द्वारा लिखी 'दिनकर की डायरी' प्रकाशित हुई। 1976 में रघुवीर सहाय की 'दिल्ली मेरा परदेस' प्रकाशित हुई। 1977 में ही लोकनायक जयप्रकाश नारायण की 'मेरी जेल डायरी' प्रकाशित हुई। इसी वर्ष चंद्रशेखर की 'मेरी जेल डायरी' भी प्रकाश में आई। मेरी टायर की 'भारतीय जेलों में पाँच वर्ष' 1977 में अंग्रेजी से अनूदित होकर हिन्दी में प्रकाशित हुई, जिसकी खूब चर्चा हुई। प्रशांत कुमार की डायरी 'आपातकाल के उन्नीस महीने' (1978) में छपकर आई। रामविलास शर्मा की 'पंचरत्न' (1980) रामेश्वर टांटिया द्वारा लिखित 'क्या खोया क्या पाया' (1981) में प्रकाशित हुई।

1982 में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की मेरी डायरी छपी। मोहन राकेश की डायरी 1985 में आई तो विवेकी राय की लिखी मनबोध मास्टर की डायरी 1986 में प्रकाशित हुई।

एन. फ्रेंक की तरह सबसे कम आयु 1980 में लिखी गई डायरी 'आस्था नवल' की है, उन्होंने बचपन में ही डायरी लिखना प्रारम्भ कर दिया था और कॉलेज में आई तब तक

उनकी डायरी प्रकाशित हो चुकी थी। कम उम्र की होने के बावजूद उनमें प्रकृति प्रेम व जगत को देख लेकर उत्सुकता बराबर है 'आस्था नवल की डायरी' के शीर्षक से यह 2001 में प्रकाशित हुई।

सन् 2000 में नामवर सिंह के सम्पादन में मलयज की डायरी तीन भागों में प्रकाशित हुई। जिसमें 1951 से लेकर 1982 तक की डायरियाँ हैं।

बिशन टंडन की आपातकाल की डायरी खंड 1-2002 खंड 2-02005। इनमें आपातकाल के दिनों का सरकार का आन्तरिक पक्ष उजागर होता है।

कृष्ण बलदेव की 'ख्वाब है दीवाने का' 2008 में, 'डुबोया मुझको होने ने' 2008 में प्रकाशित पुस्तके हैं। इसमें कृष्ण बलदेव वैद की मनोग्रंथियों का पता चलता है।

रमेश चंद्र शाह और परमानंद श्रीवास्तव की डायरियाँ अक्सर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। इन दोनों की डायरी में पाठक उन दिनों की हलचलों के अतिरिक्त विभिन्न पुस्तकों से भी इस बहाने परिचित होते रहते हैं। इनमें की गई टिप्पणियाँ पाठकों का ज्ञानवर्धन करती हैं। मधु कांकरिया के डायरी अंश भी उनके यायावर एवं घुमक्कड़ी के दौरान के अनुभवों की अभिव्यक्ति हैं, जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। रामदरश मिश्र की डायरियाँ भी प्रकाशित होती रहती हैं। लवलीन की डायरी के अंश 'हंस' में प्रकाशित हुए, जिनमें उनकी मनस्थिति का पता चलता है। रघुनंदन त्रिवेदी की डायरी के अंश 'कथादेश' में प्रकाशित हुए। हसन जमाल ने भी अपनी हज यात्रा को लेकर डायरी लिखी जो कोलकाता से प्रकाशित समकालीन सृजन में प्रकाशित हुई। मंगलेश डबराल की पुस्तक 'एक बार आयोवा' 1996 को प्रकाशित हुई। अपने आयोवा प्रवास के अनुभवों को इस डायरी में अभिव्यक्ति दी है। गोपाल सहर की गुजरात के दंगों को लेकर पहल में छपी गुजरात डायरी काफी चर्चित हुई।

16 जनवरी, 2001 की तेजिंद्र की डायरी-टीप दहलाने वाली है, यह ओडिशा के अकाल की भयावहता को दिखाती है। वे लिखते हैं, "मैं चीखना चाहता था मगर चीख नहीं सका था। मैंने देखा था कि वह आदमी पत्थर की गिट्टी को मुँह में डालकर चबाने लगा था। मैंने ध्यान से देखा कि गिट्टी के ऊपर लाल चींटें चल रहे थे, साथ ही उनके छोटे-छोटे अंडे भी। उस आदमी ने मुंह से एक तरह की कट-कट की आवाज आ रही थी। उसके अन्दर जैसे कुछ टूट रहा था, पत्थर की गिट्टी, उसके दांत या फिर लाल चींटों के छोटे-छोटे अंडे। पर उस आदमी के चेहरे पर किसी तरह के हावभाव नहीं थे, जैसे कहीं कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। ना वो लाल चीटों से डर रहा था, न पत्थर की गिट्टी से, न ही अखबार की संगणना से। सामने रोता हुआ कुत्ता भी चुप हो गया था। मैं बेतहाशा डर गया था।"

डायरी के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का बहुत अधिक योगदान रहा है। अधिकांश डायरियाँ पहले- पहल पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुईं। डायरी केन्द्रित विशेषांक केवल एक पत्रिका लहर ने 1965 में प्रकाशित किया। पर यह दो भागों में था जिसमें सुरेन्द्र चौधरी, कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह, अमित कुमार, राजेन्द्र किशोर, सुरेंद्र अरोड़ा, सुदर्शन चोपड़ा, रघुवंश, गोपीकृष्ण गोपेश, राजकमल चौधरी स्वदेश दीपक, मश्रुरेश आदि की डायरी के अंश प्रकाशित हुए थे। इन अंकों को तीन खंडों में 'आत्म निर्वासन और संघर्ष', 'यात्रा और उभरती आकृतियाँ' तथा कथा के सूत्र टटोलती डायरी में विभाजित करके प्रकाशित किया गया था। हिन्दी डायरी लेखन में लहर के इस विशेषांक का महत्वपूर्ण स्थान है।

इसके अतिरिक्त 'हंस' आत्मकथांक (जनवरी, 1932) प्रेमचंद अंक परिषद पत्रिका (जनवरी, 1969) इंडिया टुडे साहित्य वार्षिकी (1993), समालोचक (मई एवं अगस्त, 1958), नया ज्ञानोदय (जनवरी, 1964), साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, दिनमान आदि पत्रिकाओं में विभिन्न व्यक्तियों के डायरी एंड प्रकाशित होते रहे हैं। श्रीधर पाठक ग्रंथावली (1984) में रघुवीर सहाय रचनावली में रघुवीर सहाय की डायरियों के अंश प्रकाशित हुए हैं। निस्संदेह डायरी को एक विधा के रूप में पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमि मिलती रही है। तद्भव के अतिरिक्त कथादेश, ज्ञानोदय, शेष, दोआबा, समकालीन सृजन, साक्षात्कार, पूर्वाग्रह आदि पत्र-पत्रिकाओं में लेखकों की डायरी के अंश प्रकाशित होते रहे हैं।

डायरी में लेखक अक्सर खुलकर अपनी बात कहता है। उनकी अपनी रचना प्रक्रिया, अपना जीवन, प्रेरणास्त्रोत, अपनी कामयाबी का रहस्योद्घाटन डायरी द्वारा ही होता है। डायरी लेखक की एक तरह से आत्मकथा भी होती है। किसी भी लेखक के समय, परिवेश, और उसके व्यक्तित्व को जानने समझने के साथ डायरी उसके परिवर्तनों की साक्षी भी होती है। हिन्दी में डायरियाँ इन दिनों खूब लिखी जा रही हैं, जो अक्सर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। पुस्तक के रूप में भी उनका प्रकाशन निरन्तर हो रहा है, जो इस विधा को समृद्ध कर रहा है। ■

प्रश्न 4. (अ) फीचर लेख पर एक समीक्षात्मक प्रकाश डालिए।

उत्तर-

फीचर लेख

फीचर आधुनिक युग की एक नयी विधा है, जो पत्रकारिता के क्षेत्र में पल्लवित और पुष्पित हुई है। यह विधा निबन्ध और लेख से मिलतीजुलती है तो भी यह इन दोनों से भिन्न रूप में विकसित हुई है। आजकल प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों में मुख्य रूप से चार अंग- समाचार, लेख, चित्र और फीचर होते हैं। पहले तीन अंग सभी समाचार-पत्रों में थोड़े-बहुत अन्तर से एकसमान होते हैं, परन्तु फीचर एकदम अलग होते हैं। इसका कारण है कि फीचर का अपना एक पृथक् व्यक्तित्व तथा पहचान होती है। उसकी अपनी विशेषताएँ होती हैं। किसी समाचार पत्र या पत्रिका की प्रसार संख्या बढ़ाने में तथा उसकी लोकप्रियता को चार चाँद लगाने में इसकी बड़ी भारत भूमिका होती है, जो समाचार पत्र या पत्रिकाएँ जितने आकर्षक और ज्ञानवर्द्धक फीचर प्रकाशित करते हैं, पाठक उसी की ओर अधिकाधिक आकर्षित होते हैं।

फीचर किसे कहते हैं? इसकी परिभाषा क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए डेनियल आर. विलियमसन लिखते हैं कि फीचर ऐसा रचनात्मक तथा कुछ-कुछ स्वानुभूतिमूलक लेख है, जिसका गठन किसी घटना, स्थिति अथवा जीवन के किसी पक्ष के सम्बन्ध में पाठक का मूलत: मनोरंजन करने एवं सूचना देने का उद्देश्य से किया गया हो। वस्तुत: यह एक ऐसी विधा है, जिसमें ज्ञान, कल्पना, यथार्थ, घटनाओं, कौतूहल, चमत्कार आदि को गद्य में प्रस्तुत किया जाता है। इसे ऐसी शैली में प्रस्तुत किया जाता है कि पाठक के सम्मुख उस स्थान, वातावरण और घटना का चित्र साकार हो जाता है।

फीचर में कौन-कौन से गुण होने चाहिए? इसके क्या लक्षण हैं? इन प्रश्नों पर विचार करते हुए श्री प्रेमनाथ चतुर्वेदी का कथन है- फीचर स्थिति का विहंगावलोकन ही नहीं करता, वह प्रश्नों का उत्तर भी देता है और अज्ञात का ज्ञान भी कराता है। फीचर मानो

किसी घटना की दूरबीन से जाँच करता है। अच्छे फीचर के गुणों की जब हम बात करते है, तो उसके मूल चार आधारों पर हमारा ध्यान जाना आवश्यक है। ये हैं- जिज्ञासा, सत्यता, योग्यता और विश्वास। डॉ. हरिमोहन ने केवल दो आधारों- जिज्ञासा और सत्यता को ही स्वीकार किया है। उन्होंने इन दो के साथ मानवीय भावना, चित्रात्मकता और स्पष्ट विश्लेषण को भी जोड़ा है। उनके अनुसार स्पष्ट विश्लेषण के अभाव में फीचर दुरूह, विचार प्रधान निबन्ध बन जाता है। इसी प्रकार चित्रात्मक और रोचकता के न होने पर वह रिपोर्ताज बनकर रह जाता है। फीचर का उद्देश्य सत्य को आकर्षक, जिज्ञासामूलक और ज्ञानवर्धक ढंग से उजागर करना होता है। इसलिए फीचर में तथ्यों के प्रभाव और महत्व पर विशेष बल दिया जाता है।

फीचर में कल्पना का होना उसके प्रभाव में वृद्धि करता है। फीचर में क्योंकि किसी विशेष और विचित्र सत्य का विश्लेषण होता है। कल्पना, पाठक की जिज्ञासा को बताती व शान्त करती है तथा उसे नये सत्यलोक में ले जाती है। एलमो स्काट वाटसन का कहना है कि फीचर किसी भावना के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है। समाचार को इस प्रकार का रूप दिया जाता है कि वह आकर्षक बने और आम पाठक की भावनाओं का स्पर्श करे। पाठक जितना मानवीय भावनाओं से आन्दोलित होता है। उतना समाचार के महत्व से नहीं। फीचर को पढ़ने से पाठक को एक प्रकार का संतोष प्राप्त होता है, जो मनोरंजन, शिक्षा या जानकारी किसी भी रूप में हो सकता है। साधारण समाचार की अपेक्षा फीचर में लेखक का अनुभव, उसकी संवेदना तथा उसकी ललित शैली समाचार को पिरोये होती है। समाचार बड़ा बासी हो जाता है, परन्तु फीचर उसी समाचार का आधार लेकर भी सदा ताजगी से भरा रहता है। उसमें बासीपन नहीं आ पाता। डॉ. विवेकीराय के शब्दों में, "फीचर समाचारों अथवा सूचनाओं का वैचारिक कोण से स्वस्थ स्पर्श है। वह पत्रकार द्वारा सम्पन्न ऐसा शुद्ध साहित्यिक कार्य है, जो सृजनात्मक मूल्यों से जुड़ा होता है। फीचर में सूचनात्मकता की भावनात्मकता और कल्पनात्मकता का पुट देकर ऐसे प्रस्तुत किया जाता है कि मुख्य तथ्य की विश्वसनीयता और पुष्ट होती चलती है।"

फीचर के प्रकार

फीचर का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसे राई से लेकर पहाड़ तक किसी भी विषय और घटना को केन्द्र में रखकर लिखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, वह व्यक्ति प्रधान विधा न होकर विषय प्रधान विधा है। विस्तृत क्षेत्र में फैला होने के कारण इसके प्रकारों को निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। विषय की विविधता और विस्तार की दृष्टि से इसके निम्नलिखित वर्ग और प्रकार बनाये जा सकते हैं-

1. विशिष्ट घटना (शुद्ध, अकाल, दंगा आधारित)।
2. राजनीतिक घटनाओं पर आधारित।
3. सामाजिक समस्याओं को उभारने वाले।
4. वाद-विचार संबंधी चिन्तनात्मक फीचर।
5. स्थानिक या आंचलिक फीचर।
6. व्यक्ति विशेष की उपलब्धियों पर।
7. समाचार आधारित फीचर।

8. मेला, उत्सव, मनोरंजन आदि पर आधारित सांस्कृतिक फीचर।

9. महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रकाशन पर फीचर।

10. सोद्देश्य फीचर।

डॉ. विवेकीराय के उपर्युक्त वर्गीकरण में अन्तिम फीचर अस्पष्ट हैं। सभी फीचर किसी न किसी उद्देश्य से लिखे जाते हैं तब अलग से वर्ग का कोई अर्थ नहीं है। दूसरा वर्गीकरण प्रकृति के आधार पर डॉ. हरिमोहन ने किया है-

(1) समाचारी फीचर अथवा तात्कालिक फीचर।

(2) विशिष्ट फीचर।

तात्कालिक फीचर समाचार आधारित होता है, जिसमें किसी दैनिक समाचार को मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसमें तथ्यात्मकता अधिक और कल्पनाशीलता कम होती है। विशिष्ट फीचर में सामग्री की संग्रह करना पड़ता है। पुरानी सामग्री को भी काम में लाया जा सकता है। पुरानी स्मृतियों को पुनर्जीवित भी किया जा सकता है। उत्सवों, ऋतुओं, पर्यटन स्थलों ऐतिहासिक स्थानों, महापुरुषों, चिरस्मरणीय घटनाओं तथा जीवन के शाश्वत प्रश्नों पर लिखे गए फीचर विशिष्ट फीचर कहे जाते हैं। इन्हें पाठक सदैव पसन्द करते हैं और ये कभी बासी नहीं होते।

फीचर की रचना-प्रक्रिया

फीचर लेखन की प्रक्रिया त्रिआयामी है। अपने पहले आयाम में यह सृजनात्मक साहित्य की भाँति घटनाओं और स्थितियों की संवेदना को उभारती है। विचारों और भावों से नया संसार रचती है, उद्वेलित और आन्दोलित करती है। सूचनात्मक साहित्य के अनुरूप ज्ञान में वृद्धि करती है। दूसरी ओर यह समाचार संसार से समाचार तत्वों को ग्रहण करती है। इसे लिखने के लिए घर से बाहर आना पड़ता है, स्थितियों का सामना करना पड़ता है, तभी इस विधा का निर्माण होता है। इसके लिए लेखक में गहन निरीक्षण, मानवीय दृष्टिकोण, घटनाओं को भेद कर देखने की क्षमता, मार्मिक प्रसंगों की पहचान तथा उन्हें कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता होनी चाहिए। अनुभव की गहनता, अध्ययन की गहराई तथा विषय-ज्ञान की व्यापकता इसे और आकर्षक बना देती है।

इस लेखन प्रक्रिया पर पहला बिन्दु है- विषय का चुनाव। फीचर के लिए ऐसे विषय को चुनना चाहिए जो लोकरुचि का हो। मानव के हृदय का स्पर्श करें। पाठक के मन में उत्सुकता जाग्रत करे और उसे नयी जानकारी प्रदान करे। यद्यपि विषय तो कोई भी चुना जा सकता है, परन्तु पाठक के लिए उसकी उपयोगिता और समसामयिकता को ध्यान में रखना भी आवश्यक है। लेखक को इस बात का ध्यान भी रखना चाहिए कि वह फीचर किस पत्र या पत्रिका के लिए लिख रहा है और उसके पाठक किस वर्ग या रुचि के हैं?

दूसरे बिन्दु के अन्तर्गत सामग्री संकलन को लिया जाता है। इस कार्य के लिए लेखक को घटना स्थल, पर्यटन स्थल, मेला-स्थल, रीति-रिवाज, वस्त्राभूषण आदि के लिए उन स्थलों पर जाना पड़ता है जहाँ से सम्बद्ध विषय में सामग्री उपलब्ध हो सकती है। लेखक अपनी समस्त सामग्री-लेखनी, नोट बुग, कैमरा, टेपरिकार्डर आदि साथ लेकर जाता है। केवल निरीक्षण से ही काम नहीं चलता, उसे वहाँ पर रहने वाले लोगों से मिलकर बातचीत करके घटनाओं की सत्यता की परख करनी पड़ती है। घटना या स्थान को प्रत्येक कोण से देखकर

सामग्री को इकट्ठा करना पड़ता है। उसे आँख, कान को खुला रखकर तथा बुद्धि को सजग करके सामग्री संकलित करनी पड़ती है। निरीक्षण शक्ति की प्रखरता, तर्क-शक्ति की अकाट्यता दृष्टि की रचनात्मकता उसे लेखन की आकर्षक और प्रभावशाली बनाती है।

सामग्री संकलन के पश्चात् उसकी अभिव्यक्ति का बिन्दु उभरता है। सामग्री संकलन के बाद उसका लेखन कार्य आरम्भ होता है। इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं है, क्योंकि लेखन की प्रक्रिया लेखक की निजी होती है। फिर भी उसे एक पैरे में 'इण्ट्रो' या आमुख बनाना चाहिए जिसमें विषय की संक्षेप में जानकारी हो। या आमुख रोचक और आकर्षक हो। पाठक की उत्सुकता को जाग्रत करे। कम से कम शब्दों का, सरल वाक्यों का प्रयोग करते हुए पहला अनुच्छेद बनाना चाहिए। इसमें काव्यात्मक पंक्तियों, उद्धरणों, रेखाचित्रों, प्राकृतिक दृश्यों की झाँकी को प्रस्तुत किया जा सकता है।

मध्य भाग में विषय से सम्बद्ध घटनाओं का विस्तार, स्थितियों, क्रियाओं को जोड़कर आगे बढ़ा जा सकता है, परन्तु पाठक के साथ पाठक की जिज्ञासा को बढ़ाते जाना कुशल लेखन का काम है। यह भाग सन्तुलित, विवेचित और विश्लेषित होना चाहिए। इसमें ललित निबन्ध, व्यंग्य, रेखाचित्र, लघुकथा आदि साहित्यिक विधाओं की सहायता ली जा सकती है। इसे लिखते हुए लेखक का व्यक्तित्व हावी नहीं होना चाहिए। विषय और वातावरण प्रमुख रहे।

अन्तिम भाग सारांश के रूप में ही होता है। वह इस भाग में प्रश्नचिन्ह लगा सकता है, सुझाव दे सकता है। पाठक को सोचने के लिए बाध्य कर सकता है। अन्तिम पैरे के माध्यम से लेखक का दृष्टिकोण या उसका संदेश पाठक को प्रेषित होना चाहिए। फीचर का शीर्षक उसका प्राण होता है। इसका सोच-विचार करके चुनाव करना चाहिए। यदि शीर्षक नाटकीय, काव्यात्मक, सनसनीखेज, अनुप्रासी, आश्चर्यबोधक, प्रश्नसूचक है तो निश्चय ही इससे फीचर का आकर्षण बढ़ेगा। सामान्य शीर्षक कभी सफल नहीं माने जाते, अत: शीर्षक इस प्रकार का होना चाहिए कि पाठक उसके आकर्षण में बँधकर उसे पढ़ने को उत्सुक हो जाये।

छायांकन

फीचर लेखन में केवल शब्द ही नहीं होते, बल्कि छायाकारी भी उसे आकर्षक और प्रभावशाली बनाती है। फीचर की प्रवृत्ति क्योंकि दृश्यमूलक अधिक है, अत: वह छायाकारी में अधिक मुखर होती है। कई बार छायाकारी शब्दों की कमी को पूरा कर देती है। फीचर के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले चित्र किस प्रकार के होने चाहिए, उसके लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

1. छायाचित्र सुन्दर, सुस्पष्ट और मुद्रण की दृष्टि से अच्छे हो।
2. विषयवस्तु से सम्बद्ध चित्र ही प्रयुक्त किए जाने चाहिए।
3. छायाचित्र विषयवस्तु को साकार करने वाले, उसका विस्तार करने वाले तथा उसे सवाक् बनाने वाले होने चाहिए।
4. श्वेत-श्याम चित्र गहन, स्पष्ट और अच्छे कागज पर मुद्रित होने चाहिए। यदि रंगीन हों तो रंग गहरे, स्पष्ट तथा चमकदार होने चाहिए।

फीचर में पारदर्शियों का प्रयोग भी किया जाता है। इनके माध्यम से एक-एक रेखा उभर कर सामने आ जाती है। इनके संयोजन में भी सुविधा रहती है। ■

इकाई-2

आचार्य रामचंद्र शुक्ल (चिंतामणि)- कविता क्या है, श्रद्धा और भक्ति, क्रोध
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- कल्पलता, अशोक के फूल, कुटज

प्रश्न 5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबन्धों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

अथवा

आचार्य शुक्ल की निबन्ध शैली पर प्रकाश डालिए।

उत्तर-

आचार्य शुक्ल के निबन्धों की विशेषताएँ

आचार्य शुक्ल के निबन्धों की प्रमुख विशेषताओं का सम्यक् विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा किया जा सकता है-

1. मौलिकता—शुक्ल जी की प्रतिभा तलस्पर्शी थी। वह प्रतिपाद्य विषय या विवेच्य प्रश्न की उसके मूल में ग्रहण करते थे। मूल तत्व को पकड़ने के पश्चात् वे धीरे-धीरे उसका विस्तार करते थे। किसी विषय का प्रतिपादन करते समय वे जो तर्क देते थे, पहले उन पर पूरी तरह विचार करते थे। उनका प्रत्येक विचार तर्क की कसौटी पर अच्छी तरह कसा हुआ होता था। यही कारण है कि उनके निबन्धों में सर्वत्र उनकी मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते थे। यहाँ तक मनोविकार से सम्बन्धित निबन्धों में सृजन में आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान से प्रभावित हुए भी उनकी मौलिकता की रक्षा कर सके हैं। हो सकता है कि उन्होंने जिन मान्यताओं पर विचार किया हो, वे पूर्व स्थापित हों पर इससे उनकी मौलिकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, क्योंकि उन्होंने उन मान्यताओं को नवीन रूप प्रदान किया है।

2. परिमार्जित परिपक्व शैली—हिन्दी गद्य साहित्य को एक सर्वथा अनूठी सर्वोत्कृष्ट शैली प्रदान करने का श्रेय शुक्ल जी को है। सगुम्फित विचारों, सुगठित वाक्यों से युक्त उनकी शैली, शुक्ल जी के विचारों की परिपक्वता से युक्त है। वैज्ञानिक विवेचना ने उनकी शैली की प्रौढ़ता में अभिवृद्धि की है। सहज से सहज, जटिल से जटिल, सरल से सरल, गूढ़ गूढ़ से विचारों को वहन करने में उनकी शैली पूर्ण समर्थ हैं।

3. भाषा की समाहार शक्ति—शुक्ल जी के निबन्धों की भाषा सदैव ही उनके हर प्रकार के विचारों की अनुवर्तिनी के रूप सामने आयी है। थोड़े से शब्दों में बहुत सी बात कहना शुक्ल जी की भाषा की बहुत बड़ी विशेषता है, उनकी शब्द-योजना इतनी पूर्ण तथा सुगठित रहती है कि एक भी शब्द का प्रयोग न तो अनावश्यक रहता है और न उसमें परिवर्तन ही किया जा सकता है। शब्दों की इतनी सतर्क तथा सार्थक योजना अन्यत्र दुर्लभ है।

4. मस्तिष्क तथा हृदय का समन्वय—शुक्ल जी के निबन्धों में गम्भीरता एक विशेष गुण है इसका कारण यह है कि उनके अधिकतर निबन्ध चिन्तन प्रधान है, जिनमें बुद्धि अपना मार्ग तय करती हुई आगे बढ़ती है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि उनके निबन्ध बुद्धि के भार से बोझिल होकर सर्वथा नीरस, शुष्क हो गये हैं। बुद्धि के साथ भावना का भी मधुर पुट है जिसने उनके निबन्धों की गम्भीरता को एक संयत, शिष्ट सरसता प्रदान की है।

5. सुगठित विचार परम्परा—विचारों की सुगठित परम्परा शुक्ल जी के निबन्धों की प्रमुख विशेषता है। मोती की लड़ियों की भाँति विचार इस प्रकार एक-दूसरे में जुड़े हुए हैं कि यदि एक भी शब्द इधर से उधर कर दिया जाये तो सम्पूर्ण विचार श्रृंखला अस्त-व्यस्त हो जाएगी। विचारों की इस क्रमबद्धता तथा संगुम्फित परम्परा वाक्यों में पूर्वापर सम्बन्ध

स्थापित करने में बहुत सहायक हुई है। वाक्यों में इस पूर्वापर सम्बन्ध में अर्थ-बोध में बहुत बड़ी स्पष्टता आ जाती है। इस प्रकार सुगठित विचार-परस्पर शुक्ल जी के निबन्धों की मुख्य विशेषता है, जिसने इनकी निबन्धों को हिन्दी साहित्य का गौरव बना दिया है।

6. सशक्त अभिव्यक्ति—तीव्र एवं गहन चिन्तन-मनन तथा गूढ़ विचारों के साथ यदि प्रतिपादन की सशक्त शैली न हो तो उन विचारों का पूर्ण प्रभाव नहीं पड़ पाता है। शुक्ल जी के निबन्धों की यही विशेषता है कि उसमें प्रतिपाद्य विषय का पूर्ण निरूपण होता है। शुक्ल जी एक सफल वकील की भाँति प्रतिपाद्य विषय के पक्ष तथा विपक्ष पर विचार कर लेते हैं। उस विषय के विपक्ष में कौन से तर्क आ सकते हैं, उनका किस प्रकार मण्डन किया जा सकता है, इन सभी सम्भावनाओं पर शुक्ल जी भली प्रकार विचार कर लेते हैं। फिर अत्यन्त दृढ़, संयमित निर्भीक शैली में अपना विचार रखते हैं।

7. विषय की सम्बद्धता—विषय की सम्बद्धता शुक्ल जी के निबन्धों की एक अन्य प्रमुख विशेषता है। किसी विषय का प्रतिपादन करते समय शुक्ल जी मुख्य विचार को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ते हैं तथा एक पल के लिए वह विचार उनकी पकड़ से नहीं छूटता है। उनके निबन्धों में आवश्यक विषय के दर्शन नहीं मिलते हैं। हर विषय सन्दर्भ के अनुकूल ही होता है।

8. विवेचना की निगमन पद्धति—शुक्ल जी के निबन्धों की विवेचना की प्रमुख विशेषता निगमन पद्धति का प्रयोग है। इसमें शुक्ल जी सबसे पहले सूत्र प्रस्तुत करते हैं फिर उसका भाग्य तथा अन्त में सारांश। उनके विचारात्मक निबन्धों की गम्भीर विवेचना में यह पद्धति बहुत उपयोगी रही है।

शुक्ल जी के निबन्ध विभिन्न अनुच्छेदों में बँटे होते हैं। प्रत्येक अनुच्छेद का प्रथम वाक्य एक सूत्र में होता है, वस्तुत: यही वाक्य पूरे अनुच्छेद का निष्कर्ष होता है। यह सूत्र वाक्य दुर्बोध होता है। आगे के वाक्यों में इस सूत्र वाक्य की विवेचना करते हैं और अन्त में सारांश देकर पूरे विषय को जो उस अनुच्छेद में प्रतिपादित है, स्पष्ट कर देते हैं। वस्तुत: शुक्ल जी की यह पद्धति आध्यापकोचित पद्धति है, जो विषय को एकदम स्पष्ट कर देती है। उस निबन्ध को पढ़ने वाले पाठक मानों विद्यार्थी हैं, जो सब कुछ हृदयमंग करते जाते हैं।

9. वैयक्तिकता की गहन छाप—शुक्ल जी के निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप स्पष्ट है। गहन चिन्तन, तलस्पर्धी प्रतिभा, प्रखर आलोचना शक्ति, गूढ़ निबन्ध-लेखन सफल अध्यापन विस्तृत अध्ययन, सरल भावुकता आदि विशेषताओं से युक्त उनका व्यक्तित्व, उनके निबन्धों में पग-पग पर अपनी छाप छोड़ता चला है। विशिष्ट भाषा शैली से युक्त उनके निबन्धों का प्रत्येक शब्द जैसे कह रहा हो कि वह शुक्ल जी की लेखनी से प्रस्तुत हैं।

10. हास्य व्यंग्य की छटा—कठिन मानसिक कार्य करते-करते जैसे कोई व्यक्ति थक जाता है और कुछ पलों का मनोविनोद चाहता है, उसी प्रकार विषय का गम्भीरतापूर्वक प्रतिपादन करते-करते जैसे मानसिक श्रम के परिहार के लिए शुक्ल जी बीच-बीच में हास्य-व्यंग्य की छटा बिखेरते चलते हैं। पर हास्य-व्यंग्य का यह रूप इतना संयमित होता है कि विषय की अपेक्षित गम्भीरता कभी कम नहीं होती है।

11. वैज्ञानिक विवेचन—शुक्लजी की गद्य शैली की सबसे बड़ी विशेषता उसका वैज्ञानिक विवेचन है। इस शैली में कहीं भी यह प्रतीत नहीं होता है कि लेखक कलात्मक सौन्दर्य उपस्थित करने का बलात् प्रयास करता है। ■

प्रश्न 5. (अ) 'चिन्तामणि' में संकलित आचार्य शुक्ल के निबन्ध 'विचार प्रधान हैं या भाव प्रधान' तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।

अथवा

'चिन्तामणि' में संकलित आचार्य निबन्धों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण कीजिए।

अथवा

भाव तत्व एवं बुद्धि तत्व पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल के निबन्धों पर विचार कीजिए।

उत्तर- "चिन्तामणि" निबन्ध शैली के शिल्पी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के प्रौढ़ावस्था में प्रणीत निबन्धों का संग्रह है। निबन्ध शिल्प की कोटि की यह सर्वोत्कृष्ट रचना है। अपने विषय, विषय-प्रतिपादन शैली एवं प्रौढ़ भाषा की दृष्टि से न पूर्ववर्ती और न अंतरावर्ती चिन्तामणि में संग्रहित निबन्धों की कोटि में प्रस्तुत किए जाने योग्य हैं। लेखक ने अपनी अन्तर्यात्रा में पड़े स्थलों को अपने निबन्धों का विषय प्रतिपाद्य चुना है। जिनमें यात्रा के लिए निकली है बुद्धि किन्तु हृदय को साथ लेकर। हृदय के साहचर्य के इन निबन्धों में मार्मिक स्थल शुक्ल के भावुक हृदय का प्रश्रय प्राप्त कर भावनात्मकता से आलावित हो उठे हैं। बुद्धि पक्ष ने नि:संदेह चिन्तामणि के निबन्धों को विचारपूर्वक बनाया है, किन्तु हृदय पक्ष की सरस भावुकता के साथ-साथ पाठकों का श्रम परिहार करती चलती है। जिस प्रकार रामचरित्र चित्रण की परम्परा में रामचरित मानस की रचना सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार निबन्ध रचना की परम्परा में अभी तक चिन्तामणि सर्वश्रेष्ठ निबन्ध रचना है।

उत्कृष्ठ निबन्ध कला का प्रतीक यह निबन्ध संग्रह विषय एवं विषय प्रतिपादन में निहित लेखक के चिन्तन, मनन, अध्ययन, मौलिकता, विद्वता व प्रतिभा से निर्मित व्यक्तित्व से मण्डिल है। साहित्यिक दृष्टि से इसका निबन्धों में इतना महत्वपूर्ण स्थान है कि तुलसी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित आचार्य शुक्ल ने तुलसी 'पाय नाम चारु चिन्तामणी' से इसके नामकरण की प्रेरणा ली है। वस्तुत: न केवल शुक्ल साहित्य में वरन् समस्त हिन्दी निबन्ध में साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने चिन्तामणि को मंगलाप्रसाद पारितोषिक से पुरस्कृत कर इसके मान मूल्य के अंकन में अपनी न्यायप्रियता का परिचय दिया है।

समय विशेष की दशाओं की पृष्ठभूमि में प्रणीत ग्रन्थ जीवन के शाश्वत तथ्यों के निरुपण के अभाव में काल विशेष में ही ग्राह्य होते हैं, किन्तु चिरन्तन तत्वों में प्राणवत् रचनाएँ सृष्टिपर्यन्त अपना महत्व नहीं खों पाती। चिन्तामणि ऐसी ही निबन्ध संग्रह है, जिसके निबन्ध, रत्न राशि की तरह सदैव साहित्य निधि का श्रृंगार करते रहेंगे। वस्तुत: चिन्तामणि निबन्ध शिल्प की दृष्टि से हिन्दी साहित्य को आचार्य शुक्ल की अनुपम देन है। जयंनाथ 'नलिन' ने चिन्तामणि के निबन्धों के सम्बन्ध में लिखा है- "शुक्ल जी ने चिन्तामणि में हिन्दी निबन्ध की जो सशक्तता, प्रौढ़ता, गम्भीरता और चिन्तनशीलता दी उसे कमी जरा नहीं आयेगी। समय के निरंकुश और निर्दय हाथ उसके स्वरूप बिगाड़ने में कभी समर्थ न होंगे।

चिन्तामणि के निबन्धों का वर्गीकरण

चिन्तामणि के पहले भाग में 17 विचारात्मक निबन्ध संकलित है। चिन्तामणि में संग्रहित आचार्य शुक्ल ने इन निबन्धों को स्थूल रूप से दो वर्गों में विभाजित किया है-

(1) भाव या मनोविकार सम्बन्धी (2) समीक्षात्मक निबन्ध।

निबन्ध शिल्प की दृष्टि से विद्वानों ने समीक्षात्मक निबन्धों को भी दो वर्गों में बाँटा है- (1) सैद्धान्तिक समीक्षा निबन्ध (2) व्यावहारिक समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध।

श्री जयनाथ 'नलिनी' में आचार्य शुक्ल के निबन्धों को 4 भागों में बाँटा है-

(1) मनोविकार सम्बन्धी (2) साहित्य सिद्धान्त सम्बन्धी (3) व्यावहारिक साहित्य समीक्षा सम्बन्धी (4) आलोचनात्मक प्रबन्ध।

अपनी दृष्टि में निबन्ध एवं प्रबन्ध दोनों पृथक्-पृथक् विधायें हैं। यदि आलोचनात्मक प्रबन्ध को निबन्ध ही मान लिया जाये तो आलोचनात्मक प्रबन्ध विषयक वर्ग का साहित्य सिद्धान्त सम्बन्धी वर्ग में सन्निवेश हो जाना चाहिए। इस दृष्टि से चिन्तामणि प्रथम भाग में संकलित निबन्धों के तीन वर्ग ही होने चाहिए।

श्री शिवनाथ एम.ए. ने अपने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नामक ग्रंथ में चिन्तामणि में संग्रहित निबन्धों का इस प्रकार श्रेणी बन्धन किया है-

"इन निबन्धों को देखे से विदित होता है कि इनको दो श्रेणियों में सरलतापूर्वक बाँटा जा सकता है। एक श्रेणी में तो भावों या मनोविकारों पर लिखे गए निबन्ध आते हैं और दूसरी श्रेणी में समीक्षात्मक निबन्ध। इन समीक्षात्मक निबन्धों के भी स्पष्टत: दो विभाग लक्षित होते हैं। एक विभाग में वे निबन्ध आयेंगे जो सैद्धान्तिक समीक्षा पर लिखे गए हैं, जैसे कविता क्या है?.... दूसरे विभाग में वे निबन्ध आयेंगे जो व्यावहारिक समीक्षा पर लिखे गए हैं, "भारतेन्दु हरिशचन्द्र।"

उक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत चिन्तामणि के समस्त निबन्धों का विवरण इस प्रकार है-

1. भाव या मनोविकार सम्बन्धी निबन्ध—'भाव या मनोविकार', 'उत्साह', 'श्रद्धा भक्ति', 'करुणा', 'लज्जा' और 'ग्लानि', 'लोभ और प्रीति' घृणा, ईर्ष्या, 'भय और क्रोध'।

2. सैद्धान्तिक समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध—'कविता क्या है?' साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्रवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूप', काव्य में लोक मंगल की साधनास्था।

3. व्यावहारिक समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध—'भारतेन्दु हरिशचन्द्र', तुलसी का भक्ति मार्ग और 'मानस की धर्म भूमि'।

बुद्धि तत्व और हृदय तत्व की प्रधानता के आधार पर इन्हें विचारात्मक तथा भावात्मक निबन्धों की श्रेणियों में बाँटा जा सकता है, किन्तु न सभी निबन्ध पूरी तरह विचारात्मक ही हैं और न भावात्मक। वे अधिकांशत: तो विचारात्मक ही हैं, किन्तु विचारात्मक निबन्धों में भी ऐसे मार्मिक स्थल आ ही गये हैं, जहाँ शुक्ल जी कवि हृदय की भाव भरी मन्दीकिनी मरुस्थल पक्ष का भी प्राधान्य है। इनमें स्पष्ट है कि इनके निबन्ध बुद्धि तत्व एवं बुद्धि तत्व एवं हृदय तत्वों दोनों के रुचिपूर्ण पूर्ण समन्वय हैं। वैसे उनमें स्पष्ट है कि इनके निबन्ध बुद्धि तत्व एवं हृदय तत्व दोनों के रूचि समन्वय हैं। वैसे उनमें विचारात्मक का अंश अपेक्षाकृत अधिक है। निबन्धों के विषय तथा उनमें लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रश्न उठता है कि शुक्ल जी के निबन्ध विषय प्रधान हैं या व्यक्ति प्रधान। हम समझते हैं कि शुक्ल जी ने जहाँ विषय विवेचन को अधिक बल दिया है, वहाँ उचित प्रसंग आने पर विषय को अपने व्यक्तित्व से भी प्रभावित किया है। इनका व्यक्तित्व विषय में सम्बद्ध उनकी गहन अनुभूतियों, अवस्थाओं एवं परिस्थापनाओं में उभरा है। निबन्ध शिल्प सर्वथा उनके व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है। विषय विस्तार में उनके सानुपातिक व्यक्ति की निहित है।

■

प्रश्न 5. (ब) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित 'कविता क्या है'? निबन्ध की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

उत्तर- ''कविता क्या है?'' की विशेषताएँ

मनुष्य अपने भावों, विचारों और व्यापारों को लिए दिए दूसरों के भावों, विचारों और व्यापारों के साथ कहीं मिलाता और कहीं लड़ाता हुआ अन्त तक चला चलता है और इसी को जीना कहता है। जिस अनंत-रूपात्मक क्षेत्र में यह व्यवसाय चलता रहता है उसका नाम है जगत्। जब तक कोई अपनी पृथक् सत्ता की भावना को ऊपर किए इस क्षेत्र के नाना रूपों और व्यापारों को अपने योगक्षेम, हानि-लाभ, सुख-दु:ख आदि से संबद्ध करके देखता रहता है, तब तक उसका हृदय एक प्रकार से बद्ध रहता है। इन रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी वह अपनी पृथक् सत्ता की धारणा से छूटकर अपने आपको बिल्कुल भूलकर विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं।

कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है, इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है। जिस प्रकार जगत् अनेक रूपात्मक है, उसी प्रकार हमारा हृदय भी अनेक भावात्मक है। इन अनेक भावों का व्यायाम और परिष्कार तभी समझा जा सकता है, जबकि इन सबका प्रकृत सामंजस्य जगत् के भिन्न-भिन्न रूपों, व्यापारों या तथ्यों के साथ हो जाए। इन्हीं भावों के सूत्रों से मनुष्य-जाति जगत् के साथ तादात्म्य का अनुभव चिरकाल से करती चली आयी है। जिन रूपों और व्यापारों से मनुष्य आदिम युगों से ही परिचित है, जिन रूपों और व्यापारों को सामने पाकर वह नरजीवन के आरम्भ से ही लुब्ध और क्षुब्ध होता आ रहा है, उनका हमारे भावों के साथ मूल या सीधा सम्बन्ध है। अत: काव्य के प्रयोजन के लिए हम उन्हें मूल रूप और मूल व्यापार कह सकते हैं। इस विशाल विश्व के प्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष और गूढ़ से गूढ़ तथ्यों को भावों के विषय या आलम्बन बनाने के लिए इन्हीं मूल रूपों और मूल व्यापारों में परिणत करना पड़ता है। जब तक वे इन मूल मार्मिक रूपों में नहीं लाए जाते, तब तक उन पर काव्य दृष्टि नहीं पड़ती।

वन, पर्वत, नदी, नाले, निर्झर, कछार, पटमर, चट्टान, वृक्ष, लता, झाड़ी, फूल, शाखा, पशु-पक्षी, आकाश, मेघ, नक्षत्रा, समुद्र इत्यादि ऐसे ही चिर-सहचर रूप हैं। खेत, दुर्ग, हल झोंपड़े, चौपाए इत्यादि भी कुछ कम पुराने नहीं हैं। इसी प्रकार पानी का बहना, सूखे पत्तों का झड़ना, बिजली का चमकना, घटा का घिरना, नदी का उमड़ना, मेघ का बरसना, कुहरे का छाना, डर से भागना, लोभ से लपकना, छीनना, झपना, नदी या दलदल से बाँह पकड़कर निकालना, हाथ से खिलाना, आग में झोंकना, गला काटना ऐसे व्यापारों का भी मनुष्य-जाति के भावों के

साथ अत्यन्त प्राचीन साहचर्य है। ऐसे आदिम रूपों और व्यापारों में वंशानुगत वासना की दीर्घ-परम्परा के प्रभाव से, भावों के उद्‌बोधन की गहरी शक्ति संचित है, अत: इनके द्वारा जैसा रस-परिपाक सम्भव है वैसा कल-कारखाने, गोदाम, स्टेशन, इंजिन, हवाई जहाज ऐसी वस्तुओं तथा अनाथालय के लिए चेक काटना, सर्वस्वहरण के लिए जाली दस्तावेज-बनाना, मोटर की चरखी घुमाना या इंजिन में कोयला झोंकना आदि व्यापारों द्वारा नहीं।

आचार्य शुक्ल द्वारा रचित निबन्ध "कविता क्या है ?" की विशेषताओं का सम्यक विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा किया जा सकता है-

1. सभ्यता के आवरण और कविता—सभ्यता के विकास के साथ जीवन जटिलतम होता गया, मूलरूप सभ्यता से आच्छन्न हो गए तथा बुद्धि ने इनमें परिवर्तन कर दिया तथा नवीन भावों का सृजन और प्राचीन भावों का रूप घटने-बढ़ने लगा। रक्षा का भाव अपनी और सन्तति रक्षा तक सीमित न रहकर धन, मान अधिकार, प्रभुत्व तक बढ़ गया। साथ ही रक्षा के उपाय भी परिवर्तित हो गये।

इतना परिवर्तन तथा जटिलता मूल रूपों में आने पर भी मनुष्य का सम्बन्ध उससे बना रहेगा। भाव के विषय का किंचित, मात्र परिवर्तित हो जाना ही शुक्ल जी सभ्यता मानते हैं। यद्यपि काव्य दृष्टि से कोई भेद नहीं है, परन्तु यह आवृत रूप उतना मर्मस्पर्शी नहीं होगा। इसी आवरण को दूर करना कवि कर्म का एक मुख्य अंग है तथा सभ्यता के विकास के साथ कवि कर्म बढ़ता जाएगा। हमारी वृत्तियों पर जैसे-जैसे यह आववण चढ़ेगा त्यों-त्यों रागात्मक सम्बन्ध की अधिक आवश्यकता पड़ेगी तथा कवि कर्म कठिन होता जाएगा। किसी वस्तु का जब मूल शुद्ध रूप आएगा तभी उसे कार्य के उपयुक्त रूप प्राप्त होगा, क्योंकि इसमें मर्मस्पर्श का तत्व आ जाएगा। इस प्रकार काव्य के लिए अनेक स्थलों पर हमें भावों के विषयों के मूल और आदिम रूपों तक जाना होगा जो मूर्त और गोचर हैं। भाव के सुख और दु:ख का प्रत्यक्ष मूर्त चित्रण ही हमारे हृदय में मनोवेग उत्पन्न कर सकता है, क्योंकि अर्थ ग्रहण से ही काम नहीं चलता, काव्य में बिंबग्रहण अपेक्षित है और मूर्त, गोचर निर्दिष्ट रूप का ही हो सकता है।

2. कविता और सृष्टि प्रसार—शुक्ल जी भी काव्य का आलम्बन प्राचीन (आदिम) रूप ही रखना चाहते थे। उन्होंने कविता क्षेत्र संकुचित न रखकर कविता द्वारा मनुष्य की अन्त:प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति का मिलन करवाकर भावात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयत्न करवाया है। सृष्टि से अपने को विलग करने पर मनुष्य में मनुष्यता नहीं रहेगी। यदि शेष सृष्टि के नित्य-प्रति के विभिन्न व्यापारों ने उसको प्रभावित नहीं किया तो उसके जीवन में रह ही क्या गया।

काव्य क्षेत्र बड़ा ही व्यापक हैं, शुक्ल जी ने तीन विस्तृत क्षेत्रों में उसे विभाजित किया है- 1. नर क्षेत्र 2. मनुष्येतर बाह्य सृष्टि, 3. समस्त चराचर।

(अ) नर क्षेत्र—यही कविता का सर्वाधिक व्यापक क्षेत्र है। मुक्तक तथा प्रबन्ध काव्य इसी में लिखे गए हैं। इसमें मानव की बाह्य तथा अन्त:प्रकृति के सम्बन्ध ज्ञात होते हैं, परन्तु इसमें कहीं-कहीं अन्य दो क्षेत्र भी मिल जाते हैं, इनमें बाह्य प्रकृति उद्दीपन रूप या नाम गिनाने तक ही हैं। श्रृंगार वर्णन में प्रस्तुत किए गए प्राकृतिक दृश्यों के प्रति नायक नायिका वाला रति-भाव नहीं होता। यह केवल नर सम्बन्धी भावना को तीव्र करते हैं।

(ब) मनुष्येतर बाह्य सृष्टि—इस क्षेत्र में प्रकृति आलम्बन रूप में अधिकतर संस्कृति के प्रबन्ध काव्यों में है। वर्णित वस्तुओं को मन दो रूपों में ग्रहण करता है- 1. बिम्ब ग्रहण, 2. अर्थ ग्रहण। किसी वस्तु का नाम लेने पर उसका रूप हमारे सम्मुख उसके रंग, रूप, अंग सहित भी आ सकता है और केवल उसके अर्थ-रूप में भी। बिम्ब (रंग-रूप अंग) ग्रहण के लिए कवि की सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। कालिदास का मेघदूत मनुष्येतर बाह्य प्रकृति वर्णन का सुन्दर उदाहरण है, जिसमें एक भावुक हृदय की अपनी प्यारी भूमि की रूप माधुरी पर सीधी सादी प्रेम दृष्टि। विभिन्न रूपों में प्रकृति हमारे सम्मुख आती हैं, कहीं उग्र कहीं कराल, कहीं भव्य रूपों में। कवि चिर-साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना के कारण सभी रूपों में अनुराग रखता है। जो प्रकृति के सुन्दर भव्य रूप में ही अनुराग रखते हैं, वह विषयी या भोगलिप्सु, तमाशबीन है, भावुय या सहृदय नहीं। साहचर्य-संभूत रस के प्रभाव से सामान्य सीधे-सादे चिर-परिचित दृश्यों में कितने माधुर्य की अनुभूति होती है। बाल्य जीवन की स्मृतियाँ हमारे भावों को लीन कर देती हैं। सीधी-सादी वस्तु में ही हमें असीम माधुर्य मिल जाता है। कहीं भी रहकर हम प्रकृति के विस्तृत प्रांगण को सर्वथा नहीं त्याग सकते। स्वयं ही चिर स्थापित विचार, भावनाएँ उस ओर खींच ले जाते हैं और इनमें रहने वाले ही भावुक कहे जाते हैं। प्रकृति को केवल विलास रूप में देखने वालों में रागात्मक तत्व का नितांत अभाव होता है।

प्राकृतिक तथ्यों पर कवि आरोप करके उसे काव्य से सूक्ति के क्षेत्र में घसीट लाता है, यह अलंकार रूप हो जाता है और वास्तविक सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। शुक्ल जी ने धार्मिक तथ्यों तथा अन्योक्तियों द्वारा वह बात स्पष्ट करने की चेष्टा की है। शुक्ल प्रत्यक्ष जीवन में ही वास्तविक रसानुभूति मानते हैं, उनका आग्रह अर्थ ग्रहण की अपेक्षा बिम्ब ग्रहण पर अधिक है।

(स) समस्त चराचर पूर्ण काव्य दृष्टि—समस्त चराचर के मार्मिक तथ्यों में अनुराग रखने वाली काव्य दृष्टि अधिक गम्भीर और व्यापक कही जाती है। भावना का इतना विस्तार होना नरसत्ता को अनन्त व्यक्त सत्ता में समझते हैं और हमारी पार्थव्य बुद्धि का परिहास होता है। उस समय हृदय उच्चभूमि पर पहुँचकर अनुभूति को भी बदल डालता है।

इन क्षेत्रों में कुछ तथ्य गूढ़ और कुछ प्रत्यक्ष होते हैं। "जो तथ्य हमारे किसी भाव को उत्पन्न करे, उसे भाव का आलम्बन कहना चाहिए।" ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रस्तुत सामग्री भी भाव संचार का मार्ग प्रशस्त करती है। शुक्ल जी कहते हैं, ज्ञान क्षेत्र को बुद्धि व्यवसायात्मक विस्तार होने के कारण हमें अपने हृदय का भी विस्तार करना होगा।

3. काव्य और व्यवहार—भाव ही मनुष्य के कर्म में प्रवृत्ति करने वाली मूल प्रवृत्ति हैं, केवल बुद्धि तथा ज्ञान द्वारा ही कुछ नहीं हो सकता। कर्म प्रवृत्ति के लिए हृदय में वेग की आवश्यकता होती है, शुद्ध ज्ञान या विवेक में यह वेग नहीं होता, होता है केवल कविता में। काव्य कर्म तथा क्षेत्र में बाधक नहीं साधक है। कविता में मन का परिष्कार होता है, संकुचित, स्वार्थ पूर्ण क्षेत्र से निकलकर वह चराचर से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर उच्च स्तर पर उठ जाता है।

4. मनुष्यता की उच्च भूमि—मनुष्य की क्रियाओं, भाव मनोविकारों को कविता विस्तृत करती है। मनुष्यत्व में पशुत्व से अधिक भाव प्रसार होता है। इससे उसके हृदय में समस्त प्राणी मात्र से प्रेम करने का स्थान बन गया। काव्य के कारण ही वह प्रकृति के अणुमात्र से भी अनुराग रखता है। कवि की वाणी से हृदय का बन्धन खुलकर मनुष्यता की उच्च भूमि प्राप्त होती है तथा जड़, मृत, शुष्क हृदय को भी प्रकृति दशा में लाती है। "भाव योग की

सबसे उच्च कक्षा पर पहुँचे हुए मनष्य का जगत् के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाता है, उसकी अलग भाव सत्ता नहीं रह जाती, उसका हृदय विश्व हृदय हो जाता है।''

5. भाव या कल्पना—शुक्ल जी कहते हैं, काव्यानुशीलन, भावयोग तथा उपासना एक ही है। दूर स्थित वस्तु की मूर्ति हृदय में लाना आजकल 'भावना' या 'कल्पना' कहलाता है। कल्पना भाव-प्रवर्तन के लिए आवश्यक है। शिथिल, अशक्त, भावना या कल्पना वालों में रागात्मकता का अभाव होता है। कल्पना दो प्रकार की होती है- 1. विधायक, 2. ग्राहकों। विधायक कवि में अपेक्षित होती है, ग्राहक पाठक मे जहाँ कवि पूर्ण चित्रण नहीं करता, वहाँ पाठक को अपनी ओर से मूर्ति प्रधान करना पड़ती है।

6. मनोरंजन—कविता का अन्तिम लक्ष्य जगत् के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है, न केवल मनोरंजन द्वारा कविता मनुष्य के चित्त की अस्थिरता को रोक देती है, इसी रमाने वाली शक्ति के कारण पंडितराज जगन्नाथ ने रमणीयता का काव्य का साध्य स्थिर किया। मनोरंजन तो कहानी भी करती है, परन्तु भाव का प्रसार केवल कविता से ही होता है। कविता विलास की सामग्री नहीं है।

7. सौन्दर्य—''सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है मन के भीतर की वस्तु है।'' कुछ वस्तुओं का बाह्य रंग-रूप हमारे मन पर अधिकार जमाकर उसका ज्ञान नष्ट कर देता है और हम उस वस्तु की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं और अन्तस्सत्ता की यही तदाकार-परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। यह परिणति जिस वस्तु की जितनी अधिक होगी वह उतनी ही अधिक सुन्दर कही जाएगी। किसी वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से हमारी अपनी सत्ता का बोध जितना तिरोभाव होकर मन उस वस्तु के रूप में परिणति होगी, उतनी बड़ी हमारी सौन्दर्य अनुभूति कही जाएगी। संसार में सौन्दर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित है, भेद केवल अनुभूति की मात्रा का है। जिसे सौन्दर्य की भावना में मग्न होकर मनुष्य अपनी पृथक् सत्ता की प्रतीति का विसर्जन करता है, वह अवश्य एक दिव्य विभूति है।

कविता वस्तुओं के रंग रूप के ही नहीं, कर्म और मनोवृत्ति के सौन्दर्य के भी अत्यन्त मार्मिक दृश्य सामने रखती है। कविता कुरूप को भी सुन्दर रूप दे देती है।

सुन्दर तथा असुन्दर काव्य के यहीं दो पक्ष हैं। कवि की दृष्टि सुन्दर ही की ओर जाती है। कवि कई प्रकार के सौन्दर्य का मेल करके प्रभाव वृद्धि करते हैं।

8. चमत्कारवाद—काव्य में मनोरंजन आकांक्षी उसमें चमत्कार अथवा अनूठापन ढूँढते हैं। परन्तु गम्भीरता और ऊँचे लक्ष्य वाले लोग चमत्कार को काव्य नहीं मानते। शुक्ल जी का तात्पर्य चमत्कार से यहाँ अद्‌भुततत्व या वैलक्ष्य राय से नहीं,उक्ति-चमत्कार से है, जिसमें वर्ण-विकास की विशेषता शब्दों की क्रीड़ा, वाक्य-वक्रता इत्यादि होती है। भाव की अनुभूति तीव्र करने के लिए भावुक कवि इसका प्रयोग करते हैं। उक्ति-वैचित्र्यशून्य को चमत्कारवादी मर्मस्पर्शी होते हुए काव्य नहीं मानते। परन्तु स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी कविता की काव्य है। हृदय में भाव जाग्रत करने वाली अथवा प्रस्तुत तथ्य में लीन कर देने वाली उक्ति काव्य है, जो कथन के अनूठेपन, रचना वैचित्र्य, चमत्कार और कवि की निपुणता में लीन करे वह सूक्ति है। रसात्मकता तथा चमत्कार की प्रधानतानुसार काव्य अथवा सूक्ति का निर्णय कर लिया जाता है। कुन्तल के ''वक्रोक्तिः-काव्य-जीवितम्'' के अनुसार उक्ति की वक्रता हम वहीं मान सकते हैं, जहाँ तक वह भावानुमोदित हो या किसी मार्मिक अन्तर्वृत्ति से सम्बद्ध हो, इससे आगे नहीं। ■

प्रश्न 6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध 'श्रद्धा-भक्ति' का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए। अथवा
श्रद्धा-भक्ति निबन्ध का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। अथवा
श्रद्धा-भक्ति निबन्ध की समीक्षा अपने शब्दों में कीजिए।

उत्तर-

श्रद्धा-भक्ति निबन्ध की समीक्षा

श्रद्धा किसी मनुष्य-विशेष में जनसाधारण से विशिष्ट गुण तथा शक्ति को देखकर मन में उस व्यक्ति के प्रति जो विशेष भाव उत्पन्न होता है, उसे श्रद्धा कहते हैं। उस व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करने में किसी प्रकार की विवशता नहीं होती। मनुष्य अनायास ही उसे स्वीकार कर आनन्द का अनुभव करता है। हमारी श्रद्धा का पात्र सज्जन, गुणवान, वीर, दानी तथा विद्वान, परोपकारी ही हो सकता है। श्रद्धालु श्रद्धेय की निन्दा या बुराई न सुन सकता है न सहन कर सकता है। इसलिए शुक्ल जी का कथन है, "इससे सिद्ध होता है कि जिन कर्मों के प्रति श्रद्धा होती है उनका होना संसार का वांछित है। यही विश्व-कामना श्रद्धा की प्रेरणा का मूल है।

श्रद्धा और प्रेम में विशिष्ट अन्तर होता है। श्रद्धा का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा प्रेम का क्षेत्र सीमित होता है। शुक्ल जी के अनुसार, "प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि कोई मनुष्य किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो। प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार।" यह कारण है कि मनुष्य से प्रेम करने वाले एक-दो ही मिलते हैं पर श्रद्धा रखने वालों की संख्या करोड़ों तक पहुँच जाती है। मनुष्य के सभी कार्यों का प्रभाव समाज पर पड़ता है। इसलिए गुणवान व्यक्ति अपने सुकर्मों द्वारा ही समाज के आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। प्रेमी स्वप्नों के संसार में प्रिय के साथ विचरण विस्तृत जगत में आंकता है। इसी कारण शुक्ल जी ने लिखा है, "यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है। प्रेम में दो पक्षों की ही प्रधानता रहती है (प्रिय और प्रेमी की) पर श्रद्धालु, श्रद्धेय और मध्यस्थ तीन पक्ष अनिवार्यत: रहते हैं। बहुधा प्रेम का कारण अज्ञात होता है- पर श्रद्धा का कारण प्रत्यक्ष रूप में ज्ञात तथा निर्दिष्ट होता है।"

श्रद्धा में कर्म की प्रधानता होती है और प्रेम में व्यक्ति की प्रधानता होती है। प्रेमी अपने प्रियतम पर अपना अधिकार नहीं जमाना चाहता। इसलिए आचार्य शुक्ल श्रद्धा को एक सामाजिक भाव मानते हैं। पर प्रेम एक स्वार्थ पूर्ण व्यक्तिगत भाव है। श्रद्धालु की सदैव यही कामना होती है कि उसके श्रद्धापात्र के श्रद्धालुओं की संख्या में और भी वृद्धि हो- परन्तु प्रेमी यह कभी भी नहीं चाहता है कि जिससे वह प्रेम करता है, विश्व के अन्य पुरुष भी उससे प्रेम करने लगें। कारण कि प्रेम एक संकुचित भाव है। श्रद्धालु अपने भाव मे विश्व को भी सम्मिलित करने का प्रयत्न करता है- पर प्रेमी ऐसा नहीं चाहता।

कृतज्ञता के भाव को स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी का कथन है, "श्रद्धा एक सामाजिक भाव है, इससे अपनी श्रद्धा के बदले में हम श्रद्धेय से अपने लिए कोई बात नहीं चाहते। ....श्रद्धा एक ऐसी आनन्दपूर्ण कृतज्ञता है, जिसे हम केवल प्रतिलिपि रूप में प्रकट करते हैं।" समाज ने मनुष्य को सदाचार पर श्रद्धा तथा अत्याचार परक्रोध प्रकट करने का अधिकार सौंप रखा है। जो भाव व्यक्तिगत उपकार के प्रति उत्पन्न होता है, उसे कृतज्ञता तथा जो भाव सर्वसाधारण के उपकार के लिए होता है, उसे श्रद्धा के अन्तर्गत लिया जाता है। श्रद्धा में दूसरे महत्व को आवश्यक रूप से स्वीकार करना पड़ता है। स्वार्थियों और अभिमानियों की संकुचित

विचारधारा होने के कारण उनमें श्रद्धा का भाव नहीं समा सकता। उनके संकुचित हृदय में श्रद्धा द्वारा ऐसे प्रेम तथा पवित्र भाव को ग्रहण करने की क्षमता नहीं होती।

शुक्ल जी ने श्रद्धा को तीन भागों में विभक्त किया है-

(अ) प्रतिभा-सम्बन्धिनी, (ब) शील-सम्बन्धिनी, (स) साधन-सम्पत्ति-सम्बन्धिनी।

प्रतिभा-सम्बन्धिनी श्रद्धा के लिए श्रद्धालु में गुण-ग्राहकता और निपुणता का होना आवश्यक है। जब तक श्रद्धालु में निपुणता का गुण नहीं होगा, तब तक वह किसी गुण का सूक्ष्मता से निरीक्षण नहीं कर सकता। **शील-सम्बन्धिनी** श्रद्धा को शुक्ल जी प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य स्वीकार करते हैं। वस्तुत: शील धर्म का दूसरा नाम है। सदाचारी के प्रति श्रद्धा दिखाकर हम अपने सामाजिक धर्म के कर्तव्य का पालन करते हैं। धर्म की ही मानव समाज का आधार-स्तम्भ है। इसी कारण शुक्ल जी श्रद्धा को धर्म का पहला सोपान स्वीकार करते हैं तथा धर्म को दूसरा। व्यक्ति किसी सदाचारी या आदर्शवान पुण्यात्मा में श्रद्धा रखकर ही कार्य में अग्रसर होता है, **साधन-सम्पत्ति-सम्बन्धिनी** श्रद्धा का अर्थ योग्यता से है। इस श्रद्धा का मनुष्य अनुपयोग भी कर सकता है, सदुपयोग भी और दुरुपयोग भी। इसी में अमुक व्यक्ति की योग्यता का पता चलता है। जैसे एक बलवान व्यक्ति चाहे तो अपने बल को देश के हित के लिए व्यय कर सकता है और चाहे तो उसे बुरे कार्यों में लगाकर उसका दुरुपयोग भी कर सकता है। यही बात संगीत की आत्मा तथा साहित्य में लागू होती है। अभ्यास के बल पर एक संगीतज्ञ संगीत की आत्मा तथा साहित्याचार्य अलंकारों का मनमाना प्रयोग कर काव्य की आत्मा पर कुठाराघात करता है। इस प्रकार साधन-सम्पन्नता का सदुपयोग भी होता है तथा दुरुपयोग भी। श्रद्धा के इन तीनों रूपों में से जनसाधारण की दृष्टि सर्वप्रथम शील-सम्बन्धिनी श्रद्धा पर ही होनी चाहिए, क्योंकि इसका सम्बन्ध प्राणीमात्र की सामान्य स्थिति रक्षा से होता है।

श्रद्धा से मनुष्य के कार्यों में सुगमता आ जाती है। इससे उनके मन में एक विश्वास जाग्रत हो जाता है और व्यक्ति अपने कार्य में बढ़ने के साहस का अनुभव करता है। कभी-कभी पाखंडी लोगों की श्रद्धा प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के स्वांग रचते हैं। ऐसे धूर्त लोगों से सचेष्ट रहना चाहिए।

श्रद्धालु श्रद्धेय में अपने अनुसार कोई परिवर्तन नहीं करना चाहता। वह किसी प्रकार के निजी लाभ की इच्छा श्रद्धेय से नहीं रखता। वह तो कर्म में ही अपना ध्यान लगाए रहता है। श्रद्धा एक ऐसा सत्कार्य अथवा सद्गुण है, जिससे अन्य किसी प्रकार के सौदे की सम्भावना नहीं रहती। आजकल भीरुता और चापलूसी को भी श्रद्धा के नाम से चलाया जाता है, पर यह श्रद्धा नहीं कही जा सकती, क्योंकि श्रद्धा में याचना या चापलूसी का भाव लेशमात्र भी नहीं होता। श्रद्धा की अपेक्षा घृणा का प्रकट करने का अधिकार हमे उतना नहीं है। इसका कारण यह है कि हम यदि किसी में श्रद्धा नहीं रखते तो इससे समाज की विशेष हानि नहीं होती, पर घृणा के प्रकट करने से समाज मे असंतोष या दु:ख व्याप्त हो सकता है।

श्रद्धा के विषय तीन है- शील, प्रतिभा और साधन-सम्पन्नता। **शुक्ल जी** के अनुसार, "शील या धर्म से समाज की स्थिति, प्रतिभा से रज्जन और साधन सम्पत्ति से शील-साधन और प्रतिभा-विकास दोनों की सम्भावना है।" श्रद्धा और दया में पर्याप्त भेद होता है, जो दान पण्डितों, धार्मिको और विद्वानों को दिया जाता है, वह श्रद्धा-वश दिया जाता है और अन्धों, लूलों-लंगड़ों को दिया गया दान के अन्तर्गत आता है। अत: शक्तिशाली या सदाचारी के प्रति हमारा श्रद्धा-भाव होता है तथा निर्बल-असहाय के प्रति दया भाव।

भक्ति—श्रद्धा और प्रेम के मिश्र भाव को भक्ति कहते है। श्रद्धा पात्र में पूज्य-बुद्धि के साथ जब उसके प्रति मन में घनिष्ठता प्राप्त करने की इच्छा जागत होती है तथा उसकी सत्ता से साक्षात्कार करना चाहते है तभी भक्ति का आविर्भाव होता है। भक्ति की दशा में हम अपने जीवन-क्रम का थोड़ा बहुत अंश श्रद्धेय के लिए अर्पित करने को तत्पर रहते है। इसके साथ ही श्रद्धेय के जीवन-क्रम पर भी अपना अधिकार जमाना चाहते है। इसी को दूसरे शब्दो में 'आत्म-निवेदन' कहते है।

श्रद्धा मे हम अपने जीवन मे उपार्जित किसी वस्तु को ही देने में समर्थ होते है- पर भक्ति मे हम अपने जीवन तक को अर्पित कर देते है। श्रद्धा में श्रद्धालु श्रद्धेय के महत्व का कभी अधिकार नही हो सकता- पर भक्ति मे वह भी महत्व की प्राप्ति कर सकता है। इतना ही नही, अपितु दूसरे की भक्ति करके व्यक्ति तीसरे की भक्ति का अधिकारी बन जाता है। जैसे राम की भक्ति करके हनुमान अन्य भक्तों की भक्ति के अधिकारी बने। इस प्रकार भक्ति के महत्व को प्राप्त करने के लिए भक्त अपने जीवन तथा आचरण को पवित्र और स्वच्छ रखता है, जिससे समाज का कल्याण होता है।

भक्ति मे ऐसे सान्निध्य की उपलब्धि होती है, जिससे हमारे महत्व के अनुकूल गति का विस्तार होता है, तथा प्रतिकूल गति का संकोच। भक्ति मे दैन्यभाव अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है, जिसमें श्रद्धेय के महत्व तथा अपने लघुत्व को प्रदर्शित किया जाता है। भक्ति के आश्रय को प्राप्त करते ही कठिन से कठिन काम सरल तथा सुगम प्रतीत होने लगते है। महत्व प्राप्ति का जो उच्च पथ दुष्कर तथा श्रम-साध्य प्रतीत होता है, वही भक्ति-बल प्राप्त कर सरल तथा मनोहारी हो जाता है।

मनुष्य को जो सिद्धान्त नीरस तथा व्यर्थ प्रतीत होते है, इन सिद्धान्तों को बुद्धि तो स्वीकार करता है, किन्तु मन में नही रमता। इसलिए सिद्धान्तों के पचड़े में न पड़कर मनुष्य को क्रम-सौन्दर्य मे प्रवृत्त रहना चाहिए। सद्वृत्तियो के सामीप्य ही से जीवन उच्चता को प्राप्त करता है। इस सामीप्य से यह तात्पर्य नही, कि मनुष्य सदैव ही किसी के साथ उठता-बैठता रहे, अपितु श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि भी सामीप्य के ही अन्तर्गत आते हैं।

इष्ट के साथ अनिष्ट का न होना सहज सम्भाव्य है। यदि दु:ख न हो तो सुख का कोई मूल्य ही नहीं। इष्ट मे हमें प्रवृत्ति का भाव प्राप्त होता है, तथा अनिष्ट से निवृत्ति का क्रम हमें ज्ञात होता है। रावण के विद्यमान होने से ही राम को इतना महत्व प्राप्त हुआ। यदि रावण न होता तो राम का इतना महत्व न होता। रावण के समूल नाश के लिए राम का तत्पर होना लोक-रक्षा के लिए परमावश्यक है।

स्वानुभूति के द्वारा मनुष्य परमानुभूति की धारणा कर सकता है। मनुष्य ईश्वर को अपने ही कर्मों और मनोभावो की पूर्णता को देख अपने से श्रेष्ठ मानता है। इसी में आनन्द की प्राप्ति करता है तथा उसका धर्म मार्ग जगमगाने लगता है।

श्रद्धा और प्रेम के संयोग से मानव मन में भक्ति का भाव उत्पन्न होता है। अत: भक्ति का स्थान हृदय है, मस्तिष्क नहीं। हमारे यहाँ श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, अर्चना, चन्दन, दास्य, संख्य और आत्मनिवेदन आदि नवधा भक्ति का विधान किया गया। हम यह पहले बता चुके हैं कि श्रद्धा में श्रद् से याचना नहीं की जाती- परन्तु भक्त सदैव ईश्वर की कृपा की चाहना करता है।

हिन्दू धर्म में लोक कल्याण के उपदेशकों को महत्व नहीं दिया जाता। वह तो कर्मक्षेत्र में घुसकर अन्याय तथा अत्याचार के नाश करने वालों का महत्व स्वीकार करता है। छात्र-

धर्म जनता के सम्पूर्ण जीवन का स्पर्श करने में समर्थ है। उसकी इस व्यापकता के कारण उसका सम्बन्ध लोक-रक्षा से रहता है। राम-कृष्ण हमारे आराध्य इसलिए है, क्योंकि वे छात्र-धर्म के प्रतीक हैं। आचार्य शुक्लजी के अनुसार, ''संसार में मनुष्य मात्र की समान वृत्ति कभी नहीं हो सकती- वृत्तियों की भिन्नता के बीच से जो मार्ग निकल सकेगा, वही लोक रक्षा का मार्ग होगा, वही धर्म का चलता हुआ मार्ग होगा।'' भक्ति का मार्ग ही ऐसा मार्ग है, जिसमें जीवन के अनेक रूपों का सौन्दर्य समाहित है। छात्र धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसमें कर्म-सौन्दर्य झलकता रहता है। कर्म-सौन्दर्य ही सर्वसाधारण के समीप रहता है। कर्म-सौन्दर्य के कारण ही हमारे समाज ने राम और लक्ष्मण को इतना महत्व दिया है। कारण कि वे पूर्ण रूप से क्षत्रिय है। उनके चरित्र में समन्वय में सुन्दर दर्शन होते हैं। जहाँ वे बलवान है वहाँ क्षमावान भी हैं, जहाँ वह वैभवशाली है, उन जैसा विनयी भी कोई दिखाई नहीं देता, और जहाँ वे तेजस्वी है वहाँ कोमलता भी कूट-कूट कर उनमें भरी है। इसीलिए समस्त संसार छात्र-धर्म पालन की आवश्यकता को अनुभव करता रहेगा। ■

प्रश्न 6. (अ) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबन्ध 'क्रोध' की समीक्षा कीजिए। **अथवा**
क्रोध शीर्षक निबन्ध की समीक्षा कीजिए। **अथवा**
आचार्य शुक्ल जी का 'क्रोध' निबन्ध ''मनोवैज्ञानिक होने के स्थान पर व्यावहारिक अधिक है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उत्तर- आचार्य शुक्ल जी का 'क्रोध' शीर्षक निबन्ध मनोवैज्ञानिकता की कसौटी पर चाहे खरा न उतरे किन्तु वह व्यावहारिक दृष्टि से व्यावहारिकता की कसौटी पर खरा उतरता है। समाज में क्रोध किस प्रकार अनिष्टकारक तथा किस प्रकार लोक मंगलकारी होता है, इसका विवेचन बढ़ी सफलता से शुक्ल जी ने किया है। व्यावहारिक रूप में तथा समाज में क्रोध के किस प्रकार विभिन्न रूप हो जाते हैं, इसका भी स्वाभाविक विवेचन है।

क्रोध निबन्ध की समीक्षा

क्रोध की उत्पत्ति—क्रोध मनोविकार का उदय दु:ख के चेतन कारण के साक्षात्कार अथवा अनुमान से होता है। दु:ख के साक्षात्कार के समय दु:ख के कारण का सम्बन्ध ज्ञात हो जाने पर ही क्रोध उदय होगा। क्रोध के लिए दु:ख का साक्षात्कार एवं कारण की अनुभूति आवश्यक है। जैसे नवजात शिशु पर हाथ उठाया जाये तो वह रोयेगा, किन्तु क्रोध नहीं करेगा, परन्तु यदि हमारे ऊपर हमें मारने के लिए कोई हाथ उठाए तो हाथ उठाने वाले पर हमें क्रोध आयेगा और हम यथाशक्ति उसका प्रतिकार करना चाहेंगे।

सामाजिक जीवन में क्रोध की आवश्यकता—यदि क्रोध न होता तो मनुष्य दूसरे के द्वारा पहुँचाये जाने वाले कष्टों से छुटकारा पाने का उपाय ही न सोचता। कोई मनुष्य दुष्ट के दो चार प्रहार कुछ दिन सहन करता है। यदि उसके हृदय में क्रोध नहीं उत्पन्न होता है तो दुष्ट की दुष्टता बढ़ती चली जाएगी। दुष्ट में दया, विवेक आदि उत्पन्न कराने में समय लगेगा। संसार और समाज छोटे-छोटे कामों को अधिक समय नहीं दे सकता। क्रोध का उद्रेक ही अत्याचारी और दुष्ट के दमन की प्रेरणा देता है। भयभीत होकर भी कभी-कभी प्राणी अपनी रक्षा कर लेता है। अत: चेतन सृष्टि में क्रोध का भाव बहुत आवश्यक है। इससे सामाजिक जीवन में दुष्टों और अत्याचार के समाप्त होने में सहायता मिलती है।

क्रोध अधिकतम प्रतिकार के रूप में होता है। प्रतिकार में जिसने एक बार कष्ट पहुँचाया है, उसे दूसरी बार कष्ट पहुँचाने की सम्भावना नहीं रहती। रेल में दो अपरिचित आदमी जा रहे हैं। इनमें से एक को अगले स्टेशन पर उतरना है, उसने बात ही बात में तमाचा जड़ दिया और उतरने लगा। यदि तमाचा खाने वाला व्यक्ति भी उसे तमाचा मार दे तो यह प्रतिकार कहलायेगा। क्योंकि उस व्यक्ति से फिर तमाचा खाने की सम्भावना नहीं है। जहाँ दु:ख पहुँचाने की सम्भावना होती है, वहाँ शुद्ध प्रतिकार नहीं रहता, उसमें सुरक्षा की भावना भी मिल जाती है। हमारा पड़ोसी दिन में आकर दो-चार गालियाँ रोज देता है। यदि हम एक दिन उसे पकड़कर पीट दें तो यह कर्म शुद्ध-प्रतिकार नहीं होगा, क्योंकि इसमें नित्य गालियाँ सुनने के दु:ख और परिणाम से बचने की भावना भी रहेगी।

समाज और लोक की दृष्टि से उपर्युक्त दोनों दृष्टान्तों का क्रोध उपयोगी है। पहले उदाहरण में क्रोध करने वाले के लिए चाहे लाभ न हो, किन्तु समाज की दृष्टि से वह उपयोगी है। यह ठीक है कि रेल में तमाचा मारने वाले से हमें फिर हानि की सम्भावना नहीं है, किन्तु उसे उचित दण्ड मिल जाने से स्वयं उस व्यक्ति का सुधार होगा। वह फिर किसी को इस प्रकार तमाचा मारने का साहस नहीं करेगा। परन्तु इस प्रकार क्रोध में प्रतिकार की ही भावना होती है। उससे लोक कल्याण की भावना नहीं होती।

क्रोध की सामान्य प्रवृत्तियाँ

1. क्रोध अन्धा होता है—क्रोध करने वाला क्रोध के आलम्बन की ओर ही देखता है अपनी और नहीं। क्रोध का यही लक्ष्य होता है कि जिसने उसे दु:ख पहुँचाया है, उसका नाश हो या दु:ख पहुँचे। क्रोध करने वाला क्रोध के आवेगों में परिणाम नहीं सोचता। इस मनोविकारों पर बुद्धि और विवेक अंकुश रखते हैं। क्रोध का उग्र रूप दु:ख देने वाले की शक्ति आदि को समझे बिना जब कार्य करता है, तो इससे हानि होती है। यदि एक व्यक्ति को दस-बीस आदमी लाठी लेकर मारने आ रहे हैं और वह अकेला ही क्रोध के आवेश में उनसे भिड़ जाये तो उसके अनिष्ठ में कोई सन्देह नहीं है। अत: कारण के यथार्थ निश्चय के उपरान्त और उसका उद्देश्य भली प्रकार समझ लेने पर किया गया उपर्युक्त मात्रा में क्रोध ही काम दे सकता है।

2. आलम्बन में भय का संचार करना चाहिए—पहले यह प्रयत्न करना चाहिए कि जिस पर क्रोध किया जा रहा है, उसमें भय का संचार किया जाये। सम्भव है कि वह इसी से डर और अनिष्ट टल जाये। एक की उग्र प्रकृति देखकर अनिष्ट व्यापार से विरत हो जाता है।

3. क्रोध का लक्ष्य गर्व का चूर्ण करना—बहुत से स्थलों पर क्रोध का लक्ष्य दूसरे का गर्व चूर्ण करना रहता है। जहाँ तक हो सके अहंकार करने वाले को विनम्र करना चाहिए। अभिमान पर जो रोष रहता है, उसमें अभिमानों को हानि पहुँचाने का उद्देश्य नहीं रहता। अपितु उसको नम्र करने की भावना रहती है। संसार में बहुत से अपमान अभिमान द्वारा ही दूर हो जाते हैं।

4. क्रोध और स्नेह का सम्बन्ध—मनुष्य जब अपने सम्बन्धियों या कुटुम्बियों के प्रति क्रोध प्रदर्शित करने के लिए अपना सिर पटक देता है, तब उसका मतलब यह होता है कि जिसके सामने वह सिर पटक रहा है, उसे उसके सिर पटकने की चिन्ता होगी और जिस कारण वह सिर पटक रहा है, उसे दूर करने का वह प्रयास करेगा। बिल्कुल बेगानों के सामने ऐसा वह कभी नहीं करेगा। वह उसी के सामने करेगा जिसे उसके कष्ट की परवाह होगी।

5. अचानक क्रोध—क्रोध का वेग इतना प्रबल होता है कि मनुष्य यह भी ध्यान नहीं रखता है कि अमुक व्यक्ति ने उसे जान बूझकर दु:ख पहुँचाया या अचानक ही उसे उससे दु:ख पहुँच गया। कभी-कभी हम कंकड पत्थर से ठोकरें खाकर उन्हें तोड़ने लगते हैं। चाणक्य के पैरों में कुश चुभ गये। वह उनको समूल नष्ट करने को प्रस्तुत हो गया। वह इसी प्रकार का क्रोध है।

6. क्रोध का मनोविकार बहुत फुर्तीला होता है—क्रोध अवसर पड़ने पर युक्त मनोविकार का भी साथ देकर उसकी पुष्टि का साधक बनता है। कभी यह दया के साथ जाता है तो कभी घृणा के साथ। एक अत्याचारी दुष्ट किसी अबला को सता रहा है। उस अबला की दशा देखकर हमारे हृदय में दया उत्पन्न होगी और अत्याचारी के प्रति घृणा होगी। यदि अत्याचारी को दण्ड देने की शक्ति है, तो हमारा क्रोध भड़क उठेगा और हम उसे दण्ड देंगे। इस दया में क्रोध दया का प्रतिपादन नहीं चाहेगा।

7. क्रोध शाति को भंग करने वाला है—एक का क्रोध दूसरे में भी क्रोध का संचार कर देता है। जिसके प्रति क्रोध किया जाता है, वह अपमान का अनुभव करता है और क्रोध में उसकी भी त्यौरी बढ़ जाती है। इसलिए धर्म और भाँति में क्रोध के विरोध का उपदेश दिया गया है। इस प्रकार के प्रतिबन्ध समाज में सुख-शान्ति के लिए बहुत ही आवश्यक हैं।

8. क्रोध के प्रेरक दु:ख—क्रोध के प्रेरक दो प्रकार के दु:ख होते हैं। पहले अपना दु:ख और दूसरा दूसरे का दु:ख जिसे क्रोध के व्यंग्य का उपदेश दिया जाता है, वह पहले प्रकार के दु:ख से उत्पन्न क्रोध है। दूसरे के दु:ख पर उत्पन्न क्रोध बुराई की सीमा के बाहर समझा जाता है। क्रोध को उत्तेजित करने वाला दु:ख जितना ही अपने सम्पर्क से दूर होता है, उतना ही क्रोध का स्वरूप सुन्दर और मनोहर दिखाई पड़ता है।

9. क्रोध मंगलकारी भी है—क्रोध के वध पर वाल्मीकि के करुण का क्रोध सौन्दर्य महाकाव्य बन गया। राम के रावण के प्रति क्रोध में सम्पूर्ण लोक के दु:ख का क्षोभ छिपा हुआ है।

जिससे हमें दु:ख पहुँचा यदि तत्काल ही हमने उससे प्रतिकार ले लिया, तो यह क्रोध कहलायेगा। यदि एक दुःख देने वाला हमसे अधिक शक्तिशाली है, तो हम उस समय चुप हो जायेंगे और बात को मन में रखकर प्रतिकार लेने का अवसर देखेंगे। इसे बैर कहेंगे, अत: क्रोध और बैर में समय का अन्तर है। जब क्रोध बहुत समय तक टिका रहता है, तब वह बैर बन जाता है। बहुत समय तक टिका रहने के कारण क्रोध का वेग कम हो जाता है, किन्तु लक्ष्य को पीड़ित करने की प्रेरणा बराबर बनी रहती है। मान लो, किसी ने हमें गाली दी। यदि उसी समय हमने उसे मार दिया तो वह क्रोध होगा। मान लो, वह गाली देकर भाग गया और दो माह पश्चात् मिला और हमने उसे बिना गाली सुने मार दिया तो वह बैर कहलायेगा। बैर उन्हीं में होता है, जिनमें भावों को संचय करने की शक्ति होती है, पशु और बच्चों में बैर नहीं होता। वे सभी क्रोध कते हैं बैर नहीं।

10. बैर और चिड़चिड़ाहट—चिड़चिड़ाहट क्रोध का एक हल्का रूप है। इसकी व्यंजना प्राय: शब्दों तक ही रहती है। उसमें उसमें उड़ता और वेग नहीं होता। चित्त के व्यग्र रहने, किसी प्रवृत्ति में बाधा पड़ने या किसी बात का ठीक सुभीता न पड़ने के कारण लोग चिड़चिड़ा उठते हैं। चिड़चिड़ाहट एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता है। चिड़चिड़ाहट बालकों के लिए विनोद की सामग्री बन जाती है। बालक चिड़चिड़े बुड्ढों को चिढ़ाते हैं। कोई राधाकृष्ण कहने से कोई सीताराम कहने से तथा कोई 'करेले' के नाम से चिढ़ता है।

11. क्रोध और अमर्ष—क्रोध को उग्रतापूर्ण स्थिति में 'अमर्ष' होता है। पूर्ण क्रोध की अवस्था में मनुष्य दुःख पहुँचाने वाले की ओर उन्मुख रहता है। आश्रय का ध्यान आलम्बन की ओर विशेष रूप से रहता है। अमर्ष की अवस्था में 'तुमने मेरे साथ यह किया', 'अब तक मैं सहता आया, अब नहीं सह सकता', 'मैं तुम्हें धूल में मिला दूँगा।' आदि शब्द निकल जाते हैं।

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग एवं ज्ञनयोग का समकक्ष मानते हैं।

संदर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रसिद्ध निबन्ध 'कविता क्या है' से लिया गया है। इस गद्यांश में निबन्धकार द्वारा कविता की मूल भावना का स्पष्टीकरण किया गया है।

व्याख्या—जब किसी व्यक्ति का ज्ञान पूर्णता के स्तर को छूते हुए उसकी आत्मा को मुक्ति भाव दिला दे, तब यही स्थिति ज्ञान दशा कहलाती है। ठीक उसी प्रकार रसों का परिपाक स्थिति में पहुँच जाना हृदय की मुक्ति के मार्ग खोल देता है तथा हृदय की यही दशा रसदशा कहलाती है।

हृदय की इस स्थिति तक पहुँचने के लिए मनुष्य जिन शब्दों की रचना करता है, उनका समग्र रूप ही 'कविता' कहलाता है। रचनाकर्म की यह प्रक्रिया 'भावयोग' कहलाती है, जो कर्मयोग व ज्ञनयोग के समान महत्व रखती है।

विशेष-

1. तुलनात्मक अध्ययन का व्यवस्थित उपयोग कर कविता को परिभाषित किया गया है।
2. इन पंक्तियों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता की ठोस परिभाषा दी है।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हृदय पक्ष को अत्यन्त महत्व देते हैं। कविता की महत्ता इसी हृदय-पक्ष से संबद्ध होने के कारण हैं।
4. इन पंक्तियों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को विश्लेषण-क्षमता और किसी भी चीज को परिभाषित करने की क्षमता देखते ही बनती है।
5. भाषा तत्समी सूक्ष्मताओं से युक्त होने के बावजूद न प्रसाद गुण से वंचित है और न ही प्रभाव क्षमता से।
6. भाषा के प्रयोग में जो 'गूढ़-गुफित विचार परम्परा' गूंथी हुई दिखती है, वह शुक्ल जी की वैज्ञानिक शैली का प्रमाण है, जिसमें एक-एक शब्द का सटीक चयन तथा शब्दों का पूर्णतः निश्चित क्रम दिखाई पड़ता है।

2. कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है, इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक सत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकार का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने कविता की परिभाषा को आधार बनाकर हृदय की मुक्ति साधना के लिए मानवीय वाणी द्वारा किए गए शब्द विधान को कविता कहा है। इसी कार्य को साधना का पाश योग कर्म योग के समकक्ष कहा है। इसके पश्चात् शुक्ल जी कविता का महत्त्व एवं मानव जाति के लिए इसकी उपयोगिता का विवेचन करते हुए लिखते हैं।

व्याख्या—स्वार्थ एवं परमार्थ ही मन हृदय को नीचता एवं उच्चता के निर्धारण के आधार बनते हैं। स्वार्थ की भावना हृदय को संकुचित बना देती है। ऐसा व्यक्ति केवल अपने लाभ की बात सोचता है। इस प्रकार सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव समाप्त हो जाता है तथा मानव मानसिक रूप से ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है, जिसमें वह असभ्य अवस्था में था। इस प्रकार मनुष्य की सामाजिकता समाप्त हो जाती है। सामाजिकता के अभाव में मनुष्य सामान्य प्राणी रह जाता है। स्वार्थ के सम्बन्ध अधिक से अधिक परिवार तक विस्तृत हो सकते हैं। स्वार्थ सम्बन्धों का घेरा अत्यन्त संकुचित होता है। जिसके हृदय में स्वार्थ की भावना रहती है, वह केवल सीमित लोगों की हानि-लाभ की बात सोचता है। ऐसा व्यक्ति समाज एवं देश हित की बात नहीं सोचता। कविता मनुष्य को इस निम्न स्थिति से उठाकर हृदय को उस दशा में पहुँचाती है, जहाँ उसकी भावनाएँ लोक सामान्य हो सके, अर्थात् वह समस्त लोक अथवा मानव समूह की बात सोच सके। कविता पढ़ने-सुनने एवं लिखने से मनुष्य का हृदय स्वार्थ की सीमित घेरे से मुक्त हो जाता है एवं मनुष्य ऊँची बातें सोचने लगता है। लोकसामान्य भावभूमि पर पहुँचकर अर्थात् स्वार्थ सम्बन्धों से हृदय की मुक्ति के बाद ही मनुष्य का हृदय संसार के भिन्न-भिन्न कार्यकलाप एवं दशाओं के प्रभावशाली रूप को प्रत्यक्ष देखता है। इसके साथ ही मनुष्य के हृदय में शुद्ध-अनुभूतियाँ आती जाती हैं। अर्थात् शुद्ध मानवीय धरातल पर विचार करता है।

जो मनुष्य इस दशा में पहुँच जाता है वह थोड़े समय के लिए अपने आपको भूल जाता है कि मैं संसार से भिन्न कुछ हूँ। वह अपने आपको संसार के साथ तदाकार कर लेता है। व्यक्ति अपनी पृथक् सत्ता का अनुभव तो स्वार्थ भावना में फँसकर ही करता है। इस दशा में मनुष्य की सत्ता सारे संसार की सत्ता में मिल जाती है। जिस प्रकार नमक पानी में घुलकर बिल्कुल तदाकार हो जाता है, उसी प्रकार कविता लिखने-पढ़ने एवं सुनने वाले व्यक्ति की दशा होती है। ऐसा व्यक्ति, उन्हीं बातों का अनुभव करता है, जिन्हें समस्त मानव अनुभव करता है। वह अपना अस्तित्व मानव समाज में मिला देने के कारण वही बात सोचता है, जिसे सब सोचते हैं। उसका हृदय सबका हो जाता है। इस प्रकार की अनुभूति भी एक प्रकार का योग है। जिस प्रकार योग अभ्यास से आता है एवं मनुष्य के चिन्तन का स्तर बहुत महान् तथा उच्च बना देता है, उसी प्रकार संसार के साथ एकता की अनुभूति से उच्चता प्राप्त होती है एवं यह अनुभूति बार-बार करने से हमारे मन के भाव शुद्ध हो जाते हैं। इससे हमारे मनोभावों की बुराइयाँ एवं दोष समाप्त हो जाते हैं। भावों का शुद्ध होने से संसार के साथ हमारे रचनात्मक सम्बन्ध बन जाते हैं, अर्थात् हम न केवल शेष सृष्टि के साथ आत्मीयता के साथ सोचते हैं, अपितु इस प्रकार के रचनात्मक कार्य भी करते हैं, जिनसे सारे विश्व का कल्याण हो सके। कविता की रचना श्रवण एवं पठन से पैदा विश्व के साथ भावात्मक एकता की अनुभूति रूपी योग ही विश्व के साथ हमारे रचनात्मक सम्बन्धों की रक्षा करता है एवं उसी के कारण हमारे सम्बन्ध शेष विश्व के साथ मिल पाते हैं, इस प्रकार कविता हमें सच्चा मनुष्य बनाती है, वह हमें पशुता के निम्न धरातल से उठाकर मानवता की उच्च स्थिति तक ले जाती है। इससे स्पष्ट है कि कविता मानव समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

विशेष—इस गद्यांश की शैली व्याख्यात्मक अर्थात् व्यास प्रधान तथा विवेचनात्मक है। इस गद्यांश में शुक्ल जी ने अपनी बात विस्तारपूर्वक कही हैं।

3. "किसी मनुष्य में जन-साधारण से विशेष गुण व शक्ति का विकास देख उसके संबंध में जो एक स्थायी आनन्द-पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है, उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्व की आनंदपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य बुद्धि का संचार है।"

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित निबन्ध संग्रह चिन्तामणि में से श्रद्धा-भक्ति से उदधृत किया गया है। इस अवतरण में लेखक ने श्रद्धा के अर्थ एवं महत्व को बतलाया है।

व्याख्या—शुक्ल जी कहते हैं कि श्रद्धा उसे कहते हैं, जब किसी मनुष्य विशेष में जनसाधारण से विशिष्ट गुण तथा भक्ति को देखकर मन में उस व्यक्ति के प्रति जो विशेष भाव उत्पन्न होता है। श्रद्धालु किसी व्यक्ति के विशेष गुणों को देखकर उसका महत्व प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता है। उसके महत्व को प्रसन्नचित्त स्वीकार करने के साथ-साथ श्रद्धालु श्रद्धेय में पूज्य भाव भी रखता है।

4. श्रद्धा में दृष्टि पहले कर्मों पर से होती हुई श्रद्धेय तक पहुँचती है और प्रीति में प्रिय पर से होती हुई उसके कर्मों आदि पर आ जाती है। एक में व्यक्ति को कर्मों द्वारा मनोहरता प्राप्त होती है, दूसरी में कर्मों का व्यक्ति द्वारा। एक में कर्म प्रधान है, दूसरी में व्यक्ति।

सन्दर्भ एवं प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—श्रद्धा में व्यक्ति पहले किसी मनुष्य के विशेष कर्म या गुणों को देखता है। पुनः उसमें श्रद्धा रखने लगता है। पर प्रेम में व्यक्ति गुण या कर्मों पहले दृष्टि नहीं डालता, अपितु उसके आकर्षण का कारण सुन्दर रूप हो सकता है। पर अन्त में प्रीति में भी दृष्टि कर्मों पर हो जाती है। अन्तर यह है कि श्रद्धा श्रद्धेय में लोक-कल्याण के कर्मों में रुचि देखकर ही उत्पन्न हो जाती है। इसमें कर्म को महत्व दिया जाता है, रूप को नहीं। पर प्रेम में कर्म गौण हो जाता है और रूप को प्रधानता दी जाती है। श्रद्धा में कर्म की प्रधानता होती है और प्रेम में व्यक्ति की प्रधानता होती है।

5. व्यक्ति सम्बन्ध हीन सिदधान्त-मार्ग निश्चयात्मिका बुद्धि को चाहे व्यक्त हो, पर प्रवर्तक मन तो अव्यक्त रहते हैं। वे मनोरंजनकारी तभी लगते हैं, जब किसी व्यक्ति के जीवन-क्रम के रूप में देखे जाते हैं।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य अवतरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित निबन्ध संग्रह चिन्तामणि में श्रद्धा-भक्ति से लिया गया है।

प्रसंग—प्रस्तुत गद्य अवतरण में शुक्ल जी सिद्धान्तों की व्यावहारिकता पर बल देते हुए कहते हैं-

व्याख्या—जिन सिद्धान्तों का क्रियात्मक जीवन से सम्बन्ध नहीं होता है, उन्हें हमारी विवेक बुद्धि तो अवश्य स्वीकार कर लेती है, किन्तु मानव के कार्यों की संचालिका शक्ति मन उनके उस स्वरूप को ग्रहण करने में असमर्थ रहता है, यही कारण है कि कोरे और नीरस सिद्धान्त बौद्धिक धरातल पर सुन्दर प्रतीत होते हैं, परन्तु जब हम अपने व्यावहारिक जीवन में उनका प्रयोग करने का प्रयास करते हैं तो वे अव्यावहारिक होने के कारण उपयोगी सिद्ध नहीं होते। सिद्धान्त वाक्य मनोरंजनकारी तभी लगते हैं, जब हम किसी व्यक्ति के जीवन में उनका

सफल क्रियात्मक रूप देखते हैं, जैसे- 'सदा सत्य बोलो'- सिद्धान्त वाक्य सुनने में भले ही अच्छा लगे, परन्तु जब हम 'सत्य हरिशचन्द्र' की कथा में उनका सफल व्यावहारिक रूप देखते हैं, तभी उसका हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ता है तथा वास्तविक महत्व समझ पाते हैं। हमारे श्रेष्ठ पुरुष और महात्मा गुण और रुखे सिद्धान्त वाक्यों को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने के कारण ही हमारे लिए पूज्य बन सके हैं। अत: सिद्धान्त वाक्यों का महत्व तभी है, जब हम उन्हें किसी व्यक्ति के जीवन में व्यावहारिक रूप में पाते हैं।

विशेष—आदर्श वाक्यों को सिद्धान्त रूप में बुद्धि स्वीकार कर लेती है, किन्तु मन में उसका प्रभाव उसकी व्यावहारिकता के कारण पड़ता है।

6. संसार किसी को इतना समय ऐसे छोटे-छोटे कामों के लिए नहीं दे सकता .... कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि चेतना सृष्टि के भीतर क्रोध का विधान इसीलिए है।

सन्दर्भ—'क्रोध' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सामाजिक जीवन में क्रोध के महत्व का प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—सामाजिक जीवन में क्रोध का अपना विशेष महत्व है। यदि क्रोध न हो तो मनुष्य दूसरों के द्वारा कष्ट से छुटकारा पाने का उपाय ही न करे। कोई दुष्ट आदमी नित्य प्रति दो चार गालियाँ देता है। यदि उसकी गालियाँ सुनकर क्रोध उत्पन्न नहीं होता तो उसका गालियाँ देना बढ़ता ही चला जायेगा। इस प्रकार समाज में बुराई बढ़ती जायेगी। उस दुष्ट के हृदय में विवेक, दया आदि सद्भाव उत्पन्न करने में बहुत समय लगेगा और संसार इतने छोटे-छोटे कामों के लिए किसी को इतना समय नहीं दे सकता। यह सत्य है कि प्राणी कभी-कभी भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा में प्रवृत्त होता है, परन्तु समाज में दु:ख की निवृत्ति के बिना क्रोध के बिना नहीं हो सकती। यह आवश्यकता नहीं है कि क्रोध करते समय क्रोध करने वाले के मन में भविष्य के कष्टों से बचने का उद्देश्य हो। परन्तु यह निश्चित है कि चेतन सृष्टि में क्रोध का निदान भविष्य के दु:ख से बचने के लिए ही होता है।

विशेष—यहाँ विद्वान लेखक ने क्रोध का व्यावहारिक विवेचन करते हुए उसे समाज के लिए आवश्यक बतलाया है।

7. यही क्रोध का अंधापन है। इसी से एक तो मनोविकार ही एक दूसरे को परिमित किया करते हैं, ऊपर से बुद्धि या विवेक भी उन पर अंकुश रखता है।....अपनी रक्षा का पूरा प्रबन्ध किए उसे मारने के लिए अकेले दौड़ पड़े, तो उसके मारे जाने में बहुत कम सन्देशु समझा जाएगा।

सन्दर्भ—'क्रोध' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्पष्ट करते हैं कि क्रोध अंधा होता है। इस स्थिति में मनुष्य हानि पहुँचाने वाले की शक्ति का अनुमान न करके उससे भिड़ जाता है और अपनी बहुत बड़ी हानि कर लेता है।

व्याख्या—क्रोध करने वाला अपनी शक्ति की ओर न देखकर केवल दु:ख पहुँचाने वाले की ओर देखता है। उसका एकमात्र लक्ष्य यही होता है कि उसका क्रोध पहुँचाने वाले का नाश हो। इस स्थिति में न तो वह अपना दोष ही देखता है और न क्रोध का परिणाम ही सोचता है। क्रोध के समय अपने दोषों का ज्ञान न रहना, अपनी दुर्बलता और शत्रु की सबलता का अनुभव न करके भिड़ जाना क्रोध का अंधापन कहलाता है। यही कारण है कि क्रोध को बुद्धि या विवेक मनोविकार संयमित किया करते हैं। जब क्रोध का वेग अति उग्र होता है,

तब क्रोध का आश्रय दु:ख देने वाले की शक्ति और परिणाम को एवं उचित-अनुचित का विचार किए बिना उसमें भिड़ जाता है। इससे कभी-कभी बड़ा अनर्थ होता है और क्रोध करने वाले को महान् हानि भी उठानी पड़ती है। यदि शत्रु बीस-पच्चीस आदमी लेकर मारने आ जाये और क्रोध का आश्रय शत्रु की शक्ति का बिना अनुमान किये हुए एवं अपनी रक्षा का बिना समुचित प्रबन्ध किए हुए मारने के लिए अकेला ही दौड़ पड़े तो वह निश्चय ही अपनी बहुत बड़ी हानि कर लेगा।

विशेष—यहाँ क्रोध के औचित्य और अनौचित्य की बड़ी व्यावहारिक व्याख्या की गई है।

प्रश्न 7. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में योगदान का वर्णन कीजिए।

अथवा

हिन्दी निबन्ध साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबन्ध विकास यात्रा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय मनीषा के प्रतीक और साहित्य एवं संस्कृति के अप्रतिम व्याख्याकार माने जाते हैं और उनकी मूल निष्ठा भारत की पुरानी संस्कृति में है, लेकिन उनकी रचनाओं में आधुनिकता के साथ भी आश्चर्यजनक सामंजस्य पाया जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को उनके निबन्धों के लिए विशेष ख्याति मिली। निबन्धों में विषयानुसार शैली का प्रयोग करने में इन्हें अद्‌भुत क्षमता प्राप्त है। तत्सम शब्दों के साथ ठेठ ग्रामीण जीवन के शब्दों का सार्थक प्रयोग इनकी शैली का प्रमुख गुण रहा है। भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, ज्योतिष और विभिन्न धर्मों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है, जिसकी झलक इनके निबन्धों में मिलती है। छोटी-छोटी चीजों, विषयों का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन और विश्लेषण-विवेचन उनकी निबन्धकला का विशिष्ट व मौलिक गुण है। उनके निबन्ध दार्शनिक तत्व प्रधान एवं सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। द्विवेदी जी के इन निबन्धों में विचारों की गहनता, निरीक्षण की नवीनता और विश्लेषण की सूक्ष्मता रहती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उनके समस्त निबन्ध साहित्य का चिन्तन और सृजन मानव केन्द्रीत ही रहा है। उन्हें हिन्दी साहित्य में अद्यतन युग का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार माना जाता है। उनके विविध विषयी निबन्धों में युगीन विचारधाराओं का सफलतापूर्वक समावेश हुआ है। इसलिए वे बार-बार कहते हैं कि, "मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है जिस कृति से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, वह वाग्जाल है।" जीवन की गतिविधियाँ, क्रियाकलापों और अनुभवों को उन्होंने अपने निबन्धों के अन्तर्गत बहुत ही सरल रूप में अपनाया है। निबन्ध पाठक को यह समझने में कोई आश्चर्य नहीं होता कि निबन्धों में प्रतिभा, विद्वता एवं पाण्डित्य का अद्‌भुत समावेश है। हिन्दी का अन्य कोई भी निबन्धकार इस बात की बराबरी नहीं कर सका है, जितना द्विवेदी जी ने अपने निबन्धों के माध्यम से पाठक पर प्रभाव डाला है। द्विवेदी जी ने आत्मदान को महत्वपूर्ण बताया है और इसका पालन भी किया है। इसी आत्मदान की याद में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं- "क्या उन्होंने प्राचीन काव्य, दर्शन, ज्योतिष और संस्कृत के श्रेष्ठ साहित्य के अपने गहन अध्ययन को निचोड़कर नहीं दे दिया है? मेरे ख्याल से तो हिन्दी साहित्य को यही उनकी सबसे बड़ी देन है, जिसे आधुनिक काल का दूसरा साहित्यकार नहीं दे सकता

था। विचारात्मक एवं ललित निबन्ध की एक बड़ी कड़ी के रूप में जुड़ने के बाद उन्होंने दोनों कोटि के निबन्ध लेखन को समृद्ध कर पूर्णता की चरम सीमा तक पहुँचाया। लालित्य एवं विचार दोनों में द्विवेदी जी की गति अबाध एवं अनन्य है। दोनों को समान रूप से लेकर चलने वाले वे इकलौते निबन्धकार हैं। द्विवेदी जी के निबन्धों में, "भारतीय संस्कृति की जीवन्त परम्परा विद्यमान है। आपके निबन्ध भारतीय जनजीवन की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करते हैं।"

जीवन और जगत के सम्बन्ध में द्विवेदी जी की अवधारणा एवं विचारधारा उनके सभी निबन्धों में पायी जाती है। संक्षेप में द्विवेदी जी के चिन्तन को लोकधर्मी चिंतन कहा जाना सर्वथा औचित्यपूर्ण लगता है। सामंजस्य उत्पन्न करने के लिए कुशलता और प्रतिभा की आवश्यकता होती है। सभी चित्रकारों के पास अनेक रंग होते हैं, किन्तु कुशल शिल्पी ही जानता है कि किसका किस स्थान पर उपयोग करने से चित्र सुन्दर लगेगा। इसीलिए द्विवेदी जी अपने निबन्धों में एक कुशल शिल्पी की भाँति शब्दों का प्रयोग करते हैं- "मनुष्य में बहुत-सी आदिम मनोवृत्तियाँ हैं, जो जरा-सा सहारा पाते ही झनझना उठती हैं।"

द्विवेदी जी के सारे निबन्ध चिन्तन के केन्द्र में मनुष्य है। उनकी दृष्टि में मानव समाज को सुन्दर बनाने की साधना ही साहित्य है। उनके निबन्ध इस कसौटी पर पूरे ही नहीं उतरते, अपितु इस सम्बन्ध में आदर्श रूप भी स्थापित करते हैं। निबन्धों में समूचे मानव मूल्यों को स्थान एवं प्रवेश देने का प्रयास किया गया है। अपने निबन्ध साहित्य में उन्होंने प्राचीनकाल के अप्रासंगिक एवं निरर्थक हो चुके मूल्यों पर जोर दिया है। विचार एवं व्यक्तित्व का जैसा सहभाव द्विवेदी जी के निबन्ध लेखन में दृष्टिगोचर होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मस्ती और फक्कड़पन अनेक निबन्धों में मिलता ही है, चाहे निबन्ध का विषय जो भी हो। विरोधी विचारधाराओं का समावेश उनके चिन्तन और लेखन की विशेषता है- "आदर्शवाद के धरातल पर विरोधी विचारधाराओं, परम्परा तथा प्रयोग, संस्कृति तथा सभ्यता, समाज तथा व्यक्ति, धर्म तथा विज्ञान, मानववाद तथा मानवतावाद, गाँधी तथा मार्क्स, प्राचीन तथा नवीन जीवन बोध मे सामंजस्य एवं समन्वय स्थापित कर रखा है।"

द्विवेदी जी ने विविध विषयों, विचारों विभिन्न कोणों, शैलियों से लिखकर हिन्दी निबन्ध-विधा को समृद्ध एवं पुष्ट और परिपक्व किया है। द्विवेदी जी के निबन्धों में भारतीय संस्कृति के प्रति अनन्य स्नेह और संपृक्ति दिखाई देती है। उनके निबन्ध भारतीय संस्कृति के पर्याय हैं। इनमें मानव प्रेम, देश प्रेम, आध्यात्मिकता, उदारता, समर्पण-भावना, कर्तव्य भावना, मानसिक संयम, असीम श्रद्धा और अगाध विश्वास आदि तत्व विद्यमान हैं। इनका कदाचित ही ऐसा कोई निबन्ध हो, जिसके केन्द्र में भारतीय संस्कृति एवं मानव की बात न करते हों। मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह दु:ख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म निर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है।

अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। यद्यपि द्विवेदी जी के मनोविज्ञान को लेकर कहीं बात नहीं की गई है, पर मनोभावों की सूक्ष्म पकड़ होने के कारण उनके निबन्ध मनोविज्ञान के प्रभाव से युक्त लगे हैं। समीक्षक श्यामनंद किशोर इस संबंध में लिखते हैं- "साहित्य सृष्ठा द्विवेदी जी के मनोविश्लेषण के लिए उनका निबन्ध साहित्य अत्यधिक उपयुक्त है। प्रसंग गर्भत्व द्विवेदी जी के निबन्धों को वृहत्तर आयाम प्रदान करता है। प्राचीन काल के अनेक प्रसंग और श्लोक, अर्वाचीन साहित्य के अनेक विवरण उनके निबन्धों को सांस्कृतिक गरिमा प्रदान करते हैं। वे किसी सीधे-साधे शब्द या वाक्य को इतने

निश्चित ढंग से निबन्ध में प्रयुक्त करते हैं कि उससे अर्थवेत्ता निःसृत हो जाती है। चिरपरिचित शब्दों के अछूते प्रयोग द्विवेदी जी को लोक-संस्कृति से भिन्न है।'' द्विवेदी जी की मनोवैज्ञानिक-सी सूक्ष्म दृष्टि, विषय-विवेचन, भाषा, शैली सभी अद्‌भुत और विलक्षण है। अपनी सहज आत्मीयता एवं विनोद-प्रियता के कारण पाठकों से उनका संवाद शीघ्र ही स्थापित हो जाता है। वक्तव्य प्रधान शैली के कारण निबन्धों में कथात्मकता, रक्षात्मकता और रोचकता की वृद्धि होती है। उनके निबन्ध सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ ज्ञान की असंख्य आलोक किरणों से सहज ही बौद्धिक दीप्ति प्रदान करते हैं।

द्विवेदी जी ललित निबन्ध के प्रवर्तक माने जाते हैं। ललित निबन्ध निबन्ध कला की दृष्टि से श्रेष्ठतम हैं। इनमें भावनात्मकता एवं अनुभूति की त्रिवेणी प्रवाहित होती रहती है, जो गहन संवेदना से परिपूर्ण है। इसमें भावुकता एवं सहृदया का ज्वार-भाटा सा उठ पड़ता है। पाण्डित्य से युक्त गवेषणात्मक निबन्ध लेखन के अलावा उन्होंने ललित निबन्ध लेखन में भी विलक्षण कौशल प्रदर्शित किया है। ललित निबन्ध की कोटि में प्राचीन एवं अर्वाचीन विषयों पर विभिन्न निबन्ध लिखे हैं। इनमें भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य आदि को निरूपित किया गया है। अशोक के फूल, शिरीष के फूल, कुटज, मेरी जन्म भूमि, क्या आपने मेरी रचना पढ़ी, आम फिर बौरा गए, बसंत आ गया, नाखून क्यों बढ़ते हैं?' आदि इसी कोटि के निबन्ध हैं। इन निबन्धों में छोटी सी बात को लेकर द्विवेदी जी उनके संबंध में आदि से अन्त का वर्णन बहुत ही सहजता एवं मधुरता से करते हैं। डॉ. अर्जुन देव शर्मा के शब्दों में, ''आम फिर बौरा गए शीर्षक मात्र से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों इस आम बोरों की शोभा से लेखक आत्मविभोर की स्थिति ग्रहण कर अपने शब्दों में उच्छवासित कर रहा है।''

आचार्य द्विवेदी जी ने हिन्दी निबन्ध साहित्य को व्यापक तथा समृद्ध बनाने का महान कार्य किया है। इनके निबन्धों की एक विशेषता उनके व्यंग्य का नुकीलापन है, जो इतना सूक्ष्म और सौम्य है कि चुभते हुए कष्ट भी नहीं देता। यह डॉक्टर के इंजेक्शन की भाँति बारीक से बारीक सुई है। 'संस्कृत और साहित्य' नामक निबन्ध में वे कहते हैं, ''नई शिक्षा के परिचय से विश्वास भी ढीला होता जाता है। कम से कम शहरों में बसी जनता उनके अर्थहीन आचार-विचार के जंजालों से नहीं दबी है, जितने उनके ग्रामीण पूर्वज थे।'' डॉ. प्रभाकर माचवे उनके निबन्धों की दोनों विशेषताओं सहजता एवं व्यंग्य की ओर विशेष ध्यान आकर्षित करते हुए इन शब्दों में संकेत करते हैं, ''निबन्ध की शैली में वही सहजता है, जैसे गपशप कर रहे हैं, बात-बात में बात निकली जा रही है। कभी कोई पुरानी स्मृति का टुकड़ा उज्जवल हो रहा है, कोई एक दम अनूठी एक नयी उद्‌भावना सामने आ रही है तथा उनके निबन्धों में चुहल है, व्यंग्य है, करारी सामाजिक आलोचना है, वाग-वैदग्ध्य है, संस्मरणों का सिलसिलेवार काफिला है। संचित रत्नाकर और सुभाषित रत्न भण्डागार के असंख्य उद्धरण मणि हैं।'' आपके निबन्धों के बारे में डॉ. बच्चन सिंह का कथन है, ''उनके निबन्ध न तो गंभीरता का तेवर छोड़ते हैं और न सहजता का बाना।''

द्विवेदी जी ने साहित्य को लेकर सर्वाधिक निबन्ध लिखे हैं, लेकिन भारतीय संस्कृति के प्रति उनका जो प्रेम है, वह अटूट है। उनका शायद ही ऐसा कोई निबन्ध हो, जो संस्कृति प्रेम की अभिव्यक्ति से अछूता हो। इसलिए मनुष्य और संस्कृति उनके जहन में हमेशा बनी रही है। संस्कृति की झलक उनके भारतीय संस्कृति की देन नामक निबन्ध में देखी जा सकती है- ''भारतवर्ष ने एशिया और यूरोप के देशों को अपनी धर्म-साधना की उत्तम वस्तुएँ दान

सफल क्रियात्मक रूप देखते हैं, जैसे- 'सदा सत्य बोलो'- सिद्धान्त वाक्य सुनने में भले ही अच्छा लगे, परन्तु जब हम 'सत्य हरिशचन्द्र' की कथा में उनका सफल व्यावहारिक रूप देखते हैं, तभी उसका हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ता है तथा वास्तविक महत्व समझ पाते हैं। हमारे श्रेष्ठ पुरुष और महात्मा गुण और रुखे सिद्धान्त वाक्यों को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने के कारण ही हमारे लिए पूज्य बन सके हैं। अत: सिद्धान्त वाक्यों का महत्व तभी है, जब हम उन्हें किसी व्यक्ति के जीवन में व्यावहारिक रूप में पाते हैं।

विशेष—आदर्श वाक्यों को सिद्धान्त रूप में बुद्धि स्वीकार कर लेती है, किन्तु मन में उसका प्रभाव उसकी व्यावहारिकता के कारण पड़ता है।

6. संसार किसी को इतना समय ऐसे छोटे-छोटे कामों के लिए नहीं दे सकता .... कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि चेतना सृष्टि के भीतर क्रोध का विधान इसीलिए है।

सन्दर्भ—'क्रोध' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सामाजिक जीवन में क्रोध के महत्व का प्रतिपादन किया है।

व्याख्या—सामाजिक जीवन में क्रोध का अपना विशेष महत्व है। यदि क्रोध न हो तो मनुष्य दूसरों के द्वारा कष्ट से छुटकारा पाने का उपाय ही न करे। कोई दुष्ट आदमी नित्य प्रति दो चार गालियाँ देता है। यदि उसकी गालियाँ सुनकर क्रोध उत्पन्न नहीं होता तो उसका गालियाँ देना बढ़ता ही चला जायेगा। इस प्रकार समाज में बुराई बढ़ती जायेगी। उस दुष्ट के हृदय में विवेक, दया आदि सद्भाव उत्पन्न करने में बहुत समय लगेगा और संसार इतने छोटे-छोटे कामों के लिए किसी को इतना समय नहीं दे सकता। यह सत्य है कि प्राणी कभी-कभी भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा में प्रवृत्त होता है, परन्तु समाज में दु:ख की निवृत्ति के बिना क्रोध के बिना नहीं हो सकती। यह आवश्यकता नहीं है कि क्रोध करते समय क्रोध करने वाले के मन में भविष्य के कष्टों से बचने का उद्देश्य हो। परन्तु यह निश्चित है कि चेतन सृष्टि में क्रोध का निदान भविष्य के दु:ख से बचने के लिए ही होता है।

विशेष—यहाँ विद्वान लेखक ने क्रोध का व्यावहारिक विवेचन करते हुए उसे समाज के लिए आवश्यक बतलाया है।

7. यही क्रोध का अंधापन है। इसी से एक तो मनोविकार ही एक दूसरे को परिमित किया करते हैं, ऊपर से बुद्धि या विवेक भी उन पर अंकुश रखता है।....अपनी रक्षा का पूरा प्रबन्ध किए उसे मारने के लिए अकेले दौड़ पड़े, तो उसके मारे जाने में बहुत कम सन्देशु समझा जाएगा।

सन्दर्भ—'क्रोध' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्पष्ट करते हैं कि क्रोध अंधा होता है। इस स्थिति में मनुष्य हानि पहुँचाने वाले की शक्ति का अनुमान न करके उससे भिड़ जाता है और अपनी बहुत बड़ी हानि कर लेता है।

व्याख्या—क्रोध करने वाला अपनी शक्ति की ओर न देखकर केवल दु:ख पहुँचाने वाले की ओर देखता है। उसका एकमात्र लक्ष्य यही होता है कि उसका क्रोध पहुँचाने वाले का नाश हो। इस स्थिति में न तो वह अपना दोष ही देखता है और न क्रोध का परिणाम ही सोचता है। क्रोध के समय अपने दोषों का ज्ञान न रहना, अपनी दुर्बलता और शत्रु की सबलता का अनुभव न करके भिड़ जाना क्रोध का अंधापन कहलाता है। यही कारण है कि क्रोध को बुद्धि या विवेक मनोविकार संयमित किया करते हैं। जब क्रोध का वेग अति उग्र होता है,

तब क्रोध का आश्रय दुःख देने वाले की शक्ति और परिणाम को एवं उचित-अनुचित को विचार किए बिना उससे भिड़ जाता है। इससे कभी-कभी बड़ा अनर्थ होता है और क्रोध करने वाले को महान् हानि भी उठानी पड़ती है। यदि शत्रु बीस-पच्चीस आदमी लेकर मारने आ जाये और क्रोध का आश्रय शत्रु की शक्ति का बिना अनुमान किये हुए एवं अपनी रक्षा का बिना समुचित प्रबन्ध किए हुए मारने के लिए अकेला ही दौड़ पड़े तो वह निश्चय ही अपनी बहुत बड़ी हानि कर लेगा।

विशेष—यहाँ क्रोध के औचित्य और अनौचित्य की बड़ी व्यावहारिक व्याख्या की गई है।

प्रश्न 7. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में योगदान का वर्णन कीजिए।

अथवा

हिन्दी निबन्ध साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर-

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबन्ध विकास यात्रा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय मनीषा के प्रतीक और साहित्य एवं संस्कृति के अप्रतिम व्याख्याकार माने जाते हैं और उनकी मूल निष्ठा भारत की पुरानी संस्कृति में है, लेकिन उनकी रचनाओं में आधुनिकता के साथ भी आश्चर्यजनक सामंजस्य पाया जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को उनके निबन्धों के लिए विशेष ख्याति मिली। निबन्धों में विषयानुसार शैली का प्रयोग करने में इन्हें अद्भुत क्षमता प्राप्त है। तत्सम शब्दों के साथ ठेठ ग्रामीण जीवन के शब्दों का सार्थक प्रयोग इनकी शैली का प्रमुख गुण रहा है। भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, ज्योतिष और विभिन्न धर्मों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है, जिसकी झलक इनके निबन्धों में मिलती है। छोटी-छोटी चीजों, विषयों का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन और विश्लेषण-विवेचन उनकी निबन्धकला का विशिष्ट व मौलिक गुण है। उनके निबन्ध दार्शनिक तत्व प्रधान एवं सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। द्विवेदी जी के इन निबन्धों में विचारों की गहनता, निरीक्षण की नवीनता और विश्लेषण की सूक्ष्मता रहती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उनके समस्त निबन्ध साहित्य का चिन्तन और सृजन मानव केन्द्रीत ही रहा है। उन्हें हिन्दी साहित्य में अद्यतन युग का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार माना जाता है। उनके विविध विषयी निबन्धों में युगीन विचारधाराओं का सफलतापूर्वक समावेश हुआ है। इसलिए वे बार-बार कहते हैं कि, "मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है जिस कृति से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, वह वाग्जाल है।" जीवन की गतिविधियाँ, क्रियाकलापों और अनुभवों को उन्होंने अपने निबन्धों के अन्तर्गत बहुत ही सरल रूप में अपनाया है। निबन्ध पाठक को यह समझने में कोई आश्चर्य नहीं होता कि निबन्धों में प्रतिभा, विद्वता एवं पाण्डित्य का अद्भुत समावेश है। हिन्दी का अन्य कोई भी निबन्धकार इस बात की बराबरी नहीं कर सका है, जितना द्विवेदी जी ने अपने निबन्धों के माध्यम से पाठक पर प्रभाव डाला है। द्विवेदी जी ने आत्मदान को महत्वपूर्ण बताया है और इसका पालन भी किया है। इसी आत्मदान की याद में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं- "क्या उन्होंने प्राचीन काव्य, दर्शन, ज्योतिष और संस्कृत के श्रेष्ठ साहित्य के अपने गहन अध्ययन को निचोड़कर नहीं दे दिया है? मेरे ख्याल से तो हिन्दी साहित्य को यही उनकी सबसे बड़ी देन है, जिसे आधुनिक काल का दूसरा साहित्यकार नहीं दे सकता

था। विचारात्मक एवं ललित निबन्ध की एक बड़ी कड़ी के रूप में जुड़ने के बाद उन्होंने दोनों कोटि के निबन्ध लेखन को समृद्ध कर पूर्णता की चरम सीमा तक पहुँचाया। लालित्य एवं विचार दोनों में द्विवेदी जी की गति अबाध एवं अनन्य है। दोनों को समान रूप से लेकर चलने वाले वे इकलौते निबन्धकार हैं। द्विवेदी जी के निबन्धों में, "भारतीय संस्कृति की जीवन्त परम्परा विद्यमान है। आपके निबन्ध भारतीय जनजीवन की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करते हैं।"

जीवन और जगत के सम्बन्ध में द्विवेदी जी की अवधारणा एवं विचारधारा उनके सभी निबन्धों में पायी जाती है। संक्षेप में द्विवेदी जी के चिन्तन को लोकधर्मी चिंतन कहा जाना सर्वथा औचित्यपूर्ण लगता है। सामंजस्य उत्पन्न करने के लिए कुशलता और प्रतिभा की आवश्यकता होती है। सभी चित्रकारों के पास अनेक रंग होते हैं, किन्तु कुशल शिल्पी ही जानता है कि किसका किस स्थान पर उपयोग करने से चित्र सुन्दर लगेगा। इसीलिए द्विवेदी जी अपने निबन्धों में एक कुशल शिल्पी की भाँति शब्दों का प्रयोग करते हैं- "मनुष्य में बहुत-सी आदिम मनोवृत्तियाँ हैं, जो जरा-सा सहारा पाते ही झनझना उठती हैं।"

द्विवेदी जी के सारे निबन्ध चिन्तन के केन्द्र में मनुष्य है। उनकी दृष्टि में मानव समाज को सुन्दर बनाने की साधना ही साहित्य है। उनके निबन्ध इस कसौटी पर पूरे ही नहीं उतरते, अपितु इस सम्बन्ध में आदर्श रूप भी स्थापित करते हैं। निबन्धों में समूचे मानव मूल्यों को स्थान एवं प्रवेश देने का प्रयास किया गया है। अपने निबन्ध साहित्य में उन्होंने प्राचीनकाल के अप्रासंगिक एवं निरर्थक हो चुके मूल्यों पर जोर दिया है। विचार एवं व्यक्तित्व का जैसा सहभाव द्विवेदी जी के निबन्ध लेखन में दृष्टिगोचर होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मस्ती और फक्कड़पन अनेक निबन्धों में मिलता ही है, चाहे निबन्ध का विषय जो भी हो। विरोधी विचारधाराओं का समावेश उनके चिन्तन और लेखन की विशेषता है- "आदर्शवाद के धरातल पर विरोधी विचारधाराओं, परम्परा तथा प्रयोग, संस्कृति तथा सभ्यता, समाज तथा व्यक्ति, धर्म तथा विज्ञान, मानववाद तथा मानवतावाद, गाँधी तथा मार्क्स, प्राचीन तथा नवीन जीवन बोध मे सामंजस्य एवं समन्वय स्थापित कर रखा है।"

द्विवेदी जी ने विविध विषयों, विचारों विभिन्न कोणों, शैलियों से लिखकर हिन्दी निबन्ध-विधा को समृद्ध एवं पुष्ट और परिपक्व किया है। द्विवेदी जी के निबन्धों में भारतीय संस्कृति के प्रति अनन्य स्नेह और संपृक्ति दिखाई देती है। उनके निबन्ध भारतीय संस्कृति के पर्याय हैं। इनमें मानव प्रेम, देश प्रेम, आध्यात्मिकता, उदारता, समर्पण-भावना, कर्तव्य भावना, मानसिक संयम, असीम श्रद्धा और अगाध विश्वास आदि तत्व विद्यमान हैं। इनका कदाचित ही ऐसा कोई निबन्ध हो, जिसके केन्द्र में भारतीय संस्कृति एवं मानव की बात न करते हों। मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह दुःख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म निर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है।

अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। यद्यपि द्विवेदी जी के मनोविज्ञान को लेकर कहीं बात नहीं की गई है, पर मनोभावों की सूक्ष्म पकड़ होने के कारण उनके निबन्ध मनोविज्ञान के प्रभाव से युक्त लगे हैं। समीक्षक श्यामनंद किशोर इस संबंध में लिखते हैं- "साहित्य सृष्ठा द्विवेदी जी के मनोविश्लेषण के लिए उनका निबन्ध साहित्य अत्यधिक उपयुक्त है। प्रसंग गर्भत्व द्विवेदी जी के निबन्धों को वृहत्तर आयाम प्रदान करता है। प्राचीन काल के अनेक प्रसंग और श्लोक, अर्वाचीन साहित्य के अनेक विवरण उनके निबन्धों को सांस्कृतिक गरिमा प्रदान करते हैं। वे किसी सीधे-साधे शब्द या वाक्य को इतने

निश्छल ढंग से निबन्ध में प्रस्तुत करते हैं कि उसकी अर्थवत्ता निःसृत हो जाती है। चिरपरिचित शब्दों के अछूते प्रयोग द्विवेदी जी की लोक-संस्कृति से भिन्न है।" द्विवेदी जी की मनोवैज्ञानिक-सी सूक्ष्म दृष्टि, विषय-विवेचन, भाषा, शैली सभी अद्भुत और विलक्षण है। अपनी सहज आत्मीयता एवं विनोद-प्रियता के कारण पाठकों से उनका संवाद शीघ्र ही स्थापित हो जाता है। वक्तव्य प्रधान शैली के कारण निबन्धों में चमत्कारिकता, रसात्मकता और रोचकता की वृद्धि होती है। उनके निबन्ध सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ ज्ञान की असंख्य आलोक किरणों से सहज ही बौद्धिक दीप्ति प्रदान करते हैं।

द्विवेदी जी ललित निबन्ध के प्रवर्तक माने जाते हैं। ललित निबन्ध निबन्ध कला की दृष्टि से श्रेष्ठतम है। इनमें भावनात्मकता एवं अनुभूति की त्रिवेणी प्रवाहित होती रहती है, जो गहन संवेदना से परिपूर्ण है। इसमें भावुकता एवं सहृदयता का ज्वार-भाटा सा उठ पड़ता है। पाण्डित्य से पूरित गवेषणात्मक निबन्ध लेखन के अलावा उन्होंने ललित निबन्ध लेखन में भी विलक्षण कौशल प्रदर्शित किया है। ललित निबन्ध की कोटि में प्राचीन एवं अर्वाचीन विषयों पर विभिन्न निबन्ध लिखे हैं। इनमें भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य आदि को निरूपित किया गया है। अशोक के फूल, शिरीष के फूल, कुटज, मेरी जन्म भूमि, क्या आपने मेरी रचना पढ़ी, आम फिर बौरा गए, बसंत आ गया, नाखून क्यों बढ़ते हैं?' आदि इसी कोटि के निबन्ध हैं। इन निबन्धों में छोटी सी बात को लेकर द्विवेदी जी उनके संबंध में आदि से अन्त का वर्णन बहुत ही सहजता एवं मधुरता से करते हैं। डॉ. अर्जुन देव शर्मा के शब्दों में, "आम फिर बौरा गए शीर्षक मात्र से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों इस आम बोरों की शोभा से लेखक आत्मविभोर की स्थिति ग्रहण कर अपने शब्दों में उच्छवासित कर रहा है।"

आचार्य द्विवेदी जी ने हिन्दी निबन्ध साहित्य को व्यापक तथा समृद्ध बनाने का महान कार्य किया है। इनके निबन्धों की एक विशेषता उनके व्यंग्य का नुकीलापन है, जो इतना सूक्ष्म और सौम्य है कि चुभते हुए कष्ट भी नहीं देता। यह डॉक्टर के इंजेक्शन की भाँति बारीक से बारीक सुई है। 'संस्कृत और साहित्य' नामक निबन्ध में वे कहते हैं, "नई शिक्षा के परिचय से विश्वास भी ढीला होता जाता है। कम से कम शहरों में बसी जनता उनके अर्थहीन आचार-विचार के जंजालों से नहीं दबी है, जितने उनके ग्रामीण पूर्वज थे।" डॉ. प्रभाकर माचवे उनके निबन्धों की दोनों विशेषताओं सहजता एवं व्यंग्य की ओर विशेष ध्यान आकर्षित करते हुए इन शब्दों में संकेत करते हैं, "निबन्ध की शैली में वही सहजता है, जैसे गपशप कर रहे हैं, बात-बात में बात निकली जा रही है। कभी कोई पुरानी स्मृति का टुकड़ा उज्जवल हो रहा है, कोई एक दम अनूठी एक नयी उद्भावना सामने आ रही है तथा उनके निबन्धों में चुहल है, व्यंग्य है, करारी सामाजिक आलोचना है, वाग-वैदग्ध्य है, संस्मरणों का सिलसिलेवार काफिला है। सद्चित रत्नाकर और सुभाषित रत्न भण्डागार के असंख्य उद्धरण मणि हैं।" आपके निबन्धों के बारे में डॉ. बच्चन सिंह का कथन है, "उनके निबन्ध न तो गंभीरता का तेवर छोड़ते हैं और न सहजता का बाना।"

द्विवेदी जी ने साहित्य को लेकर सर्वाधिक निबन्ध लिखे हैं, लेकिन भारतीय संस्कृति के प्रति उनका जो प्रेम है, वह अटूट है। उनका शायद ही ऐसा कोई निबन्ध हो, जो संस्कृति प्रेम की अभिव्यक्ति से अछूता हो। इसलिए मनुष्य और संस्कृति उनके जहन में हमेशा बनी रही है। संस्कृति की झलक उनके भारतीय संस्कृति को देन नामक निबन्ध में देखी जा सकती है- "भारतवर्ष ने एशिया और यूरोप के देशों को अपनी धर्म-साधना की उत्तम वस्तुएँ दान

की है। उसने अहिंसा और मैत्री का संदेश दिया है। क्षुद्र-दुनियावी स्वार्थों की उपेक्षा करके विशाल आध्यात्मिक अनुभूतियों का उपदेश दिया है। भारतीय संस्कृति और इसकी समृद्ध परम्परा यहाँ की मिट्टी के कण-कण में विद्यमान है। इसका बहुत बड़ा अंश दुनिया के और देशों में पहुँचा है- "मेरे गाँव में जो अतिथियाँ बसी हैं, वे किसी उजड़े महल या गाड़ी हुई ईंटों से कम महत्वपूर्ण है तो है ही नहीं, अधिक महत्वपूर्ण है। मेरे इस छोटे से गाँव में भारतवर्ष का बहुत बड़ा सांस्कृतिक इतिहास पढ़ा जा सकता है।" आप अपने निबन्धों में संस्कृत साहित्य का गंभीर अध्ययन प्रस्तुत करते हैं, भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल रूप सामने लेते हैं। शिष्ट साहित्य की गरिमा प्रस्तुत करते हैं। लोक साहित्य एवं संस्कृति का प्रतिपादन करते हैं, "जिस मनुष्य का चित निर्मल और शुद्ध होता है उसका निर्णय उत्तम होता है। उसी को हम सुसंस्कृत मनुष्य कहते हैं।"

निबन्धों में प्रयुक्त भाषा और विविधता से युक्त शैली भी आपके लेखन की विशेषता है। भाषा के अन्तर्गत भारतीय भाषाओं एवं बोलियों के अतिरिक्त संस्कृत एवं विदेशी भाषाओं का भी प्रयोग प्रभावशाली ढंग से किया गया है, परन्तु वे स्वभाव से फक्कड़ थे। अच्छा हो या बुरा, खरा हो या खोटा जिससे एक बार चिपट गए उससे जिन्दगी भर चिपटे रहे।" यहाँ भारतीय बोली के शब्दों का प्रयोग किया गया है। सब अपने मतलब के लिए प्रिय होते हैं- आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रिय भवति।" इसमें संस्कृत शब्दावली परिलक्षित हो रही है। इस समस्या का नाम है, नेशनैलिटी। इसको हिन्दी में नाम दिया गया है, राष्ट्रीयता। विदेशी भाषा अंग्रेजी के शब्द का प्रयोग हुआ है। अपनी भाषा में द्विवेदी जी ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को बड़ी ही सुन्दरता से पिरोते हैं। विषय और भाषागत विशेषता के साथ-साथ शैली में भी विविधता दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि आप भावों के अनुसार शैली परिवर्तन कला में भी सिद्धहस्त हैं- "आपकी रचना पद्धति में भी विविधता के दर्शन होते हैं, क्योंकि कहीं तो आपने वार्तामूलक पद्धति अपनायी है, कहीं व्याख्यामूलक पद्धति का प्रयोग किया है, कहीं चिन्तन मनन-मूलक पद्धति का उपयोग किया है, कहीं व्यंग्यपूर्ण खण्डन-मण्डन पद्धति काम में ली है।"

आचार्य द्विवेदी जी ने निबन्धों की रचना उन तथ्यों एवं विचारों के आधार पर की है, जिन्हें इन्होंने स्वयं अनुभव किया है, सोचा समझा है तथा जिसका संबंध निजी देश, समाज, जीवन, संस्कृति एवं साहित्य से न होकर सम्पूर्ण विश्व के मानव जीवन से एवं मानवता से है। निबन्धों की भाषा में तत्सम, तद्भव, अर्द्धतत्सम और देशज शब्द प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं- "द्विवेदी जी तो माहौल बनाकर पाठक को आत्मीयता और खुलेपन के साथ विश्वास में लेते हैं, उनसे बातचीत करते हुए उसे अपनी भावभूमि पर बहला ले जाते हैं और फिर जो कहना होता है, कह जाते हैं।"

आलोचक द्विवेदी जी को भाषा का उपासक मानते हैं और यह उचित भी है, क्योंकि भाषा उनके साथ सहयोग करती है। आपकी भाषा की संक्षेप में एक विशेषता कही जाए तो वह यह कि आपकी भाषा नीर-क्षीर विवेक परमहंस भाषा है। विषय, भाषा, शैली, चिंतन और अनुभूति सभी दृष्टियों से आचार्य जी का निबन्ध साहित्य उनके समकालीन एवं पूर्ववर्ती निबन्ध लेखकों के लिए अनुकरणीय तथा प्रेरणा प्रदान करने का समृद्ध भण्डार है- "इन निबन्धों में आशा, विश्वास, राग-विराग, धारणा, मान्यता, कल्पना-अनुभूति, आदर्श, यथार्थ, विलास-विनोद, कला, विद्या आदि की अभिव्यक्ति अत्यन्त गहनता, तीव्रता एवं सजगता के साथ हुई है।"

निबन्धकार के रूप में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का सम्पूर्ण मूल्यांकन करना शायद सम्भव नहीं है, क्योंकि उनके निबन्ध विभिन्न विषयों से ओतप्रोत हैं। अपनी मानवतावादी दृष्टि, भावों-विचारों, अभिव्यक्ति, शैली आदि के कारण उनके निबन्ध हिन्दी निबन्ध साहित्य की गौरवपूर्ण निधि है। द्विवेदी जी ने जिस कोटि के कलात्मक निबन्ध लिखे हैं, उनसे प्राप्त होने वाली प्रेरणा को काल की सीमा में बांधकर नहीं रखा जा सकता है। इनके निबन्ध न कोरी मनोरंजकता अथवा कलात्मकता ही नहीं है, अपितु शक्ति और सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश भी है। हिन्दी साहित्य में लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के निबन्ध साहित्य से सदा प्रेरणा और प्रवाह ग्रहण करते रहेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है।

प्रश्न 8. अशोक के फूल नामक निबन्ध की समीक्षा कीजिए।

उत्तर- अशोक के फूल नामक निबन्ध की समीक्षा

'अशोक के फूल' निबन्ध संग्रह भारतीय जनजीवन, भारतीय इतिहास और संस्कृति से सम्बन्धित है। इसमें भारत की संस्कृति, साहित्य, कला, धर्म, इतिहास के विषय में जानकारी दी गई है। संग्रह के प्रथम निबन्ध में अशोक के वृक्ष उसके फूलों का प्राचीन भारत में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मूल्य बताया गया है तथा संग्रह का अन्तिम निबन्ध भारतीय फलित ज्योतिष है। अशोक का वृक्ष तथा ज्योतिष हमारी संस्कृति के प्रतीक हैं। दोनों का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अन्य छब्बीस निबन्धों में भी भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। अत: यह नाम उचित ही है।

अशोक का शाब्दिक अर्थ है शोकहीन व्यक्ति शोकहीन या आनन्दमग्न तभी होता है, जब वह निश्चित न हो, निस्पृह हो, उसके हृदय और उसकी आत्मा निष्कलुस हो, वह सात्विक विचारों का हो, सन्मार्ग पर चले। इस संकलन के निबन्ध पाठक को बताते हैं कि क्या करने से, किस मार्ग पर चलने से, कौन-सी जीवन-दृष्टि अपनाने से मनुष्य आनन्द प्राप्त कर सकता है।

निबन्ध में अशोक के फूल के विषय में सोचते-सोचते तथा लिखते हुए लेखक भारतीय संस्कृति और मानव प्रवृत्ति पर अपने विचार प्रकट करता है। अन्य निबन्ध 'मेरी जन्मभूमि' संस्कृत साहित्य का इतिहास में भी लेखक भारती के गौरवमय अतीत की झाँकी प्रस्तुत करता है और उन जीवन मूल्यों को अपनाने का आग्रह करता है, जिनके द्वारा मानव जाति मंगल और कल्याण के पथ पर चलती हुई अपनी सुरक्षा सुनिश्चित कर सकती है। इसमें लेखक के वे सुचिंत विचार और सिद्धान्त भी हैं जिनके द्वारा हम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। जैसे परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत और सनातन नियम है चलना और आगे बढ़ना मानव जाति का स्वाभाविक धर्म है। अत: पतन ह्रास और विजय प्राप्त करो। संस्कृत साहित्य का इतिहास नामक निबन्ध में लेखक की अटूट आस्था और आशावादिता झलकती है। विजय यात्रा में युद्ध और विग्रह ने क्षणिक व्यवधान अवश्य डाला है, किन्तु कल्याण पथ की ओर यात्रा रुकी नहीं है। इसी प्रकार वह मानते हैं कि मनुष्य महान है, मनुष्य से बढ़कर कोई और कुछ भी नहीं है। मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है, में लेखक ने मनुष्य की महानता बताई है तो प्राचीन ऋषियों की वाणी का महत्व नया वर्ष आ गया निबन्ध में बताया गया है। मानव की दुर्दम शक्ति और उसकी जिजीविषा के संबंध में 'अशोक के फूल' नामक निबन्ध में उतनी स्पष्ट घोषणा है मुझे मानव जाति की दुर्दम निर्मम धारा के हजारों वर्ष का रूप साफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य की जीवन शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती

चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती यह जीवनधारा आगे बढ़ रही है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पायी है।' इस प्रकार इस निबन्ध संग्रह का नामकरण अशोक के फूल सभी दृष्टियों से सार्थक है। वह संग्रह का पहला ओर सर्वोत्कृष्ट निबन्ध है, उसमें भारतीय इतिहास, संस्कृति, सनातन जीवन-मूल्यों की चर्चा की गई है, जो अन्य निबन्धों के विषय भी हैं। अत: वह संग्रह के अन्य निबन्धों से जुड़ा है और सभी को श्रृंखलाबद्ध करता है। एकसूत्र में पिरोता है। यह नाम प्रतीकात्मक, कवित्तपूर्ण तो है ही पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है कि लेखक इसके द्वारा क्या कहना चाहता है, क्या संदेश देना चाहता है?

'अशोक के फूल' निबन्ध में लेखक ने अशोक वृक्ष और उसके फूलों के माध्यम से भारत के प्राचीन इतिहास, संस्कृति, जीवनदृष्टि, धर्म-साधनाओं तथा विभिन्न जातियों के विषय में ज़ानकारी दी है। उन्होंने बताया है कि आर्यों का आर्येत्तर जातियों से संघर्ष हुआ, जो जातियाँ गर्वीली थीं और जिन्होंने आर्यों का प्रभुत्व नहीं माना जैसे दैत्य, असुर, राक्षस, दानव उनसे संघर्ष हुआ और जो शान्तिप्रिय थीं जैसे यक्ष-गन्धर्व वे आर्यों से मिल गईं। उन्होंने बताया है कि संस्कृत कवि कालिदास से पूर्व अशोक का वृक्ष एवं फूल तो थे, पर सबसे पहले उनको महिमामंडित करने वाले कालिदास ही थे। उनकी रचनाओं में ही इस वृक्ष और उसके फूलों की शोभा, सुकुमारता, सांस्कृतिक महत्व और मानव जीवन में उनका महत्व बताया गया है, "सुन्दरियों के अस्जिनकारी नुपूरों वाले चरणों के मृदु आघात से वह फूलता था, वे अपने कानों में इस फूल के आभूषण बनाकर पहनती थीं, इनसे अपने केशों का श्रृंगार करती थीं।" भारतीय धर्म-साधना में भी इसका महत्व था। आर्येत्तर जातियों ने वरुण कुबेर, इन्द्र, कामदेव की पूजा-अर्चना में इस पुष्प का प्रयोग किया। लेखक बताता है कि आहुत, साँची, मथुरा आदि में प्राप्त मूर्तियों से पता चलता है कि ये जातियाँ पहाड़ी थीं, संगीत, नृत्य आदि ललित कलाओं में रूचि लेती थीं, पुष्पों से उन्हें विशेष प्रेम था। ये न कृषि प्रधान थीं ओर न व्यापार वाणिज्य करने वाली जातियाँ थीं। फिर भी धनवान थीं, विलासिता में डूबी हुई थीं। लेखक ने विभिन्न धर्म-साधनाओं और संस्थाओं का भी परिचय दिया है। बौद्ध धर्म, उसकी वज्रयान शाखा, उसमें फैले अनाचार के संकेत दिए हैं।" वज्रयान का अपूर्व धर्म-मार्ग प्रचलित हुआ, त्रिरत्नों में मदन देवता ने आसन पाया। वह एक अजीब आँधी थी। इसमें बौद्ध बँट गये, शेष बह गए, शाक्त बह गये।"

महाभारत काल में सन्तान की इच्छुक स्त्रियाँ वृक्षों के देवताओं के पास जाती थीं। इन वृक्षों में अशोक के वृक्ष को सर्वाधिक महत्व प्राप्त था। माना जाता था कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को व्रत रखने और अशोक की आठ पत्तियाँ खाने से स्त्री गर्भवती हो जाती है। तांत्रिक क्रियाओं में सफेद रंग के फूलों का तथा कामवर्द्धन के लिए अशोक के लाल फूलों का प्रयोग होता था। यक्ष और गंधर्व कामदेव की पूजा के लिए अशोक के फूलों का ही प्रयोग करते थे और मदनोत्सव के अवसर पर अशोक के फूलों से ही सजावट होती थी। लेखक बताता है कि इस आरम्भिक युग के बाद, सामन्तवादी व्यवस्था का अन्त होने पर जब भूत-प्रेतों पीरों काली-दुर्गा की पूजा होने लगी, तब अशोक का गौरव समाप्त हो गया, उसके पुष्पहीन कोटि के माने जाने लगे। मुसलमानों के शासन काल में यह पुष्प साहित्य से भी निष्कासित कर दिया गया। कवियों तथा अन्य लोगों ने भी अशोक के फूल को भुला दिया। लेखक ने अशोक के फूल की गरिमा तथा उसके पतन का इतिहास बताते हुए मानव जाति के उत्थान-पतन की गाथा

प्रस्तुत की है तथा परिवर्तन की प्रकृति का सहज स्वाभाविक धर्म बताते हुए निराश न होने का संदेश दिया है। उनका मानना है कि मनुष्य की जिजीविषा अत्यन्त सशक्त है। शूद्र है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा। वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है। अत: दुखी होने या चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है विपदाओं, संकटों, विषम स्थितियों का साहस और अदम्य विश्वास के साथ सामना करो, संघर्ष नई शक्ति प्रदान करता है। अशोक के फूल हजारों वर्ष बाद भी मुस्करा रहे हैं।

निबन्ध में मुख्यत: पाठकों को यह संदेश दिया गया है-

1. भारत का अतीत गौरवपूर्ण है, संस्कृति स्वर्णिम है। परम्परा समृद्ध है। हमें उन्हें विस्मृत करना नहीं चाहिए। इनका स्मरण करना, इनका अनुसरण करना एक प्रकार से पितृ ऋण चुकाना है।

2. सांसारिक स्वार्थों, संकुचित विचारधारा को त्यागकर अहिंसा, मित्रता, उदारता जैसे उदात्त भावों को अपनाओ। इसलिए व्यक्ति, समाज, देश ओर विश्व का कल्याण होगा।

3. मनुष्य इस सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है, मनुष्य से बढ़कर कोई और कुछ नहीं है। मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।

4. मनुष्य की जीने की इच्छा सशक्त है, दुर्दम है। अत: निराशावादी मत बनो।

5. परिवर्तन तथा विकास सृष्टि के शाश्वत नियम हैं। अतीत को याद कर दु:खी मत हो। अतीत को ध्यान में रखकर वर्तमान का निर्माण करो, सत्य पथ पर चलो, मित्रवत् रहो, सहयोग करो, सहना मुनक्तो का संदेश याद रखो और परिवर्तनों को संघर्ष स्वीकार करो।

6. संघर्ष, युद्ध, विग्रह से मत डरो, पूरी शक्ति के साथ संघर्ष करो, संघर्ष ही नयी शक्ति प्रदान करता है। ■

प्रश्न 8. (अ) ललित निबन्ध के रूप में 'कूट्ज' निबन्ध की समीक्षा कीजिए।

उत्तर- ललित निबन्ध के रूप में कूट्ज की समीक्षा

कूट्ज एक ललित निबन्ध है। इसका विषय भी कूट्ज है। इस विषय को प्रस्तुत करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी उस भूमि पर भी प्रकाश डालते हैं, जहाँ यह उगता है। यह स्थान है हिमालय की वे पर्वत श्रृंखलाएँ, जिन्हें शिवालिक कहा जाता है। इस शिवालिक के विवरण में ज्ञान का प्रकाश है। स्थूल वर्णन यथार्थ होकर भी भावमूलक है। इसके साथ ही विषय का आत्मीय-विश्लेषण भी है। प्रवाहमयी भाषा है। इसके पश्चात् 'नाम' और 'रूप' की सैद्धान्तिक व्याख्या है और फिर कूट्ज शब्द की भाषाशास्त्र के अनुसार व्याख्या है। यह व्याख्या शुष्क सैद्धान्तिक न होकर भाव को भी समन्वित करती हुई चलती है। हृदय और बुद्धि का यह समन्वय इस निबन्ध की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पं. रामचंद्र शुक्ल के निबन्धों में प्रधानता तो बुद्धि की है- कहीं-कहीं हृदय भी उसमें जुड़ जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के निवन्धों में हृदय और बुद्धि साथ-साथ चलते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कूट्ज को मानवी-चेतना का रूप प्रदान किया है। यह पुरुष विशेष है। कूट्ज के साथ द्विवेदी जी सहज आत्मीय सम्बन्ध भी बना लेते हैं। इसके बीच में कालिदास का मेघदूत और उनकी कूट्ज कुसुमों से मेघ की अभ्यर्थना आदि समाहित है। इस सारे विवरण के साथ ही उनकी आत्मीयता कूट्ज की अभ्यर्थना में परिवर्तित हो जाती है। कूट्ज ने उनके संतप्त चित्त को सहारा दिया था। 'बड़ भागी फूल है यह। धन्य हो कूट्ज तुम गाढ़े के साथी हो। उत्तर की ओर सिर उठाकर देखता हूँ, सुदूर तक ऊँची काली पर्वत-श्रृंखला छायी हुई है और एकाध सफेद बादल के

बच्चे उनसे लिपटे खेल रहे हैं। मैं भी इन पुष्पों का आदर्श उन्हें चढ़ा दूँ।" आगे चलकर द्विवेदी जी कहते हैं- "जो कालिदास के काम आया हो, उसे ज्यादा इज्जत मिलनी चाहिए। मिली कम है। पर इज्जत तो नसीब की बात है।' इसके समानान्तर वे रहीम को रखते हैं। रहीम को भी जो स्थान मिलना चाहिए था नहीं मिला। कूट्ज के फूल को भी वह सम्मान नहीं मिला, जिसके योग्य वह है। इस स्थान पर सहज भाव से हजारी प्रसाद द्विवेदी एक शुद्ध सत्य को सहजता के साथ रख देते हैं। 'लेकिन दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है।'

द्विवेदी जी भाषाशास्त्री है, फलत: कूट्ज शब्द का ऐतिहासिक संबंध, उसकी प्राचीनता, उसकी व्युत्पत्ति, उसका भाषा परिवार, उसके विविध आयामों पर शास्त्रोक्त मीमांसा करने के पश्चात् वे पुन: प्रकृति लालित्य के मध्य कूट्ज की प्रतिष्ठा करते हुए प्रतीत होते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी सम्पूर्ण आत्मीयता के साथ कूट्ज को आदर्श चिंतन के प्रवक्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। भाषा, भाव और बोध के लालित्य के रूप में हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध कूट्ज की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं- यथा- 'मगर कूट्ज है कि संस्कृत की निरन्तर स्फीयमान शब्द राशि में जो जमके बैठा सो बैठा ही है। चारों ओर कुपित यमराज के दारुण विश्वास के समान धधकती लू में यह हरा भी है और भरा भी है, दुर्जन के चित्त से भी अधिक कठोर पाषण की कारा में रूद्ध अज्ञात जलस्त्रोत से बरबस रस खींचकर सरस बना हुआ है। और मूर्ख के मस्तिष्क से भी अधिक सूने गिरि कांतर में भी ऐसा मस्त बना है कि ईर्ष्या होती है। कितनी कठिन जीवनी शक्ति है।' इसके पश्चात् हजारी प्रसाद द्विवेदी कूट्ज को जीवनी शक्ति के महत्तम प्रतीक के रूप में विनियोजित कर उसके माध्यम से अपनी सामाजिक चेतना सम्बन्धी विचार-सरणि को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। यह ललित-निबन्ध द्विवेदी जी की सामाजिक मान्यताओं का विचार-कोष है। यह निबन्ध हृदयानुभूति का विचार कोष भी है।

ललित निबन्ध में आत्मीयता और आडम्बरहीनता का विशेष स्थान है। कूट्ज निबन्ध में कूट्ज के साथ लेखक की आत्मीयता पाठक की आत्मीयता बन जाती है। इसमें शास्त्रीयता के साथ आत्मीयता का समन्वय होता है। बुद्धि और हृदय इस प्रकार के निबन्धों में अलग-अलग राह पर नहीं चलते हैं। उनमें एकात्मकता रहती है। इसी कारण ललित निबन्धों को व्यंजना रागाश्रित व्यंजना होती है। कूट्ज इस रागाश्रित व्यंजना का अभिनव रूप है। यह रागाश्रित व्यंजना पाठक को आकर्षित करती है और आत्मीयता से बाँध लेती है। पाठक, लेखक और निबन्ध तीनों ही एकतान होकर रचना को अपने में समाहित करते हैं और स्वयं रचना में समाहित होते हैं। लेखक के भाव और विचार पाठक को प्रभावित करते हैं। आडम्बर साहित्य का गुण नहीं दुर्गुण है। ललित निबन्ध इस आडम्बर के आवरण को अस्वीकार कर सहजता में ही सम्पूर्ण होता है। यदि एक प्रकार से देखा जाये तो कूट्ज का उत्पत्ति-स्थल, रेतीले पहाड़ों के कठिनतम पर्यावरण के मध्य उसका जन्म लेना और उसी परिवेश में पुष्पित पल्लवित होना, सब कुछ एक कहानी जैसा लगता है। एक ऐसी कथा जिसका नायक असीम जीवनी शक्ति से जीवंत भी है। इसका नायकत्व जीवन की कला भी जानता है। उसमें रस भी है और आदर्श भी। हजारी प्रसाद द्विवेदी उसे नाना प्रकार के विशेषणों से संबोधित करते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी आत्मीय एवं घनिष्ठ भाव से कूट्ज से जुड़ जाते हैं। इस निबन्ध से गुजरते हुए ऐसा लगता है जैसे द्विवेदी जी ने उसकी काया में ही प्रवेश कर लिया है। इसको ही 'परकाय प्रवेश' कहते हैं। यदि ऐसा न होता तो निबन्ध बाह्य विवरण देकर ही समाप्त

प्रस्तुत की है तथा परिवर्तन की प्रकृति का सहज स्वाभाविक धर्म बताते हुए निराश न होने का संदेश दिया है। उनका मानना है कि मनुष्य की जिजीविषा अत्यन्त सशक्त है। शूद्र है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा। वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है। अत: दुखी होने या चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है विपदाओं, संकटों, विषम स्थितियों का साहस और अदम्य विश्वास के साथ सामना करो, संघर्ष नई शक्ति प्रदान करता है। अशोक के फूल हजारों वर्ष बाद भी मुस्करा रहे हैं।

निबन्ध में मुख्यत: पाठकों को यह संदेश दिया गया है-

1. भारत का अतीत गौरवपूर्ण है, संस्कृति स्वर्णिम है। परम्परा समृद्ध है। हमें उन्हें विस्मृत करना नहीं चाहिए। इनका स्मरण करना, इनका अनुसरण करना एक प्रकार से पितृ ऋण चुकाना है।

2. सांसारिक स्वार्थी, संकुचित विचारधारा को त्यागकर अहिंसा, मित्रता, उदारता जैसे उदात्त भावों को अपनाओ। इसलिए व्यक्ति, समाज, देश ओर विश्व का कल्याण होगा।

3. मनुष्य इस सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है, मनुष्य से बढ़कर कोई और कुछ नहीं है। मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।

4. मनुष्य की जीने की इच्छा सशक्त है, दुर्दम है। अत: निराशावादी मत बनो।

5. परिवर्तन तथा विकास सृष्टि के शाश्वत नियम हैं। अतीत को याद कर दु:खी मत हो। अतीत को ध्यान में रखकर वर्तमान का निर्माण करो, सत्य पथ पर चलो, मित्रवत् रहो, सहयोग करो, सहना मुनक्तो का संदेश याद रखो और परिवर्तनों को संघर्ष स्वीकार करो।

6. संघर्ष, युद्ध, विग्रह से मत डरो, पूरी शक्ति के साथ संघर्ष करो, संघर्ष ही नयी शक्ति प्रदान करता है। ■

प्रश्न 8. (अ) ललित निबन्ध के रूप में 'कूट्ज' निबन्ध की समीक्षा कीजिए।

उत्तर- ललित निबन्ध के रूप में कूट्ज की समीक्षा

कूट्ज एक ललित निबन्ध है। इसका विषय भी कूट्ज है। इस विषय को प्रस्तुत करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी उस भूमि पर भी प्रकाश डालते हैं, जहाँ यह उगता है। यह स्थान है हिमालय की वे पर्वत श्रृंखलाएँ, जिन्हें शिवालिक कहा जाता है। इस शिवालिक के विवरण में ज्ञान का प्रकाश है। स्थूल वर्णन यथार्थ होकर भी भावमूलक है। इसके साथ ही विषय का आत्मीय-विश्लेषण भी है। प्रवाहमयी भाषा है। इसके पश्चात् 'नाम' और 'रूप' की सैद्धान्तिक व्याख्या है और फिर कूट्ज शब्द की भाषाशास्त्र के अनुसार व्याख्या है। यह व्याख्या शुष्क सैद्धान्तिक न होकर भाव को भी समन्वित करती हुई चलती है। हृदय और बुद्धि का यह समन्वय इस निबन्ध की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पं. रामचंद्र शुक्ल के निबन्धों में प्रधानता तो बुद्धि की है- कहीं-कहीं हृदय भी उसमें जुड़ जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में हृदय और बुद्धि साथ-साथ चलते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कूट्ज को मानवी-चेतना का रूप प्रदान किया है। यह पुरुष विशेष है। कूट्ज के साथ द्विवेदी जी सहज आत्मीय सम्बन्ध भी बना लेते हैं। इसके बीच में कालिदास का मेघदूत और उनकी कूट्ज कुसुमों से मेघ की अभ्यर्थना आदि समाहित है। इस सारे विवरण के साथ ही उनकी आत्मीयता कूट्ज की अभ्यर्थना में परिवर्तित हो जाती है। कूट्ज ने उनके संतप्त चित्त को सहारा दिया था। 'बड़ भागी फूल है यह। धन्य हो कूट्ज तुम गाढ़े के साथी हो। उत्तर की ओर सिर उठाकर देखता हूँ, सुदूर तक ऊँची काली पर्वत-श्रृंखला छायी हुई है और एकाध सफेद बादल के

बच्चे उनसे लिपटे खेल रहे हैं। मैं भी इन पुष्पों का आदर्श उन्हें चढ़ा दूँ।'' आगे चलकर द्विवेदी जी कहते हैं- ''जो कालिदास के काम आया हो, उसे ज्यादा इज्जत मिलनी चाहिए। मिली कम है। पर इज्जत तो मसीब की बात है।' इसके समानान्तर वे रहीम को रखते हैं। रहीम को भी जो स्थान मिलना चाहिए था नहीं मिला। कूट्ज के फूल को भी वह सम्मान नहीं मिला, जिसके योग्य वह है। इस स्थान पर सहज भाव से हजारी प्रसाद द्विवेदी एक शुद्ध सत्य को सहजता के साथ रख देते हैं। 'लेकिन दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है।'

द्विवेदी जी भाषाशास्त्री है, फलत: कूट्ज शब्द का ऐतिहासिक संबंध, उसकी प्राचीनता, उसकी व्युत्पत्ति, उसका भाषा परिवार, उसके विविध आयामों पर शास्त्रोक्त मीमांसा करने के पश्चात् वे पुन: प्रकृति लालित्य के मध्य कूट्ज की प्रतिष्ठा करते हुए प्रतीत होते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी सम्पूर्ण आत्मीयता के साथ कूट्ज को आदर्श चिंतन के प्रवक्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। भाषा, भाव और बोध के लालित्य के रूप में हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध कूट्ज की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं- यथा- 'मगर कूट्ज है कि संस्कृत की निरन्तर स्फीयमान शब्द राशि में जो जमके बैठा सो बैठा ही है। चारों ओर कुपित यमराज के दारूण विश्वास के समान धधकती लू में यह हरा भी है और भरा भी है, दुर्जन के चित्त से भी अधिक कठोर पाषण की कारा में रूद्ध अज्ञात जलस्त्रोत से बरबस रस खींचकर सरस बना हुआ है। और मूर्ख के मस्तिष्क से भी अधिक सूने गिरि कांतर में भी ऐसा मस्त बना है कि ईर्ष्या होती है। कितनी कठिन जीवनी शक्ति है।' इसके पश्चात् हजारी प्रसाद द्विवेदी कूट्ज को जीवनी शक्ति के महत्तम प्रतीक के रूप में विनियोजित कर उसके माध्यम से अपनी सामाजिक चेतना सम्बन्धी विचार-सरणि को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। यह ललित-निबन्ध द्विवेदी जी की सामाजिक मान्यताओं का विचार-कोष है। यह निबन्ध हृदयानुभूति का विचार कोष भी है।

ललित निबन्ध में आत्मीयता और आडम्बरहीनता का विशेष स्थान है। कूट्ज निबन्ध में कूट्ज के साथ लेखक की आत्मीयता पाठक की आत्मीयता बन जाती है। इसमें शास्त्रीयता के साथ आत्मीयता का समन्वय होता है। बुद्धि और हृदय इस प्रकार के निबन्धों में अलग-अलग राह पर नहीं चलते हैं। उनमें एकात्मकता रहती है। इसी कारण ललित निबन्धों की व्यंजना रागाश्रित व्यंजना होती है। कूट्ज इस रागाश्रित व्यंजना का अभिनव रूप है। यह रागाश्रित व्यंजना पाठक को आकर्षित करती है और आत्मीयता से बाँध लेती है। पाठक, लेखक और निबन्ध तीनों ही एकतान होकर रचना को अपने में समाहित करते हैं और स्वयं रचना में समाहित होते हैं। लेखक के भाव और विचार पाठक को प्रभावित करते हैं। आडम्बर साहित्य का गुण नहीं दुर्गुण है। ललित निबन्ध इस आडम्बर के आवरण को अस्वीकार कर सहजता में ही सम्पूर्ण होता है। यदि एक प्रकार से देखा जाये तो कूट्ज का उत्पत्ति-स्थल, रेतीले पहाड़ों के कठिनतम पर्यावरण के मध्य उसका जन्म लेना और उसी परिवेश में पुष्पित पल्लवित होना, सब कुछ एक कहानी जैसा लगता है। एक ऐसी कथा जिसका नायक असीम जीवनी शक्ति से जीवंत भी है। इसका नायकत्व जीवन की कला भी जानता है। उसमें रस भी है और आदर्श भी। हजारी प्रसाद द्विवेदी उसे नाना प्रकार के विशेषणों से संबोधित करते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी आत्मीय एवं घनिष्ठ भाव से कूट्ज से जुड़ जाते हैं। इस निबन्ध से गुजरते हुए ऐसा लगता है जैसे द्विवेदी जी ने उसकी काया में ही प्रवेश कर लिया है। इसको ही 'परकाय प्रवेश' कहते हैं। यदि ऐसा न होता तो निबन्ध बाह्य विववण देकर ही समाप्त

हो जाता। ललित निबन्ध का वैशिष्ट्य अन्तरंग होने में है। कूट्ज के साथ यह अंतरंगता कूट्ज निबन्ध का प्राण है। यह सखा है, मनस्वी मित्र है, गाढ़े का साथी है। हजारी प्रसाद द्विवेदी कूट्ज के साथ एकात्म हो जाते हैं। विवरण तो कोई भी सामान्य लेखक दे सकता है, पर विषय-वस्तु के साथ एकात्म स्थापित करना महान् लेखक के द्वारा ही हो सकता है। इस एकात्म भाव के कारण कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत होता है कि कूट्ज के भीतर से हजारी प्रसाद द्विवेदी की वाणी का झरना प्रवाहित हो रहा है। विषय से अभिन्नता ललित निबन्ध के लिए आवश्यक है। यह एकत्व और आत्मीयता होने पर वस्तु की अंतरंगता स्पष्ट होती है। हृदय का हृदय से विनियोग होता है। यह विनियोग चिन्तन के प्रवाह को प्रस्तुत करता है, भाषा को गतिमान बनाता है, आत्मीयता से भर देता है, शिल्प को वैभव प्रदान करता है और भाषा को सरस और सारगर्भित बनाता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी कूट्ज के जीवन को शानदार ढंग से चित्रित करते हैं। द्विवेदी जी कूट्ज की रचना करते हैं और उनकी अपनी दृष्टि कूट्ज में रम जाती है। इस रम्य दृष्टि का आलेखन एक चमत्कार पैदा करता है। पूरे निबन्ध में कूट्ज से जुड़कर हजारी प्रसाद द्विवेदी की वैयक्तिक दृष्टि कभी भाव, कभी उपदेश और कभी जीवनादर्श के रूप में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। कूट्ज द्वन्द्वातीत है। अलमस्त है। कूट्ज मुझे 'अनादिकाल से जानता है।' मैं भी कूट्ज को पहचानता हूँ 'अवश्य पहचानता हूँ।' आदि कथन हजारी प्रसाद द्विवेदी के एकात्मता और भाव को स्पष्ट करते हैं। यह कूट्ज 'चिर परिचित दोस्त' है। हजारी प्रसाद द्विवेदी इस चिर-परिचित दोस्त से जी भर कर बात करते हैं। जीवन जीना चाहते हो तो 'कठोर पाषण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अनपा भोग्य संग्रह करो, वायुमंडल को चूसकर, झंझा-तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूमकर अवकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लो। कूट्ज का यही उपदेश है। पाषाण, पाताल, वायु और आकाश से क्या और कैसे लेना, यह कूट्ज का उपदेश नहीं हैं। यह तो हजारी प्रसाद द्विवेदी की अपनी दृष्टि है अपनी चेतना है, अपना दर्शन अथवा भारतीय चिंतन की थाती है, जो कूट्ज के माध्यम से अभिव्यक्ति पा रही है। इसी प्रकार 'मैं' का 'सबके लिए' सबकुछ दे देना और यह भी 'दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर सर्व के लिए निछावर कर देना' भी द्विवेदी जी के चिन्तन, दर्शन और दृष्टि का ही रूप है।

अन्त में भी, सुखी कौन है का यह उत्तर कि जिसका मन वश में है, वही सुखी है, यह कहना भी हजारी प्रसाद द्विवेदी के सोच का ही प्रमाण है, जो इस निबन्ध में ही नहीं, उनके द्वारा रचित अन्यान्य साहित्य विधाओं में भी अभिव्यक्त हुआ है। ललित निबन्ध में यह वैयक्तिक दृष्टि सबके लिए प्रयुक्त होती है। ललित निबन्ध में सहजता, सरसता और प्रवाह का होना भी आवश्यक है कूट्ज निबन्ध में ये सभी गुण विद्यमान है।

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. "भारतीय साहित्य में और इसीलिए जीवन में भी इस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीय व्यापार हैं। ऐसा तो कोई नहीं कह सकेगा कि कालिदास के पूर्व भारत वर्ष में इस पुष्प का कोई नाम ही नहीं जानता था, परन्तु कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है, वह पहले कहाँ थी। उस प्रवेश में नववधू के प्रवेश की भाँति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है।"

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अशोक के फूल निबन्ध संग्रह के अशोक के फूल शीर्षक निबन्ध से लिया है। इसमें लेखक ने अशोक के पुष्प की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या—आचार्य द्विवेदी जी ने स्पष्टता किया है कि कमल, पाटल और आम्र मंजरी भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। उन्हीं के समान अशोक का भी अपना विशेष महत्व है, किन्तु भारतीय जनजीवन में इसके प्रवेश और निष्क्रम की अपनी ही एक कथा है। यह कथा हमारी संस्कृति के आरोह-अवरोह और संघर्षों के कारण हुए क्रमिक परिवर्तन की कथा है। सर्वप्रथम कालिदास के ग्रंथों में अशोक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ, किन्तु इससे पूर्व इस पुष्प के बारे में कोई जानता ही नहीं था, ऐसी बात नहीं है, ईस्वी सन् के आसपास पौराणिक कथाओं में अशोक के फूल का अस्तित्व है। यह दूसरी बात है कि तत्कालीन साहित्य में उसे वह सम्मान प्राप्त न हो सका, जो कि कालिदास के साहित्य में मिलता है। कालिदास ने अपनी कृतियों में अशोक के फूल के सौन्दर्य और मनोहरता का वर्णन इस रूप में किया है कि वह पुष्पों के मध्य उच्चासन पा गया। कालिदास की सौन्दर्यान्वेषी दृष्टि ने इसकी शोभा और सुन्दरता को पहचाना। उनकी दृष्टि में पतिगृह में प्रथम बार प्रवेश करती नववधू की जो शोभा होती है, उसमें जो एक प्रकार की गम्भीरता होती है, उसके रूप में जो पवित्रता और कोमलता है, वैसी ही शोभा, गम्भीरता, पवित्रता और कोमलता अशोक के पुष्प में भी है। यह बात उनके अतिरिक्त अन्य कवि नहीं देख पाये और इसलिए उन्होंने इस पुष्प का नाम ही नहीं लिया।

विशेष—खड़ी बोली, लक्षणा, शब्द शक्ति, प्रसाद गुण।

2. "संघर्षों से मनुष्य ने कई शक्ति पायी है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा) वह गंगा की आबाधित-अनाह धारा के समान सब कुछ हजम करने के बाद भी पवित्र है। सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षणभर बाधा उपस्थित करता है, कर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब कुछ बह जाते हैं, जितना कुछ इस जीवन शक्ति को समर्थ बनाता है, उतना उसका अंश बन जाता है, बाकी फेंक दिया जाता है।"

प्रसंग—प्रस्तुत उद्धरण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित अशोक के फूल निबन्ध संग्रह में से लिया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कहना है कि अशोक का वृक्ष चाहे जितना मनोहर हो, किन्तु सामन्त सभ्यता के उखड़ जाने से मदनोत्सव की धूम मिट गयी और उसका स्थान लिया भूतों, पीरों तथा काली दुर्गा ने। सच यह है कि काल की कराल धारा के आगे न सभ्यता टिकती है न संस्कृति, लेकिन अगर टिक पाती है, तो वह मनुष्य की जीवनी शक्ति।

व्याख्या—सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि मनुष्य की जीवनेच्छा ही प्रमुख है। जीवित रहने के लिए उसने हमेशा संघर्ष किया है और हर संघर्ष के उपरान्त उसे नयी शक्ति मिली है। आज के समाज का जो रूप हमारे सामने है, वह ज्ञात-अज्ञात रूप में इस तथ्य का साक्षी है कि मनुष्य ने सदैव ही अनुपयोगी तत्वों का त्याग किया तथा उपयोगी तत्वों को ग्रहण किया। किसी भी देश और जाति की शुद्ध संस्कृति की जो लोग बात करते हैं, वह सब बेमानी है, क्योंकि संस्कृति का विकास ग्रहण और त्याग

के सिद्धान्त पर हुआ है। यदि अनुसंधान किया जाये, तो हर संस्कृति में दूसरी संस्कृति से मिले तत्वों एवं प्रभावों को खोजा जा सकता है और उसके मूल रूप को देखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में शुद्धता की बात करना व्यर्थ है। इस संसार में शुद्धता देखनी है, तो वह मनुष्य की जीवित रहने की इच्छा में देखी जा सकती है, जिसने धर्म आचार-विचार, रीति-नीति आदि के बन्धन को स्वीकार नहीं किया। वह गंगा की धारा के समान सभी में बड़े-बड़े नदी-तालाबों की गन्दगी को समेटकर हजम कर लेती है और शुद्ध एवं पवित्र बनी रहती है। इसी प्रकार मनुष्य के जीने की इच्छा ने अन्य संस्कृतियों ग्रहणीय को ग्रहण किया और अपनी संस्कृति का उज्ज्वल रूप प्रदान किया। अपनी सभ्यता और अपनी संस्कृति का मोह मनुष्य को थोड़ी देर रोका पाता है। धर्म, आचार-विचार, संस्कार भी थोड़ी देर के लिए मनुष्य को रोक पाते हैं, किन्तु जब जीने की इच्छा उग्र हो उठती है, तो ये सब बाधाएँ स्वयं ही हट जाती हैं। इस स्थिति में जितना मनुष्य के जीने के लिए आवश्यक होता है, वह बच जाता है, शेष समाप्त हो जाता है या कूड़े की भाँति फेंक दिया जाता है।

विशेष—लक्षणा, खड़ी बोली का प्रयोग।

3. **"धन्य हो महाकाल, तुमने कितनी बार मदनदेवता का गर्व-खंडन किया है, धर्मराज के कारागार में क्रान्ति मचायी है, यमराज के निर्दय कारुण्य को पी लिया है, विधाता के सर्व कर्तव्य के अभिमान को चूर्ण किया है। आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार तथा सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़ता है, उसमें का कितना भाग तुम्हारे कुंडनृत्य से ध्वस्त हो जायेगा, कौन जानता है। मनुष्य की जीवनधारा फिर भी पुरानी चाल से चलती जायेगी।"**

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियाँ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित अशोक के फूल निबन्ध संग्रह के अशोक के फूल निबन्ध से ली गयी है। मनुष्य की जीने की इच्छा धारा के प्रखर धारा के आगे सभ्यता, संस्कृति, धर्म, आचार-विचार सभी ने समर्पण किया है और अनुपयोगी तत्वों को छोड़ना पड़ा है। इसी में अशोक का वृक्ष का महत्व उभरा और दब गया।

व्याख्या—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है, हे सम्पूर्ण संसार के नियंता महाकाल तुम धन्य हो। महाकाल का चक्र निरन्तर घूम रहा है और इसके कारण सभ्यता, संस्कृति, धर्म, आचार-विचार दैनिक घटनाओं में निरन्तर उत्थान-पतन होता रहता है। इस उत्थान-पतन की बात को महाकाल के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। इसलिए लेखक ने महाकाल का साधुवाद किया है। उसी के कारण मदनोत्सव के देवता मदन देव (कामदेव) का कितनी ही बार गर्व-खंडन हुआ है। (कहीं शिव के रूप में, बुद्ध के रूप में, साधु और ऋषि के रूप में, काल ने कामदेव के घमंड को चूर-चूर किया है) धर्मराज ने सभी पुण्यात्माओं को अपने स्वर्ग रूपी कारागार में बन्दी बना लिया। महाकाल के कारण जो भी अपने कर्तव्य पथ से विमुख हुआ, उसे संसार रूपी नरक की यातना भोगने के लिए भेज दिया गया। यमराज अपनी निर्दयता के लिए प्रसिद्ध है, पर महाकाल ने उसकी निर्दयता को भी घोलकर पी लिया, अर्थात् महाकाल के हाथों से भी नहीं बच सके। इसी प्रकार ब्रह्मा को संसार का नियन्ता होने का बड़ा घमंड था, किन्तु महाकाल ने उसके द्वारा की गयी निर्मितियों को ध्वस्त कर दिया और उनके अभिमान को चूर-चूर कर दिया।

इसीलिए आज का मानव जो अपनी सभ्यता, संस्कृति के मोह के कारण ही चिपका बैठा है तथा अपने धर्म आचार-विचार तथा सत्यनिष्ठा के इस मोह को छोड़ना नहीं चाहता तथा इसी कारण उसके जीवन में जड़ता व्याप्त होती जा रही है। इस सबको हे महाकाल तुम कब कहाँ

और कैसे ध्वस्त कर दोगे, कोई नहीं जानता। यह ठीक है कि ये सब तुम्हारी पकड़ में हैं और रहेंगे; किन्तु इससे पृथक् मनुष्य को जो जीवनधारा है, वह निरन्तर बहती जायेगी, उसकी गति अबाध है, वह इन ध्वन्स और निर्माण के मध्य भी अपने अस्तित्व को बनाये रखेगी।

विशेष—महाकाल का कार्य, खड़ी बोली, लक्षणा, व्यंजना, शब्द शक्ति, प्रसाद गुण।

4. "नाम इसलिए बड़ा नहीं है कि वह नाम है।.... मेरा मन नाम के लिए व्याकुल है, समाज द्वारा स्वीकृत, इतिहास द्वारा प्रमाणित समष्टि-मानव की चित्त-गंगा में स्नान!"

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध निबन्धकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'कुट्ज' नामक निबन्ध से अवथरित है। लेखक ने 'कुट्ज' पौधे का नाम स्मरण न होने पर नाम की महत्ता का परिचय इस अंश मे दिया है।

व्याख्या—नाम केवल नाम के लिए ही बड़ा नहीं होता है, बल्कि इसलिए महत्वपूर्ण होता है कि उसे सामाजिक स्वीकृति मिलती है। रूप से व्यक्ति की सत्यता का ज्ञान होता है, जबकि नाम से समाज की सत्यता का नाम वास्तव में समाज द्वारा स्वीकृत प्रमाण पत्र है। आधुनिक शिक्षित व्यक्ति जिसे सामाजिक सम्बन्ध और विभाग कहते हैं। पर लेखक का मन नाम जानने के लिए बैचेन है, और नाम भी ऐसा हो जो समाज द्वारा स्वीकृत हो, इतिहास द्वारा प्रमाणित हो और सम्पूर्ण मानव-जाति के मन को शान्ति प्रदान करने वाला हो।

विशेष—किसी वस्तु या व्यक्ति का नामकरण सामाजिक स्वीकृति का परिचायक हुआ करता है।

5. गोया कुटज अदना-सा 'बिरछ' हो।....फिर बागों में गिरीकूट बिहारी कुटज का क्या तुक है?

प्रसंग—पूर्वानुसार।

व्याख्या—रहीमदासजी ने कुट्ज के सम्बन्ध में खराब मूड में जो गलत बयानी की है उसी पर टीका-टिप्पणी करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कह रहे हैं- रहीमदास जी ने तो ऐसे लिख दिया जैसे कुट्ज कोई तुच्छ वृक्ष हो। यदि कुट्ज में छाँव नहीं है तो क्या हुआ। क्या फूलों के कारण उसका महत्व नहीं है? छाया के लिए तो उसे सम्मान देना ही चाहिए। परन्तु कभी-कभी कवियों की मानसिक दशा ठीक नहीं होती हैं और वे ऐसी स्थिति में किसी के सम्बन्ध में त्रटिपूर्ण वर्णन कर जाते हैं। कुट्ज की तुलना बागों के वृक्षों से कोई महत्व नहीं रखती है, क्योंकि कुट्ज तो पर्वतों पर उगने वाला वृक्ष है।

विशेष—रहीमदास की कूट्ज पर गलत-बयानी पर लेखक ने उनकी मनोदशा और कूट्ज के महत्व को बड़े सुन्दर भावों और शब्दों द्वारा व्यक्त किया है।

6. यह तो मेरे सामने कूट्ज का लहराता पौधा खड़ा है यह नाम और रूप दोनों में अपनी अपराजेय जीवन-शक्ति की घोषणा कर रहा है....मगर कूट्ज है कि संस्कृत की निरन्तर स्फीयमान शब्दराशि में जो जमके बैठा सो बैठा ही है।

प्रसंग—पूर्वानुसार।

व्याख्या—कूट्ज का वृक्ष नाम और रूप दोनों में यथानाम तथागुण है। उसके नाम तथा रूप दोनों में जीवन की कभी न पराजित होने वाली शक्ति है। वह कठोर पर्वत शिलाओं पर भीषण गर्मी को सहकर जीवित रहता है और मुस्कराता है इसलिए वह इतना आकर्षक है। उसका नाम हजारों वर्षों से जीवित है। अनेक वृक्षों के नाम वर्षों से आये और चले गये। संसार उन वृक्षों के नाम को भूल गया, परन्तु कूट्ज का वृक्ष संस्कृत साहित्य में ऐसा जम

गया है कि वह हटने का नाम ही नहीं लेता है। अधिकांश प्रसिद्ध संस्कृत कवियों ने कूट्ज का गुणगान किया है।

विशेष—(1) कूट्ज में अपराजेय जीवनी शक्ति है।

(2) संस्कृत साहित्य में उसका प्रयोग और स्थान स्तुत्य है।

7. दुरन्त जीवन-शक्ति है! कठिन उपदेश है। जीना भी एक कला है।...सारा संसार अपने मतलब के लिए ही तो जी रहा है।

प्रसंग—पूर्वानुसार।

व्याख्या—प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने कूट्ज का वर्णन करते हुए उसको महान प्रेरणाप्रद बतलाया है। उसका कठोर, निर्भीक और परार्थ जीवन का उत्सर्ग मनुष्यों को आदर्श प्रेरणा इन गुणों के प्रति दे रहा है। कूट्ज के दार्शनिक पहलू पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि कूट्ज मनुष्य को प्रत्येक स्थिति में उल्लासित करने की प्रेरणा देता है। मानव जीवन अमूल्य है, उसमें अपार शक्ति छिपी है। कूट्ज के समान जीवन में गुणों को धारण करना एक कठिन उपदेश है। जीवन एक कला है। उसका व्यावहारिक महत्व है, पर कला के साथ ही जीवन एक तपस्या भी है। सच्चा जीवन वही है जो सत्य निष्ठा, पूर्ण उत्साह एवं नवीन उल्लास के साथ जीता है। जीवन की सार्थकता निर्भयतापूर्वक उत्तरोत्तर विकास में है। मानव जीवन ऐसा हो जो जीवन में संजीवता की स्थापना करने वाला हो। जीवन में सरसता का संचार करने वाला हो, जीने की सार्थकता जीवित रहने में ही नहीं वरन् दूसरों की सेवा और सहायता में भी पर आधुनिक युग में सम्पूर्ण संसार अपने स्वार्थवश जीवित है। संसार के प्रत्येक कार्य-कला, सम्बन्ध आदि सभी स्वार्थ पर निर्भर है।

विशेष—(1) कूट्ज अपार जीवन-शक्ति की प्रेरणा का स्त्रोत है।

(2) कूट्ज जीवन को कला और तपस्या के समान बतलाया है।

(3) जीवन का अर्थ् जीवित रहना नहीं, अपितु सजीवता और उसकी सरसता है।

(4) संसार अपने स्वार्थवश जीवित है। ■

8. भीतर की जिजीविषा-जीते रहने की प्रचण्ड इच्छा-...स्वार्थ से भी बड़ी कोई-न-कोई बात अवश्य है, जिजीविषा से भी प्रचण्ड कोई-न-कोई शक्ति अवश्य है।

प्रसंग—पूर्वानुसार।

व्याख्या—याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपनी पत्नी को समझाया कि संसार के सब क्रियाकलाप, व्यापार और सम्बन्ध स्वार्थ के कारण हैं। उसी के सम्बन्ध में लेखक अपना भिन्न दृष्टिकोण प्रकट करता हुआ कहता है- मानव मन में जीने की एक प्रबल इच्छा हे। यह कथन सत्य है पर यही सब कुछ नहीं है, क्योंकि महापुरुषों द्वारा दिए गए महान् उपदेश और समाज द्वारा बनाये ये विभिन्न दल अपनी कुछ सत्ता और विशेषता रखते हैं। आज संसार में जो शत्रु दमन का अभिनय हो रहा है, देशोद्धार के विभिन्न प्रकार के नारे लगाये जा रहे हैं, साहित्य और कला का जो गुणगान किया जा रहा है- यह सब क्या असत्य है, दिखावा मात्र है। लेकिन मनुष्य के मन में कोई शक्ति छिपी हुई यह संदेश दे रही है कि ऐसा सोचना कि सम्पूर्ण कार्यकलाप स्वार्थ प्रेरित और अपना उल्लू सीधा करने के लिए हो रहे हैं, गलत ढंग से विचार करना है। स्वार्थ से भी श्रेष्ठ कोई न कोई बात या शक्ति अवश्य है।

विशेष—मानव मन में जीवित रहने की प्रबल इच्छा अवश्य है, पर मानव के सम्पूर्ण कार्य-व्यापार स्वार्थ प्रेरित न होकर किसी अदृश्य शक्ति से प्रेरित भी है। इस प्रकार स्वार्थ ही सब कुछ नहीं है। ■

इकाई-3

मुक्तिबोध- एक साहित्यिक की डायरी, अज्ञेय- अरे यायावर रहेगा याद, हरिवंश राय बच्चन- क्या भूलूँ क्या याद करूँ

प्रश्न 9. डायरी शैली के वैशिष्ट्य के आलोक में "एक साहित्यिक डायरी" की समीक्षा कीजिए।

अथवा

मुक्तिबोध कवि के साथ-साथ विचारवान गद्य लेखक और समीक्षक है।" इसे एक साहित्यिक की डायरी के निबन्धों के प्रकाश में सिद्ध कीजिए।

अथवा

डायरी विधा की दृष्टि से "एक साहित्यिक की डायरी" का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर-

एक साहित्यिक की डायरी की समीक्षा

मुक्तिबोध की "एक साहित्यिक की डायरी" की शैली साहित्यिक आत्मनिरीक्षण और अस्तित्ववादी दर्शन का एक आकर्षक अंतर्संबंध प्रस्तुत करती है। इस व्यापक डायरी में, मुक्तिबोध एक साहित्यिक व्यक्ति के मानस में उतरते हैं, रचनात्मक प्रक्रिया, अस्तित्वगत दुविधाओं और मानव अनुभव की जटिलताओं में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। एक लेखक की आन्तरिक दुनिया की सूक्ष्म जाँच के माध्यम से, मुक्तिबोध पाठकों को कला की प्रकृति, साहित्य के उद्देश्य और एक बेतुकी दुनिया में अर्थ की खोज पर विचार करने के लिए आमंत्रित करते हैं।

अपने मूल में, "साहित्यिक की डायरी" मानव स्थिति की बहुमुखी प्रकृति को प्रतिबिम्बित करने वाले दर्पण के रूप में कार्य करती है। मुक्तिबोध आत्मनिरीक्षण अंशों, दार्शनिक चिन्तन और मार्मिक टिप्पणियों के माध्यम से एक लेखक के जीवन में निहित संघर्षों, आकांक्षाओं और विरोधाभासों को उजागर करते हैं। वह रचनात्मक प्रक्रिया में व्याप्त अस्तित्व संबंधी गुस्से का सामना करते हुए पहचान, अलगाव और प्रामाणिकता के सवालों से जूझता है। डायरी प्रारूप के माध्यम से, मुक्तिबोध अन्तरंग आत्म-प्रतिबिम्ब के लिए एक जगह बनाते हैं, जहाँ नायक अपने आन्तरिक भय, इच्छाओं और अनिश्चितताओं का सामना करता है।

"साहित्यिक की डायरी" में खोजे गए केन्द्रीय विषयों में से एक व्यक्तित्व और अनुरूपता के बीच तनाव है। मुक्तिबोध साहित्यिक दुनिया की जटिलताओं पर प्रकाश डालते हैं, जहाँ रचनात्मक अभिव्यक्ति अक्सर सामाजिक अपेक्षाओं और मानदंडों से टकराती है। नायक वास्तविक आत्म-अभिव्यक्ति के लिए तरसते हुए स्थापित परम्पराओं के अनुरूप होने के दबाव से जूझता है। इस अन्वेषण के माध्यम से, मुक्तिबोध कलात्मक अखण्डता के लिए संघर्ष और नवाचार और परम्परा के बीच अनिश्चित सन्तुलन को पार करने की चुनौतियों पर प्रकाश डालते हैं।

इसके अलावा, मुक्तिबोध भाषा की जटिलताओं और मानव चेतना को आकार देने में इसकी भूमिका पर प्रकाश डालते हैं। भाषाई अभिव्यक्ति की बारीकियों से गहराई से परिचित एक कवि के रूप में, वह भावनाओं को जगाने, विचार को उकसाने और लौकिक सीमाओं को पार करने के लिए शब्दों की शक्ति पर विचार करते हैं। रचनात्मक प्रक्रिया पर

आत्मनिरीक्षण चिन्तन के माध्यम से, मुक्तिबोध पाठकों को काव्य अभिव्यक्ति की परिवर्तनकारी क्षमता पर प्रकाश डालते हुए, भाषा, पहचान और वास्तविकता के बीच सम्बन्धों पर विचार करने के लिए आमंत्रित करते हैं।

इसके अलावा, "एक साहित्यिक की डायरी" रचनात्मकता के अस्तित्वगत आयामों में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। मुक्तिबोध अस्तित्व के बुनियादी सवालों से जूझते हैं, नश्वरता की अनिवार्यता, अर्थ की अस्पष्टता और मानव अस्तित्व की बेतुकीता का सामना करते हैं। साहित्यिक आत्मनिरीक्षण के लेंस के माध्यम से, वह अस्तित्वगत शून्यता के बीच सांत्वना की तलाश करते हुए, चेतना के भूलभुलैया पथों को नेविगेट करता है। ऐसा करते हुए, मुक्तिबोध पाठकों को अपनी अस्तित्व सम्बन्धी चिन्ताओं का सामना करने के लिए आमंत्रित करते हैं और उन्हें जीवन की अंतर्निहित अनिश्चितताओं के सामने अर्थ और उद्देश्य खोजने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

अपने अस्तित्व सम्बन्धी विषयों के अलावा, "एक साहित्यिक की डायरी" कला के वस्तुकरण और साहित्य के व्यवसायीकरण की आलोचना के रूप में भी काम करती है। मुक्तिबोध उपभोक्तावादी समाज में कलात्मक अखंडता के ह्रास पर दुःख व्यक्त करते हैं, जहाँ रचनात्मकता अक्सर एक विपणन योग्य वस्तु बनकर रह जाती है। साहित्यिक प्रतिष्ठान के साथ नायक के मोहभंग के माध्यम से, मुक्तिबोध ने कलात्मक स्वायत्तता और आर्थिक बाधाओं के बीच तनाव पर प्रकाश डाला, पाठकों को बढ़ती भौतिकतावादी दुनिया में कला के मूल्य पर पुनर्विचार करने के लिए चुनौती दी।

इसके अलावा, "एक साहित्यिक की डायरी" रचनात्मकता की प्रकृति और सत्य की खोज में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करने के लिए अपनी काल्पनिक सीमाओं को पार करती है। मुक्तिबोध का गद्य गीतात्मक सौन्दर्य और दार्शनिक गहराई से ओतप्रोत है, जो पाठकों को मानव चेतना को आकार देने में साहित्य की भूमिका के बारे में संवाद में शामिल होने के लिए आमंत्रित करता है। नायक की आत्मनिरीक्षण यात्रा के माध्यम से, मुक्तिबोध मानवीय अनुभव को उजागर करने और व्यक्तिगत व्यक्तिपरकता की सीमाओं को पार करने के लिए साहित्य की परिवर्तनकारी शक्ति को रेखांकित करते हैं।

अन्त में, मुक्तिबोध की "एक साहित्यिक की डायरी" की शैली अस्तित्ववादी दर्शन की स्थायी प्रासंगिकता और साहित्य की परिवर्तनकारी क्षमता का एक प्रमाण है। रचनात्मक प्रक्रिया, अस्तित्वगत दुविधाओं और सामाजिक बाधाओं की अपनी सूक्ष्म खोज के माध्यम से, मुक्तिबोध की डायरी पाठकों को आत्म-खोज और दार्शनिक जाँच की गहन यात्रा पर आमंत्रित करती है। हिन्दी साहित्य में एक मौलिक कृति के रूप में, "एक साहित्यिक की डायरी" पाठकों को मानव अस्तित्व की जटिलताओं पर विचार करने के लिए प्रेरित करती रहती है।

प्रश्न 9. (अ) मुक्तिबोध की डायरी 'तीसरा क्षण' की समीक्षा कीजिए। अथवा कला सृजन के तीनों क्षणों का महत्व एवं पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन कीजिए।

उत्तर– 'तीसरा क्षण' मुक्तिबोध की डायरी का प्रमुख अंश है। इसमें अज्ञेयजी ने अपने मित्र केशव के अन्तरंग सम्बन्धों का वर्णन किया है। इस डायरी का अंश संवेदना की सृष्टि करता हुआ वातावरण का सजीव चित्र प्रस्तुत कर देता है, केशव की प्रकृति का संस्मरणात्मक

रेखाचित्र प्रस्तुत हो जाता है। भाषा की सरलता और सजीवता ने इस डायरी के अंश को बहुत रोचक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है।

केशव प्राय: इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना और कुण्डलिनी चक्र की बात करता था। लेखक की समझ में कुछ नहीं आता था। मुक्तिबोध केशव के व्यक्तित्व का रेखाचित्र निम्न प्रकार प्रस्तुत करते हैं- "केशव का सिर पीछे से बहुत बड़ा था, आगे की ओर लम्बा और विस्तृत था, माथा साधारण और घनी-घनी भौहों के नीचे काली आँखें, बहुत गहरी मानो दो कुएँ पुतली की काँच से मढ़े हों, यह भी लगता है कि उसकी आँखें तलघर हैं। यह भी महसूस होता है कि उसकी आँखों के नीचे कोई दूसरी आँखें और जमी हुई हैं। आँखों के बीच नाक की शुरूआत पर घनी-घनी भौहों की दोनों पट्टियाँ नीचे झुककर मिल जाती थीं। कभी-कभी नाई द्वारा वह मिलन-स्थल पर भौहों के बाल कटवा लेता, लेकिन उनके रोएँ फिर उग आते। आँखों के नीचे फीका पीला लम्बा शिथिल और उकताया हुआ थका चेहरा।"

यह केशव के व्यक्तित्व का यथार्थ रेखाचित्र है। मुक्तिबोध केशव के साथ अरण्य प्रदेश घूमते, केशव के साथ उन्हें अनेकानेक अनुभव प्राप्त हुए। एक लम्बे अन्तराल तक केशव और मुक्तिबोध अलग रहते हैं। लौटने पर केशव बदला हुआ लगता है।

केशव के लौटकर आने पर लेखन और लेखन-कला पर मुक्तिबोध का विवाद चलता है। केशव चला जाता है और बहुत दिनों पश्चात् उसका थीसिस के आकार का पत्र आता है जिसमें फैण्टेसी की कला का विस्तार से विश्लेषण होता है। फैण्टेसी की टेकनीक, शिल्प और रचना प्रक्रिया पर सम्यक् विचार सामने आते हैं। केशव विदेश से फैन्टेसी के सम्बन्ध में एक लम्बा पत्र लिखता है। इसमें फैन्टेसी टेकनीक की विवेचना होती है- "कला का पहला क्षण है जीवन, उत्कृष्ट जीवन-क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का कसते-दुखते हुए मूलों से पृथक् हो जाना और एक फैन्टेसी का रूप धारण कर लेना। मानो वह फैन्टेसी अपनी आँखों के सामने हो रही है। तीसरा और अन्तिम क्षण है, इस फैन्टेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का प्रारम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णवस्था तक की गतिशीलता शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है, वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह में वह फैन्टेसी अनवरत रूप से विकसित-परिवर्तित होती हुई आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार वह फैन्टेसी अपने मूल रूप का बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण करती है।" ■

प्रश्न 10. "कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी" डायरी के आधार पर मुक्तिबोध की काव्य-धारणा की समीक्षा कीजिए।

अथवा

कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी का क्या तात्पर्य है? मुक्तिबोध की पाठ्य डायरी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी का तात्पर्य—मुक्तिबोध ने कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी को इन शब्दों में परिभाषित किया है- "व्यक्तिगत ईमानदारी वह है जहाँ लेखक का वस्तु का वस्तु मूलक आकलन करते हुए उस आकलन के आधार पर वस्तु तत्व के प्रति यही मानसिक प्रतिक्रिया करे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसकी प्रतिक्रिया में सत्यत्व का आविर्भाव नहीं होगा।"

कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी नामक मुक्तिबोध की डायरी में मुक्तिबोध व यशराजजी के बीच वार्तालाप को व्यक्त किया गया है। मुक्तिबोध ने अपनी इस रचना में कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी के सम्बन्ध में अपनी मान्यता और विचार को अभिव्यक्त किया है। यहाँ यह बताना जरूरी होगा कि यशराजजी पेशे से वकील हैं।

मुक्तिबोध दृढ़ता के साथ कहते हैं- "डायरी मेरी व्यक्तिगत ईमानदारी का सबूत है।" यशराज मुक्तिबोध की व्यक्तिगत ईमानदारी पर बारम्बार प्रश्नचिन्ह लगाता है। वह कहता है- "जो भाव या विचार जिस स्वरूप को लेकर जिस मात्रा में और जिस अनुपात में प्रस्तुत हुआ है, उसका उसी स्वरूप में एकदम प्रस्तुत करना एकदम एकांकी है। महत्व की बात यह है कि वह भाव या वह विचार किसी वस्तु-तथ्य से सुसंगत है या नहीं। व्यक्तिगत ईमानदारी का नारा देने वाले लोग असल में, भाव या विचार के सिर्फ सब्जेक्टिव पहलू-केवल आत्म-पक्ष के चित्रण को ही महत्व देकर उसे 'भाव-सत्य या आत्म-सत्य' की उपाधि देते हैं, किन्तु भाव पर विचार का एक ऑब्जेक्टिव पहलू अर्थात् वस्तुपरक पक्ष भी होता है। आजकल लेखन-कार्य में आत्मपरक पक्ष को महत्व देकर वस्तुपरक पक्ष की उपेक्षा की जाती है। चित्रण करते समय आत्मपरक पक्ष को प्रधानता दी जाती है। वस्तुपरक पक्ष के इस रवैये का असर टेकनीक पर पड़ता है।

आगे यशराज स्पष्ट करता है कि मध्ययुगीन भारतीय काव्य में कुछ महत्वपूर्ण अपवादों को छोड़ प्रधान प्रवृत्ति वस्तुपक्ष के वर्णन की ओर ही अधिक रही। इस प्रवृत्ति ने आत्मपक्ष को गौण स्थान दिया। नये छायावादी युग ने आत्मपक्ष को ही प्रधान स्थान दिया और वस्तुपक्ष को गौण।

काव्य की प्रवृत्ति तथा शिल्प में आत्मपक्ष और वस्तुपक्ष का समन्वय करना ही उचित है। यशराज के अनुसार मुक्तिबोध की डायरी में व्यक्तिगत ईमानदारी नहीं है, यशराज के अनुसार व्यक्तिगत ईमानदारी वहाँ लक्षित होगी, जहाँ वस्तु का वस्तु मूलक आकलन करते हुए लेखक उस आकलन के आधार पर वस्तु के प्रति सही-सही मानसिक प्रतिक्रिया करे। ■

प्रश्न 10. (अ) श्री गजानन माधव मुक्तिबोध द्वारा लिखित निबन्ध हाशिये पर कुछ नोट्स का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर- मुक्तिबोध कवि ही नहीं कथाकार, निबन्ध-लेखक और समीक्षक भी हैं। आधुनिक हिन्दी कविता को ही उन्होंने गहराई से प्रभावित नहीं किया, वल्कि हिन्दी आलोचना पर भी उनका प्रभाव है। समाज की संरचना और उसे प्रभावित करने वाली विचारधाराओं का प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव और चरित्र को गढ़ने में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। इसे वे अत्यन्त तर्कसम्मत ढंग से अपने लेखन में व्यक्त करते हैं। समाज की गम्भीर समस्याओं को केन्द्र में रखकर उन्होंने जो निबन्ध लिखे हैं, वे एक साहित्यिक को डायरी में संकलित है। साहित्य और समाज के गम्भीर प्रश्नों को सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषित करने की अद्‌भुत क्षमता मुक्तिवोध में थी। 'हाशिये पर कुछ नोट्स' निबन्ध एक साहित्यिक की डायरी में संकलित है। इस निवन्ध में मुक्तिबोध ने मनुष्य और लेखक कर्म का मूल्यांकन करने के आधारभूत सिद्धान्तों पर गम्भीर चर्चा की है।

निबन्ध का सारांश—यहाँ लेखक मुक्तिबोध कुछ लिखने के मूड में हैं, किन्तु क्या लिखा जाये, इसके लिए कुछ अच्छी तरह से विचार नहीं हो पा रहे हैं। लेखक ने विचारों की समानता कमरे से गुजरते हुए व्यक्ति से की है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार कमरे के दरवाजे से गुजरते हुए व्यक्ति अन्दर दिख पड़ते हैं, किन्तु भीतर आने का साहस नहीं करते। भीतर वाले उन्हें अन्दर बुलाते नहीं, शायद उन्हें कमरे में न आना हो, तो ठीक उसी प्रकार विचार कमरे के दरवाजे से झांक जाते हैं। अन्दर क्या है, यह अन्दाज से टटोल जाते हैं, लेकिन भीतर

ना या तो पसन्द नहीं करते या उनमे वैसी हिम्मत नहीं होती। इस तरह के अड़ियल विचारों को ये हृदय में प्रवेश ही नहीं करने देते और इसीलिए वे लिख नहीं पा रहे हैं।

लेखक कहते हैं कि भावना का एक निश्चित रूप होता है। उसमें एक बहुत महीन और बारीक-सा दृष्टिकोण होता है। इस दृष्टिकोण के विषय में लेखक का अनुभव है कि ऐसी दृष्टि उनके मित्र में प्रधान रूप से है। जिस प्रकार ज्वालामुखियों का समुद्र धधकने के बाद एकाएक शान्त और बुझ जाता है, ठीक उसी प्रकार उस मित्र का भी व्यक्तित्व है। उसकी सम्मोहन-शक्ति वास्तव में कुछ ऐसी विलक्षण है कि मन आकर्षित हो जाता है। उसके लिए कुछ बेहद अच्छा काम कर देने के लिए मचल उठता है। फिर भी उस व्यक्ति में कुछ खोट अवश्य है, क्योंकि वह बहुत ही कठोर है। मायावी विद्या में चतुर है। लेखक का आत्मकथन है कि आलोचना की मुख्य प्रवृत्ति होती है कि वह अपने आप में पूर्ण होने के साथ बिल्कुल ही निष्पक्ष और समरूप होती है। आलोचना की एक खास विशेषता यह भी है कि वह निरन्तर बुद्धि से कम, लेकिन भावना के वेग से कार्य करती चलती है। इससे कार्य करती हुई वह आलोचना अपने दिल की छिपी हुई बात को स्वयं ही एक कृत्रिम रूप में ही बड़े ही सजीव ढंग से प्रस्तुत कर देती है। इस प्रकार से चित्रित और प्रस्तुत की हुई चीन बड़ी भयानक और बदशक्ल वैसे ही दिखायी पड़ती है, जैसे किसी बन्दर की रूपाकृति हो। यह तब भी होता है, जब हम यह भली-भाँति जानते और अनुभव करते हैं कि हम सौन्दर्यशील है।

लेखक कहते हैं कि यह सोचना बहुत ही ठीक नहीं होगा कि आलोचना तो केवल बुद्धि से होती है और श्रद्धा का लगाव हृदय से होता है। इसीलिए मार्क्सवादी साहित्य का बहुत कुछ अंश केवल बुद्धि से नहीं, अपितु अंधी श्रद्धा-दृष्टि से देखा जाता है। आलोचक का मुख्य धर्म होना चाहिए कि आलोचना करते समय केवल श्रद्धा किसी के प्रति नहीं होनी चाहिए। भले ही माता-पिता आदि कोई कितना भी पूज्य क्यों न हो। ऐसा इसीलिए कि केवल पूज्य होना ही श्रद्धा का पात्र कोई नहीं होता है। उसके चरित्र का पूज्य होना बहुत आवश्यक है।

लेखक के मित्र ने मित्रता की योग्यता के विषय में आत्मकथन प्रस्तुत करते हुए कहा कि मैं जिसे अपना मित्र समझ रहा हूँ, उसके व्यक्तित्व के विषय में मुझे अवश्य ही एक विशिष्ट यह जानकारी रखनी चाहिए कि वह किन-किन योग्यताओं से परिपूर्ण और विभूषित है, जिसमें अत्यन्त अपेक्षित और आशातीत गुणों का समालंकरण नहीं है, वह न मित्र कहलाने योग्य है और न ही उससे मित्रता ही करना चाहिए। यदि उसमें उपर्युक्त गुणों का समालंकरण नहीं है, तो उसका मित्र उससे कैसे प्रभावित हो सकता है। मित्रता केवल सामाजिक अर्थ नहीं है। इसके उत्तर में लेखक कहते हैं- यह सब कुछ ठीक है, लेकिन यहाँ यह भय है कि उसकी प्रशंसा में कहीं हम अपनी पसन्द तो नहीं दिखा रहे हैं। मित्र ने इसका प्रतिरोध करते हुए कहा है कि सबकी पसन्द अलग-अलग होती है। श्रद्धेय के प्रति प्रेम के भाव निश्चय ही रखना चाहिए।

तब मित्र महोदय ने कहा—मित्र की घनिष्ठ सूत्र के अलावा मित्र से दूरी रखने पर सब पाप-साया मंडराने लगता है। लेखक ने कहा कि ठीक है, हमें यह चाहिए कि आलोच्य व्यक्ति से घनिष्ट सम्बन्ध बनाकर ही उसे विश्वस्त बनाना चाहिए। इस पर लेखक ने कहना शुरू किया कि मर्मस्पर्शी आलोचना में अपार श्रद्धाभाव होते हैं। मनुष्य चाहे तो संस्कृति, विज्ञान साहित्य या दर्शन अथवा अध्याय क्षेत्र में उतरकर अपनी कमजोरियों में सुधार ला सकता है। श्रद्धा का उद्वेग किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं होता है, अपितु सर्वसाधारण के प्रति होता है, लेकिन यह अवश्य विचारणीय है कि श्रद्धा का उद्वेग किसी सुपुप्त व्यक्ति पर होता है

अथवा जाग्रत व्यक्ति पर। श्रद्धा का महत्व तभी सम्भव है, जब उसे प्रयोग में लाये जायें। प्रयोग में लाये जाने के प्रयास में प्रयोग की सभी बुराइयाँ, सीमाएँ और कमजोरियाँ अधिक मात्रा में प्रकट होती है। इससे कार्य में कर्त्ता की दागदार छाप से जिसके प्रति कार्य किया गया, वह व्यक्ति बौखला उठता है। इस प्रकार वह व्यक्ति उस आलोचना पर फिर विश्वास नहीं कर पाता।

लेखक ने अपने मित्र से अन्त में यह कहा कि हमें आलोचना करते समय होने वाली गलतियों के लिए हमें खाली जगह रखनी चाहिए। इस प्रकार से यदि हम दूसरों को अवकाश दे, अर्थात् एक-दूसरे को सोचने के लिए समय दे तो इससे बहुत-से ईर्ष्या-भाव त्याग कर परस्पर आदान-प्रदान द्वारा एक-दूसरे का मार्ग सुगम और सरल बना सकते हैं। लेखक ने अपने मित्र की आँखों की तरफ देखा और अनुभव किया कि उसका मित्र मेरी बात से सहमत है। ■

प्रश्न 11. अज्ञेय जी द्वारा रचित यात्रा वृत्तान्त ''अरे यायावर रहेगा याद'' की समीक्षा कीजिए।

उत्तर- अज्ञेय के यात्रा वृत्तान्त ''अरे यायावर रहेगा याद'' की समीक्षा

आधुनिक हिन्दी साहित्य की नई उपलब्धियों में अकाल्पनिक गद्य वृत्तों का विशिष्ट स्थान है। इसके अन्तर्गत यात्रा संस्मरण, डायरी, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, ललित निबन्ध आदि का स्थान है। अज्ञेय ने अकाल्पनिक गद्य-वृत्तों से अपने लिए यात्रा संस्मरण को चुना है। अज्ञेय के प्रस्तुत यात्रा वृत्तों 'अरे यायावर रहेगा याद' और 'एक बूँद सहसा उछली' को पढ़कर सबसे पहले उनके लेखक का समृद्ध और संवेदनशील व्यक्तित्व हमारे सामने उभरकर आता है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में, ''प्रकट तथ्यों के बीच से झाँकने वाले अप्रकट सत्य को पकड़ने की लेखकीय क्षमता यात्रा संस्मरण जैसे अकाल्पनिक गद्य-वृत्तों में देख सकते हैं। यह बात 'अरे यायावर रहेगा याद' में तो कम लेकिन 'एक बूंद सहसा उछली' में पूरी तरह दिखाई देती है।''

अज्ञेय का यात्रा वर्णन मूल में पूरे पढ़ने लायक है। इससे पता चलेगा कि उनमें कितनी विविधता है, कैसे वैदृष्य है, कैसी विदग्धता है तथा कैसे वाग्विलास है। अज्ञेय के यात्रा संस्मरणों का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जा सकता है- एक तो उनकी अपनी कलात्मक उपलब्धि की दृष्टि से और दूसरे इन वृत्तों में स्थान-स्थान पर व्यक्त लेखक के प्रत्यक्ष चिन्तन को समझने और उसके साथ उनके सर्जन और साहित्य चिन्तन की संगति पाने की दृष्टि से। यह भी है कि कलात्मक उपलब्धि और चिन्तन की प्रौढ़ता के बीच सही अनुपात होने की सम्भावना अधिक है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार, ''जीवन से प्रेम यों तो अज्ञेय के सभी कृतियों में दृष्टिगोचर होते हैं। यात्रा-वृत्तों में वह अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप में दिखाई देता है, क्योंकि जीवन से प्रेम के ही कारण लेखक यायावर हुआ है। अज्ञेय के पहले यात्रा-वृत्त में यात्रा वर्णन अभिधार्थ में है, जबकि दूसरे में लेखक की बाहरी और आभ्यांतरिक दोनों यात्राएँ साथ-साथ देखी जा सकती हैं।''

''अज्ञेय के यात्रा साहित्य में महाकाव्य और उपन्यास का विराट तत्व, कहानी का आकर्षण, गीति काव्य की मोहक भावशीलता, संस्मरणों की आत्मीयता, निबन्धों की मुक्ति,

सब एक साथ मिल जाती है। अज्ञेय के 'अरे यायावर रहेगा याद' में ऐसा ही सौन्दर्य तथा आकर्षण है।''

अज्ञेय के यात्रा संस्मरण प्राय: उनका यायावरी के वृत्तांत है, किन्तु वे कोर वृत्तान्त या यात्रावृत्त नहीं है, उनमें कुछ ऐसा जीवन्त सत्य है, जो उन्हें चिरन्तन बना जाता है।

अज्ञेय का यात्रा साहित्य इतना बहुआयामी है, उसमें इतिहास, भूगोल साहित्य और संस्कृति के अन्य तत्वों की इतनी गहरी परतें हैं कि पढ़ने वाला स्फूर्ति से भरता चला जाता है। इन यात्रा वृत्तान्त से यह भी सहज ही पता चल जाता है कि उनकी सृजनशीलता वय की सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई क्यों और कैसे अब तक वैसी ही जीवन और प्रेरणा दायिनी बनी हुई है।

अज्ञेय के यात्रा संस्मरणों की पहली पुस्तक 'अरे यायावर रहेगा याद' अपनी ताजगी से पाठक के मन को विभोर कर देती है। 'अरे यायावर रहेगा याद' संस्कृत साहित्य में एक ऐसा भी नाम है, जिसने अपने को यायावर कहने में गौरव का अनुभव किया।

'अरे यायावर रहेगा याद' में 'परशुराम से तूरखम' तक का 62 पृष्ठों वाला लम्बा सफरनामा है। एक टायर की राम कहानी से इस वऋत्त का प्रारम्भ होता है। असम से पेशावर तक का 'किरणों की खोज में', 'देवताओं के अंचल में', 'मौत की घाटी में' वीनगर, कुल्लू, मलानी, रोहतांग पास आदि हिमालय के अंचल की यात्राएँ हैं। 'एलुरा' महाराष्ट्र के मराठवाड़ा में विख्यात कैलास मंडप शिल्पवाली गुफाओं का वर्णन है। 'माझुली' आसाम के एक द्वीप के जीवन की कथा है। 'बहता पानी निर्मला' भी आसाम की ही यात्रा पर आधारित है। सागर संचित मेघ मेखलित (कन्याकुमारी से नन्दादेवी) शिव-पार्वती पूरा कथा से वलयित एक सांस्कृतिक गाथा है।''

सम्पूर्ण पुस्तक में एक धाराप्रवाह रोचकता बनी हुई है और जिसके लिए लेखक ने हास्य और व्यंग्य का भी सहारा लिया है। इस वृत्त में इतने विविध प्रसंगों का उल्लेख है, जो यायावर की व्यक्तित्व की विभिन्न प्रकार की रूचियों का परिचय देता है। यात्रावृत्त में लेखक का ललित व्यक्तित्व स्थान-स्थान पर प्रकट होता है। अज्ञेय के इस यात्रा-वृत्त में इतिहास के प्रति रागात्मकता, ललित कलाओं की पहचान और राष्ट्रीयता की पुकार से आगे बढ़कर समस्त मानव जाति में एक समता भाव खोलने की सतत् जागरूकता विद्यमान है, जिसकी वे अपने व्यक्तित्व से पोषित और प्रमाणित करते चलते हैं।

''अरे यायावर रहेगा याद'' में यायावर उन धार्मिक स्थलों की अंतकथाओं और पुराआख्यानों, किंवदन्तियों को भी हमारे सामने रखता है। इस देश में प्रत्येक धार्मिक स्थल के साथ दंत कथाएँ और किंवदंतियाँ जुड़ी हैं। यह इतिहास बिना किसी प्रामाणिकता के चलता रहता है और मजे की बात यह है कि प्रामाणिक इतिहास के जानकारों की अपेक्षा किंवदन्तियों में खोये रहने वालों की संख्या अधिक है। किसी देश की शिथिल राष्ट्रीयता के यह अवशेष हैं। आज भी इस देश में धार्मिक स्थल वही है, जो पौराणिक आख्यान से जुड़ा है। इस देश की वे पुरातात्विक, पौराणिक स्थूल छवियों इतनी अधिक मात्रा में स्थानान्तरित हुई हैं कि देश की संस्कृति लुजी होती जा रही है। यायावर न केवल किंवदन्तियों तक ही सीमित है, बल्कि शब्दों को भी मूल स्थिति तक जाकर उससे प्रामाणिकता खोजने की जिज्ञासु है। यायावर के यात्रा-वृत्तों में सर्वत्र संस्कृति रस का पाया जाना सांस्कृतिक पुरुष की प्रामाणिकता के लिए प्रमाण है।''

"अरे यायावर रहेगा याद" सर्जनात्मक चमक दिखाई देता है। इसमें वर्णन और वितरण अधिक है। यह यात्रा-वृत्त में प्रकृति के प्रति आकर्षण है। यह एक प्रकार से आधुनिक और रोमांटिक दृष्टियों के बीच का अन्तर है। पुस्तक का शीर्षक भी मनुष्य के ऊपर प्रकृति के व्यंग्य को ही ध्वनित करता है। पर कुल मिलाकर "अरे यायावर रहेगा याद" में प्रकृति के प्रति उत्सव का घनाभाव है और सम्मोहन का गहरा रूप भी है।"

"अरे यायावर रहेगा याद" तक का ज्योतिष कहता है कि यायावर के पैर में चक्कर है, भ्रामरी योग में उसने जन्म लिया है और शनिचर की साढ़े साती चल रही है। यात्रा जब यात्रा मार्ग में पड़ने वाले ऐतिहासिक स्थानों, पुरातात्विक स्थलों को देखता है तो उसे अपने देश की सांस्कृतिक परम्परा के चिन्हों के रूप में सम्मान देता है। वस्तु से व्यक्ति का सम्बन्ध इन्हीं अवधारणाओं से जान सकते हैं। तक्षशिला, नालंदा, सारनाथ ये नाम यायावर के शरीर में पुलक उत्पन्न करते हैं। यात्रा का वृत्त ही नहीं, बल्कि जो स्थल और संघात यायावर को प्रीतिकर लगे, उनके चित्र और फलक भी इस वृत्त में संयोजित किए गए हैं।

"अरे यायावर रहेगा याद" के पाँचवें संस्मरण (1986) की भूमिका में लेखक ने लिखा था- "अरे यायावर रहेगा याद" की बढ़ती हुई लोकप्रियता यदि इस बात का संकेत है कि पाठकों में अपने देश को एक समग्र इकाई के रूप में पहचानने की उत्सुकता बढ़ रही है तो वह मेरे लिए विशेष सुखद बात है। भ्रमण या देशाटन केवल दृश्य परिवर्तन या मनोरंजन न होकर सांस्कृतिक दृष्टि के विकास में भी योग दें। यही उसकी वास्तविक सफलता होती है। अपने यात्रा संस्मरणों में मेरा यह प्रयत्न रहा है कि उन यात्राओं के मेरी होने की बात उन्हें तात्कालिक अनुभव की प्रामाणिकता और टटकापन देने के लिए सामने आये, नहीं तो वे वृत्तान्त एक समग्र दृष्टि को उभारने में ही योग दे जिससे भविष्यत् यात्री अपने-अपने अनुभव को और समृद्ध बना सके।" ■

प्रश्न 12. डॉ. हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा- "क्या भूलूँ क्या याद करूँ" की समीक्षा कीजिए।

उत्तर- "क्या भूलूँ क्या याद करूँ" : आत्मकथा की समीक्षा

साहित्य में अभिव्यक्ति के विविध रूपों में मानव जीवन के सर्वाधिक निकट मानी जाने वाली विधा आत्मकथा है। आत्मकथा में रचनाकार अपने सम्पूर्ण जीवन के किसी अंश अथवा घटना का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत करता है। आत्मकथा में हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा हिन्दी साहित्य की एक कालजयी कृति है। उन्होंने अपने जीवन की तस्वीर को 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर' एवं 'दशद्वार से सोपान तक में' रूपान्तरित किया है। यह बहुप्रशंसित आत्मकथा एक महागाथा है, जो उनके जीवन और साहित्य का वृत्तान्त ही नहीं कहती, अपितु उत्तर छायावादी युग के साहित्यिक परिदृश्य को भी प्रस्तुत करती है।

"क्या भूलूँ क्या याद करूँ" में बच्चन अपने जन्म से लेकर अपनी पत्नी श्यामा के असामयिक देहावसान तक के अनुभवों को चित्रित किया है। इस भाग के प्रारम्भ में उन्होंने अपने वंश की उत्पत्ति, गुणों एवं दुर्गुणों का परिचय दिया है। बच्चन बताते हैं कि उनके जन्म से पूर्व माता सुरसती एवं पिता प्रतापनारायण द्वारा हरिवंश पुराण विशेष रूप से पढ़े जाने के कारण उनका नाम हरिवंश राय रखा गया। बच्चन ने यहाँ अपनी बाल्यावस्था, पारिवारिक

जीवन, शैक्षणिक जीवन, किशोरावस्था में कर्कल से निकटता, चंपा के प्रति आकर्षण और श्यामा के संग विवाह की अपनी अनुभूतियों को चित्रित करने का सुन्दर प्रयास किया है। इसी के साथ लेखक ने अपनी पारिवारिक-आर्थिक परेशानियों और श्यामा की बीमारी के दु:खते-कसकते अनुभवों को भी वाणी प्रदान की है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक ने अपने जन्म और परिवार से जुड़े उन प्रसंगों और घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, जो उसके व्यक्तित्व निर्माण से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एक व्यक्ति के विकास और उसके सर्जनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में किस प्रकार परिवार और उसकी परम्पराएँ सार्थक भूमिका निभाती हैं, इसे विवेच्य आत्मकथा को पढ़कर समझा जा सकता है।

वास्तव में प्रत्येक परिवार की कुछ निजी विशेषताएँ और परम्पराएँ होती हैं जिनका गहरा असर उनकी आने वाली संतानों पर पड़ता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बच्चन के रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण, विकास और समाजीकरण में उनके परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। खासकर परिवार के सदस्यों का व्यक्तित्व, जीवन-शैली और धार्मिक मान्यताओं तथा परम्पराओं का गहरा असर उनके बालमन पर पड़ा है और इसी अवस्था में उनकी मानसिकता का निर्माण होता है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ को पढ़ते हुए बच्चन के व्यक्तित्व निर्माण में परिवार की इस भूमिका के महत्व को स्पष्टत: देखा जा सकता है। कई बार तो लगता है कि उनके रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में भी समाज और राष्ट्र से अधिक उनके परिवार और उसकी परम्पराओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि इसमें मित्र भी निर्णायक भूमिका निभाते हैं, पर परिवार उसे व्यवस्थित करता है और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा और संबल भी देता है। बच्चन के जीवन में शिक्षकों और शिक्षा संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं जिनका उल्लेख उन्होंने विस्तार से किया है।

हरिवंशराय बच्चन की इस आत्मकथा में संघर्ष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है अस्तित्व रक्षा के लिए किया गया प्रयास। यह प्रयास एक तरफ जहाँ युगीन परिवेश को पूरी तल्खी के साथ चित्रित करता है, वहाँ दूसरी तरफ यहभी दिखलाता है कि किस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक विसंगतियों से आत्मकथा का नायक टकराता है, उनसे जूझता है और फिर मुक्त होकर आगे बढ़ जाता है। इसमें उसके परिवार की वे सारी घटनाएँ और परम्पराएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जो उसे नैतिक रूप से मजबूत बनाती हैं और विपरीत परिस्थितियों में सही काम करने की प्रेरणा देती हैं। खासकर पढ़ाई और बाद में पत्नी तथा बीमारी के दौरान किया गया उसका आर्थिक संघर्ष अत्यन्त दारूण है। सुबह-शाम ट्यूशन से लेकर वह 'चाँद' पत्रिका में नौकरी जहाँ से महीने भर बाद बिना तनख्वाह दिए बाहर निकाल दिया जाता है। स्कूल अध्यापकी में भी व्यवस्था की बेईमानी का शिकार होता है और पच्चीस रुपए की जगह पैंसठ पर हस्ताक्षर करता है। यह का देश भक्ति के नाम पर कराया जाता है। तत्कालीन शिक्षा संस्थानों में इस प्रकार के भ्रष्टाचार किस तरह शैक्षणिक माहौल और शिक्षकों को शिक्षण के प्रति उदासीन बनाने में सक्रिय भूमिका निभाते थे, इसका अंदाजा इन प्रसंगों से लगाया जा सकता है।

किसी भी मनुष्य के संघर्ष और निर्माण में कुछ लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ में आत्मकथाकार ने परिवार के अलावा अनेक ऐसे लोगों का उल्लेख

और वर्णन किया है, जो उसके संघर्ष, निर्माण और विकास के साथी और सहयोगी रहे हैं। इन व्यक्तियों में एक तरफ जहाँ उनके मित्र, अध्यापक और रचनाकार साथी रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ कुछ ऐसे व्यक्ति भी रहे हैं, जिनके नकारात्मक और सकारात्मक व्यवहार के कारण लेखक को अपने जीवन की दिशा तय करने में मदद मिलती है।

यद्यपि श्यामा लेखक की पत्नी है, परन्तु इस कृति में वह लेखक के संघर्ष और निर्माण में जिस तरह की भूमिका निभाती है, वह कई मायने में किसी सच्चे मित्र से कम नहीं है। लेखक उसे 'ज्यॉय' कहता है और वह उसे 'सफरिंग'। एक मित्र रूप में उसके योगदान की चर्चा करते हुए वह कहता है कि 'सबसे अधिक अपने इच्छाबल से उसने मुझे अपने रास्ते पर न ठहरने दिया, न पीछे फिरने दिया- "राह पकड़ तू चला चल पा जाएगा मधुशाला।" जिस धैर्य और लगन से श्यामा उसके रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में मदद करती है, वह अद्‌भुत है। विपरीत परिस्थितियों में भी वह धैर्य नहीं खोती है और हमेशा लेखक की हिम्मत बढ़ाती है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक ने खुलकर भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा और दिशा के बारे में अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त किया है। इस कृति में अनेक जगह वह परिवार और समाज के प्रतिबंधों को तोड़ते हुए विषम परिस्थितियों में स्त्रियों की मदद करता है चाहे वह चम्पा हो या प्रकाशों, यद्यपि इन स्त्रियों के प्रति लेखक के अन्दर एक भावुकता-भरा आकर्षण है, पर इससे वह मुक्त भी जल्दी हो जाता है। वह यह भी मानता है कि आर्थिक स्वतंत्रता, एक हद तक ही स्त्री समाज को महत्व देता है और पुरुष के दबाव से मुक्त करता है, क्योंकि अगर ऐसा नहीं होता तो आज यूरोप में स्त्रियाँ बहुत अच्छी स्थिति में होतीं। पर यूरोप में भी ऐसा नहीं है। वह कहता है कि, "जहाँ आर्थिक स्वतंत्रता सम्भव हुई है, वहाँ इसमें संदेह नहीं, एक-दूसरे से दबने की भावना दूर हो गई। पर यह केवल बाहरी और नकारात्मक पक्ष है।... यूरोप में पति-पत्नी विच्छेद के कितने ही मामलों में आर्थिक स्वतंत्रता भी कारण बनी है।"

जाहिर है लेखक स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता को उतना कारगर नहीं मानता है। तो फिर उपाय क्या है? 'आदर्श प्रेम!' लेखक कहता है। यद्यपि उसके इस आदर्श प्रेम का जो स्वरूप और आधार है, वह अपने आप में बहुत स्पष्ट नहीं है। फिर भी वह कहता है, "नर-नारी का वह आकर्षण जो प्रेम का रूप लेता है, एक-दूसरे के किसी अभाव की पूर्ति करता है। दोनों को ही अपने-अपने अहं को किसी-न-किसी रूप में पोषित करने और किसी-न-किसी रूप में मिटाने की आवश्यकता होती है। जो दम्पत्ति कभी एक-दूसरे के ऊपर उठकर, कभी एक-दूसरे के नीचे झुककर इस आवश्यकता की पूर्ति करते रहते हैं, वे अपने सन्तुलित सम्बन्ध का रहस्य जान लेते हैं।"

जाहिर है एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करके ही स्त्री और पुरुष सार्थक जिन्दगी जी सकते हैं। इसका सबसे सरल माध्यम है 'प्रेम', जिसकी वकालत यह कृति बार-बार करती है। और यह 'प्रेम' मित्रता से ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए बच्चन बार-बार इस कृति में स्त्री के साथ एक मित्र की तरह व्यवहार करने पर बल देते हैं। बुजुर्ग और विधवा स्त्रियों का सम्मान करते हैं।

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. "असलियत यह है कि सौन्दर्य तब उत्पन्न होता है, जब सृजनशीलता कल्पना के सहारे सवेदित अनुभव का ही विस्तार हो जाए। कलाकार का वास्तविक अनुभव और अनुभव की संवेदनाओं द्वारा प्रेरित फैण्टेसी इन दोनों के बीच कल्पना का एक रोल होता है, वह रोल, वह भूमिका एक सृजनशील भूमिका है। वही कल्पना उस वास्तविक अनुभव की व्यक्तिवद्ध पीड़ाओं से हटकर पैठ अब बहुत गहरी हो रही है।"

सन्दर्भ—यह गद्यावतरण मुक्तिवोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' के 'तीसरा क्षण' अंश से लिया गया है। इसमें मुक्तिवोध फैण्टेसी में सौन्दर्य की उत्पत्ति की विवेचना कर रहे हैं।

व्याख्या—केशव का कथन था कि प्रस्तुति सौन्दर्य व्यक्तिगत भावना होती है, अत: इसमें सही अर्थों में सौन्दर्य का अनुभव नहीं होता। व्यक्ति अपने व्यक्तिगत भावना के अनुरूप ही नारी या प्रकृति के सौन्दर्य का अनुभव करता है। यह अनुभव सामान्य सौन्दर्य का प्रतीक नहीं होता। मुक्तिवोध केशव के कथन को आगे वढ़ाते हुए कहते हैं कि सौन्दर्य का सृजन, सृजनशील कल्पना के सहारे होता है। सृजनशील कल्पना संवेदित अनुभव का ही विस्तार करती है। कलाकार के वास्तविक अनुभव और संवेदनाओं से प्रेरित होकर जिस फैण्टेसी का निर्माण होता है, उन दोनों के वीच में कल्पना की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह सृजनशील कल्पना भी वास्तविक अनुभव को व्यक्तिगत पीड़ाओं से मुक्त कर गहरी हो जाती है और सार्वजनिक रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार प्रकृति सौन्दर्य एवं नारी सौन्दर्य व्यक्तिगत अनुभूति से अलग होकर सही रूप में शाश्वत सौन्दर्य का रूप धारण कर लेता है।

विशेष—(1) शैली विवेचनात्मक है। (2) भाषा विशुद्ध तत्सम प्रधान है।

(3) सृजनशील कल्पना ही फैण्टेसी काव्य में शाश्वत सौन्दर्य की सृष्टि करती है।

2. "इस प्रकार कला के तीसरे क्षण में मूल द्वन्द्व है- भाषा तथा भाव के बीच। इन दोनों की परस्पर प्रतिक्रिया और संघर्ष बहुत उलझे हुए होते हैं और वे उन दोनों को वदलते रहते हैं। इन दोनों में संशोधन होता जाता है, वह द्वन्द्व बहुत महत्वपूर्ण और सृजनशील है। भाषा एक परम्परा के रूप में फैण्टेसी के मूल रंग को विस्तृत कर देती है, किन्तु साथ ही उस फैण्टेसी में संशोधन भी उपस्थित करती जाती है। साथ ही फैण्टेसी अपने मूल रंगों में निर्वाह के लिए अपने मूल रंगों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा पर दवाव लाती है। उसके शब्दों और मुहावरों में नयी अर्थवत्ता, नयी अभिव्यक्ति भर देती है। कला के तीसरे क्षण में यह महत्वपूर्ण द्वन्द्व हैं।"

सन्दर्भ—यह गद्यावतरण मुक्तिवोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' के 'तीसरे क्षण' में अवतरित है। इसमें फैण्टेसी के तीसरे क्षण में भाषा तथा भाव के द्वन्द्व और उसके परिणाम को स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या—फैण्टेसी के अन्तिम चरण में भाषा तथा भाव के वीच में द्वन्द्व उपस्थित होता है। भाषा फैण्टेसी को काटती-छाँटती है और इस प्रक्रिया के विपरीत फैण्टेसी भाषा को सम्पन्न और समृद्ध करती है। भाषा और भाव की परस्पर प्रतिक्रिया और संघर्ष बहुत उलझे हुए होते हैं। वे अपने प्रभाव से दोनों में परिवर्तन उपस्थित करते हैं। भाव और भाषा के द्वन्द्व में दोनों का संशोधन होता है। यह द्वन्द्र बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सृजनशील बन जाता है, भाषा एक परम्परा के रूप में फैण्टेसी के मूल रंग का विस्तार करती है और इसके साथ ही फैण्टेसी के

संशोधन भी उपस्थित करती है। इसके साथ ही फैण्टेसी अपने मूल रंगों के निर्वाह के लिए और उनकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा पर दवाव डालकर उसे प्रभावित करती है। वह शब्दों तथा मुहावरों में अर्थवेत्ता, नयी अर्थक्षमता और नयी अभिव्यक्ति भर देती है। फैण्टेसी कला के तीसरे क्षण में भाषा और भाव का यह महत्वपूर्ण द्वन्द्व है, जो एक-दूसरे को निखारता है।

विशेष—(1) फैण्टेसी के निखार के लिए उसके तीसरे चरण में भाषा और भाव का द्वन्द्व अनिवार्य है। (2) भाषा विशुद्ध तत्सम है। (3) शैली विवेचनात्मक है।

3. "एक सच्चा लेखक जानता है कि वच कहाँ कमजोर है, कि उसने कहाँ सचाइं से जी चुराया है, कि उसने कहाँ लीपा-पोती कर डाली है, कि उसने कहाँ उलफा चढ़ा दिया है, कि उसे वस्तुतः कहना क्या था और क्या कह गया हैं, कि उसकी अभिव्यक्ति कहाँ ठीक नहीं है। वह इस बखूबी को जानता है, क्योंकि वह लेखक सचेत है सच्चा लेखक अपने खुद का दुश्मन होता है। वह अपनी आत्म शक्ति को भंग करके ही लेकक बना रह सकता है इसलिए लेखक अपनी कसौटी पर दूरों की प्रशंसा को भी कसता है और आलोचना को भी। वह अपने खुद का सबसे बड़ा आलोचक होता है।

सन्दर्भ—'डबरे का सूरज का विम्ब' शीर्षक निवन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में मुक्तिवोधजी स्पष्ट करते हैं कि सच्चा लेखक स्वयं अपना आलोचक होता है।

व्याख्या—एक सच्चा लेखक यह वात भली-भाँति जानता है कि उसने कहाँ-कहाँ भूल और लीपा-पोती की है। उसे क्या कहना चाहिए था और वह क्या कह गया। उसकी अभिव्यक्ति कहाँ पर ठीक नहीं है। वह सचेत लेखक होने के नाते अपनी अभिव्यक्ति की कमियों को जानता है। इस प्रकार अपनी आत्म-शान्ति को भंग कर ही वह लेखक वना रह सकता। वह स्वयं बड़ा आलोचक होत. है, वह अपनी कसौटी पर दूसरे की प्रशंसा और आलोचना करता है।

4. "अब तक इतिहास यह है कि मैं अपनी बुद्धि द्वारा हृदय को सम्पादित और संशोधित करता आया हूँ यह प्रक्रिया बिल्कुल बचपन से ही चल रही है। जिन्दगी एक महाविद्यालय या विश्वविद्यालय नहीं है। वह एक प्राइमरी स्कूल है। जहाँ टाटपट्टी पर बैठना पड़ता है, जरा-सी बात पर चाँटे के आघात की सारी संवेदनाएँ गालों पर झेलनी पड़ती हैं। जी हाँ इस जिन्दगी का यही हाल है। भय, आतंक विचित्र आशंकाएँ, अजीबोगरीब उलझाव, फटी हुई टाट-पट्टियाँ, पुराने स्याही रँगे टेबल, गुरुजी की भयानक दुतरफा मूँछ और घर माता-पिता की डाँट-फटकार और बच्चे का कोमल छोटा-सा शरीर।

सन्दर्भ—'कलाकार को व्यक्तिगत ईमानदारी' डायरी के इस अंश में मुक्तिवोध ने अपने व्यक्तिगत जीवन को ईमानदारी से अभिव्यक्त करते हुए उसे प्राइमरी स्कूल कहा है।

व्याख्या—मुक्तिबोध अपने संघर्षपूर्ण जीवन पर प्रकाश डाल रहे हैं। उन्होंने अपने हृदय की भावनाओं, अनुभूति को वुद्धि के द्वारा संयमित किया है। उन्होंने अपने हृदय को बौद्धिक चिन्तन के द्वारा संशोधित और सम्पादित किया। काव्य और जीवन के क्षेत्र में उनकी यह प्रक्रिया वचपन से ही चलती रही है, अर्थात् उनकी भावानुभूति बौद्धिक चिन्तन से शासित रही है। वे जीवन को एक महाविद्यालय नहीं मानते। उनकी दृष्टि से वह तो एक प्राइमरी स्कूल भर है। प्राइमरी स्कूल में टाट-पट्टी पर वैठना पड़ता है। जरा-जरा सी बात पर अध्यापक गालों पर चाँटों की चोट करता है और उन आघातों की संवेदनाओं को सहन करना

होता है। जिन्दगी की दशा भी प्राइमरी स्कूल की तरह ही है। जीवन में भय, आतंक, विभिन्न आशंकाएँ, अजीबोगरीब उलझाव उसी तरह आते रहते हैं, जिस प्रकार प्राइमरी पाठशाला में फटी हुई टाट-पट्टियों, पुराने स्याही रंगे टेबल आदि का सामना करना पड़ता है, प्राइमरी पाठशाला में गुरुजी की भयानक दुतरफा मूँछों का आतंक और घर में मातापिता की डाँट-फटकार बच्चे के कोमल शरीर को झेलनी पड़ती है। उसे जीवन में बड़े भयानक संघर्ष, आतंक और भय घेरे रहते हैं।

विशेष—(1) मुक्तिबोध ने संघर्षपूर्ण जीवन का यथार्थ चित्र उभरा है।

(2) शैली दृष्टान्त प्रधान है।

(3) मुक्तिबोध की भावानुभूति सदैव बौद्धिकता से शासित रही है।

(4) जिन्दगी को कष्टों से भरा प्राइमरी स्कूल कहा गया है।

5. 'कवि जीवन-जगत् के प्रति वास्तविक विश्व-दृष्टि का विकास करे और वह विश्व-दृष्टि उसकी मानसिक प्रतिक्रिया की प्रेरक हो, यदि सचमुच उसका यही मत है तो मेरी उसकी पोजीशन में विशेष भेद नहीं है।''

सन्दर्भ—यह गद्यावतरण मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' से अवतरित है। यह 'कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी' का एक अंश है। इसमे स्पष्ट किया गया है कि कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी इसी में है कि वह ऐसी वास्तविक दृष्टि का विकास करे, जो उसकी मानसिक प्रतिक्रिया को प्रेरित करे। मुक्तिबोध अपने मित्र यशराज की इस मान्यता को स्वीकार करते हैं।

व्याख्या—कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी यही है कि वस्तुतथ्य के प्रति वह सही-सही मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त कर सके। कवि जीवन-जगत के प्रति ऐसी दृष्टि का विकास करे जो वास्तविक हो और उसकी दृष्टि विश्व-दृष्टि बन जाये और यह विश्व दृष्टि उसकी मानसिक प्रतिक्रिया की प्रेरणा दे, तभी कलाकार व्यक्तिगत ईमानदारी का निर्वाह कर पायेगा। मुक्तिबोध कहते हैं कि कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी के प्रति यशराज की यह अवधारणा मुझे बहुत कुछ मान्य है।

विशेष—(1) भाषा तत्सम-प्रधान है। (2) शैली विवेचनात्मक है। ■

इकाई-4

हरिशंकर परसाई- विकलांग श्रद्धा का दौर, भोलाराम का जीव, एक दीक्षान्त भाषण

प्रश्न 13. हरिशंकर परसाई जी की रचनाओं की भाषागत एवं शैलीगत विशेषताएँ बताइए तथा उनका हिन्दी साहित्य में स्थान बतलाइए।

उत्तर-हरिशंकर परसाई जी की रचनाओं की भाषागत एवं शैलीगत विशेषताएँ

भाषागत विशेषताएँ—परसाई जी की रचनाओं में व्यंग्य के अनुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है। इनकी रचनाओं में बोलचाल के शब्दों, तत्सम शब्दों तथा विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। लक्षणा एवं व्यंजना का कुशल प्रयोग पाठकों को प्रभावित करता है। भाषा के प्रवाह के लिए इन्होंने यत्र-तत्र मुहावरों और कहावतों का भी प्रयोग किया है। परसाई जी सरल भाषा के पक्षपाती थे।

हरिशंकर परसाई के वाक्य छोटे-छोटे एवं व्यंग्य प्रधान हैं। संस्कृत शब्दों के साथ-साथ उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी वे पर्याप्त मात्रा में अपनी व्यंग्य रचनाओं में करते हैं। परसाई जी भाषा के मर्मज्ञ थे। शब्द की शक्ति से वे भली-भाँति परिचित थे। ऐसा उनकी रचनाओं को पढ़ने से पता चल जाता है।

शैलीगत विशेषताएँ—हरिशंकर परसाई जी की रचनाओं में शैली की विविधता दिखाई पड़ती है। शैली के जो विविध रूप इनकी व्यंग्य रचनाओं में दिखाई पड़ते हैं, उनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं-

व्यंग्यात्मक शैली—व्यंग्यपूर्ण रचनाओं में इस शैली का प्रयोग प्रमुखता से किया गया है। इसमें जीवन के विविध क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों पर करारी चोट की गयी है। भाषा अवसर के अनुकूल सरल, व्यावहारिक है तथा वाक्य छोटे-छोटे हैं। लाक्षणिक पदावली एवं व्यंजना शक्ति का उपयोग भी उन्होंने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में किया है। यथा- "सुबह चाय पीकर अखबार देख रहा था कि वे तूफान की तरह कमरे में घुसे साइक्लोन की तरह मुझे अपनी भुजा में जकड़ा तो मुझे धृतराष्ट्र की भुजाओं में अकड़े भीम के पुतले की याद आ गई।"

प्रश्नात्मक शैली—प्रश्नात्मक शैली में हरिशंकर परसाई जी प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं और फिर स्वयं ही उनका उत्तर भी देते हैं। ऐसे प्रश्न पाठक को भीतर तक झकझोर देते हैं और सोचने-विचारने को मजबूर कर देते हैं। यहाँ इस शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है- 'क' से क्या में गले मिला? क्या मुझे उसने समेटकर कलेजे से लगा लिया? हरगिज नहीं। मैंने अपना पुतला ही उसे दिया। पुतला इसलिए उसकी भुजाओं में सौप दिया कि मुझे मालूम था कि मैं धृतराष्ट्र से मिल रहा हूँ।

विवेचनात्मक शैली—हरिशंकर परसाई जी ने अपनी व्यंग्य रचनाओं में कहीं-कहीं वर्णन विवेचन भी किया है। ऐसे स्थानों पर भाषा में गम्भीरता है, संस्कृतनिष्ठ पदावली का प्रयोग है तथा वाक्य छोटे-छोटे किन्तु कसे हुए हैं।

एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"निन्दा का उद्गम ही हीनता और कमजोरी से होता है। मनुष्य अपनी हीनता से दबता है। वह दूसरों की निन्दा करके ऐसा अनुभव करता है कि वे सब निकृष्ट है और वह उनसे अच्छा है। उसके अहं की इससे तुष्टि होती है।"

सूत्रात्मक शैली—इस शैली में हरिशंकर परसाई गागर में सागर भरते हुए सूत्रों में बात कहते हैं और फिर उसकी व्याख्या करते हैं। परसाई जी के निबन्ध निन्दा रस में प्रयुक्त कुछ ऐसे सूत्र वाक्य इस प्रकार हैं-

- कुछ लोग बड़े निर्दोष मिथ्यावादी होते हैं।
- ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित निन्दा भी होती है।

भावात्मक शैली—जहाँ कहीं हरिशंकर परसाई जी जीवन के कटु यथार्थ को व्यक्त करते हैं, वहाँ उनकी भावना प्रबल हो जाती है और वे भावात्मक शैली का प्रयोग करते हैं। ऐसे स्थलों पर चिन्तन गौण हो जाता है, भावना प्रबल हो उठती है। वाक्य छोटे-छोटे तथा भाषा सरल एवं व्यावहारिक रहती है।

हिन्दी साहित्य में स्थान—निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हरिशंकर परसाई जी ने सामाजिक रूढ़ियों, राजनीतिक विडम्बनाओं तथा सामयिक समस्याओं पर व्यंग्य किया है और यथेष्ठ कीर्ति पाई है। ये एक सफल व्यंग्यकार के रूप में स्मरणीय रहेंगे। उनकी

व्यंग्य रचनाएँ हिन्दी जगत में बड़े आदर की वस्तु हैं तथा एक व्यंग्यकार के रूप में परसाई जी को हिन्दी साहित्य में पर्याप्त यश प्राप्त हुआ है।

मानवीय दु:ख और पीड़ा को हरिशंकर परसाई ने अनुभव किया है। समाज में व्याप्त विसंगतियों को उन्होंने देखा-परखा है और एक प्रबुद्ध एवं भावुक व्यक्ति होने के कारण वे इन्हें अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से दूर करने के लिए सजग एवं सक्रिय रहे हैं। निश्चय ही उनका योगदान अविस्मरणीय है तथा उनकी व्यंग्य रचनाओं ने हिन्दी को गौरव प्रदान किया है। ■

प्रश्न 14. हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबन्ध ''विकलांग श्रद्धा का दौर'' की समीक्षा कीजिए। अथवा

''विकलांग श्रद्धा का दौर'' निबन्ध का वैशिष्ट्य बतलाइए।

उत्तर-

'विकलांग श्रद्धा का दौर' निबन्ध की समीक्षा

श्री हरिशंकर परसाई हिन्दी साहित्य के हास्य-व्यंग्य के सर्वोच्च सिद्धहस्त लेखक हैं। इनके हास्य-व्यंग्य लेखन समाज के प्रतिष्ठित व प्रतिक्रियावादी शक्तियों पर सीधा किन्तु प्रखर प्रहार करने वाले हैं। इस प्रकार हम कहना चाहें तो कह सकते हैं कि परसाई जी के हास्य-व्यंग्य संसार में अनेक विशेषताओं से अलंकृत होकर आयी है। प्रस्तुत निबन्ध 'विकलांग श्रद्धा का दौर' की निबन्धगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

प्रतिपाद्य—प्रस्तुत निबन्ध का प्रतिपाद्य सामयिक अंधश्रद्धा, विश्वास और निष्ठा पर हंसी उड़ाते हुए, उसे खोखला और अनुपयोगी सिद्ध करना है। यों तो हम भली-भाँति यह जानते हैं कि श्री परसाई जी बहुत बड़े समाज-चिन्तक ही नहीं, अपितु उसको नीर-क्षीर विवेक की दृष्टि से देखने वाले भी हैं। इस निबन्ध में परसाई जी ने स्वयं को केन्द्रित कर इस तथ्य का प्रकाशन करना चाहा है कि आज की श्रद्धा, श्रद्धेय और श्रद्धालु केवल आधारहीन तर्क की परिधि में चक्कर काट रहे हैं, न उनका अर्थ है, न उपयोग और न ही कोई और अपेक्षा है। इस प्रकार परसाई जी ने 'विकलांग श्रद्धा का दौर' निबन्ध में श्रद्धा, श्रद्धेय और श्रद्धालु इन तीनों को ही विकलांग ही सिद्ध करने का मात्र प्रयास नहीं किया है, अपितु यह भी सिद्ध करना चाहा है कि इस प्रकार तीनों का आजकल खूब जमाना जमकर है। इन तीनों दौड़ जीवन के सभी क्षेत्रों में हो रही है। इनके प्रति लेखक की अनास्था और असहमति है, क्योंकि उसे तो जीवन-प्रगति का चक्र नहीं चल सकता है। इसलिए ये परित्याज्य है। इस तरह से प्रस्तुत निबन्ध एक साभिप्राय, तथ्यपूर्ण और सोद्देश्यपूर्ण है, जिसमें हास्य की मधुरता और व्यंग्य की कसक भरी पड़ी है।

श्रद्धा-भाव का प्रकाशन—'विकलांग श्रद्धा का दौर' एक तथ्यात्मक निबन्ध है। इसमें लेखक ने सामयिक श्रद्धा के विषय अपना वैविध्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। लेखक के अनुसार श्रद्धेय होना एक बहुत ही विशिष्ट और अद्‌भुत बात होती है। श्रद्धेय व्यक्ति गर्वित और अभिमानी बन जाता है- ''कई साल पहले एक साहित्यिक समारोह में मेरी उम्र के एक सज्जन ने सबके सामने मेरे चरण छू लिये। वैसे चरण छूना अश्लील कृत्य की तरह अकेले में ही किया जाता है। पर वह सज्जन सार्वजनिक रूप से कर बैठे तो मैंने आसपास खड़े लोगों की तरफ गर्व से देखा- तिलचट्टों, देखो मैं श्रद्धेय हो गया। तुम घिसते रहो कलम।''

श्रद्धेय होने का आधार कृपा ही है। आजकल तो लोग थोड़ी-सी संवेदना प्रकट करते

वक्त किसी को श्रद्धेय बना लेते हैं। लेखक के अनुसार, वयोवृद्ध होना भी श्रद्धेय होने का एक बहुत बड़ा आधार है- "सोचता हूँ, लोग मेरे चरण अब क्यों छूने लगे है? यह श्रद्धा एकाएक कैसे पैदा हो गई? पिछले महीनों में मैंने ऐसा क्या कर डाला? कोई खास लिखा नहीं है। कोई साधना नहीं की। समाज का कोई कल्याण भी नहीं किया। दाढ़ी नहीं बढ़ाई। भगवा भी नहीं पहना। बुजुर्गी भी कोई नहीं आई। लोग कहते हैं, ये वयोवृद्ध हैं। और चरण छू लेते हैं। वे अगर कमीने हुए तो उनके कमीनेपन की उम्र भी 60-70 साल की हुई। लोग वयोवृद्ध कमीनेपन के भी चरण छू लेते हैं।"

संवेदना भी श्रद्धेय होने का एक बड़ा जरिया होती है- "क्या मेरी टूटी टांग में से दर्द की तरह श्रद्धा पैदा हो गई है? तो यह विकलांग श्रद्धा है। जानता हूँ, देश में जो मौसम चल रहा है, उसमें श्रद्धा की टांग टूट चुकी है, तभी मुझे भी यह विकलांग श्रद्धा दी जा रही है। लोग सोचते होंगे, इसकी टांग टूट गई है। यह असमर्थ हो गया। आओ हम इसे श्रद्धा दे दें।"

इस प्रकार श्रद्धा का विवेचन करते हुए लेखक का पुन: कहना है कि श्रद्धा ग्रहण की एक ऐसी विधि होती है, जो बहुत ही सहज और सरल न होकर कठिन होती है। लेखक के अनुसार, "श्रद्धा ग्रहण करने की भी एक विधि होती है। मुझसे सहज ढंग अभी श्रद्धा ग्रहण नहीं होती। अटपटा जाता है। अभी पार्ट टाइम श्रद्धेय ही हूँ। कल दो आदमी आये। वे बात करके जब उठे, तब एक ने मेरे चरण छूने को हाथ बढ़ाया। हम दोनों ही नौ-सिखिए। उसे चरण छूने का अभ्यास नहीं था। मुझे छुआने का जैसा भी बना उसने चरण छू लिये। पर दूसरा आदमी दुविधा में था। वह तय नहीं कर पा रहा था कि मेरे चरण छुये या नहीं। मैं भिखारी की तरह उसे देख रहा था। वह थोड़ा-सा झुका। मेरी आशा उठी। पर वह फिर सीधा हो गया। मैं बुझ गया। उसने फिर जी कड़ा करके कोशिश की। थोड़ा झुका। मेरे पाँवों में फड़कन उठी।"

श्रद्धेय के पक्के और अमिट होने की वास्तविक पहचान बतलाते हुए कहा है कि- "अभी कच्चा हूँ। पीछे पड़ने वाले तो पवित्रता को भी छिनाल बना देते हैं। मेरे ये श्रद्धालु मुझे पक्का श्रद्धेय बनाने पर तुले हैं। पक्के सिद्ध-श्रद्धेय मैंने देखे हैं। सिद्ध मकरध्वज होते हैं। उनकी बनावट ही अलग होती है। चेहरा आँखें खींचने वाली, पाँव ऐसे कि बरबस आदमी झुक जाए। पूरे व्यक्तित्व पर 'श्रद्धेय' लिखा होता है। मुझे ये बड़े बौड़म लगते हैं। पर ये पक्के श्रद्धेय होते हैं।"

लेखक ने आधुनिक श्रद्धा के स्वरूप पर सुन्दर प्रकाश डालते हुए कहा है- "और फिर श्रद्धा का यह कोई दौर है देश में? जैसा वातावरण है, उसमें किसी को भी श्रद्धा रखने में संकोच होगा। श्रद्धा पुराने अखबार की तरह रद्दी में बिक रही है। विश्वास की फसल को तुषार मार गया। इतिहास में शायद कभी किसी जाति को इस तरह श्रद्धा और विश्वास से हीन नहीं किया गया होगा। जिस नेतृत्व पर श्रद्धा थी, उसे नंगा किया जा रहा है। जो नया नेतृत्व आया है, वह उतावली में अपने कपड़े खुद उतार रहा है। कुछ नेता तो अण्डरवीयर में ही हैं। कानून से विश्वास गया। अदालत से विश्वास छीन लिया गया। बुद्धिजीवियों की नस्ल पर ही शंका की जा रही है। डॉक्टरों को बीमारी पैदा करने वाला सिद्ध किया जा रहा है। कहीं कोई श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं।"

इस प्रकार से और उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि लेखक ने श्रद्धा के स्वरूप और भाव का सुन्दर प्रकाशन किया है।

भाषा—भाषा किसी रचना की सबसे बड़ी शक्ति और पहचान है। इसकी कमजोरी रचना की कमजोरी होती है और इसकी सार्थकता रचना की सार्थकता का बहुत बड़ा आधार होती है। इस प्रकार भाषा का महत्व निःसन्देह हर एक प्रकार से है। प्रस्तुत निबन्ध 'विकलांग श्रद्धा का दौर' की भाषागत वैशिष्ट्य विचारणीय है। इस निबन्ध की भाषा की पहली विशेषता है- उर्दू शब्दावली की प्रधानता। इस निबन्ध में आए उर्दू के शब्द साधारण और प्रचलित हैं। इनसे भावों का सुन्दर प्रकाशन हुआ है। एक उदाहरण देखिए-

"अभी-अभी तक आदमी मेरे चरण छू कर गया है। मैं बड़ी तेजी से श्रद्धेय हो रहा हूँ। जैसे कोई चलतू औरत शादी के बाद बड़ी फूर्ति से पतिव्रता होने लगती है। यह हरकत मेरे साथ पिछले कुछ महीनों से हो रही है कि जब-तब कोई मेरे चरण छू लेता है। पहले ऐसा नहीं होता था। हाँ, एक बार हुआ था, पर वह मामला वहीं रफा-दफा हो गया। कई साल पहले एक साहित्यिक समारोह में मेरी ही उम्र के एक सज्जन ने सबके सामने मेरे चरण छू लिये। वैसे चरण छूना अश्लील कृत्य की तरह अकेले में ही किया जाता है। पर वह सज्जन सार्वजनिक रूप से कर बैठे तो मैंने आसपास खड़े लोगों की तरफ गर्व से देखा- तिलचट्टों, देखों में श्रद्धेय हो गया। तुम घिसते रहो कलम।"

इस निबन्ध में लेखक ने मुहावरेदार भाषा के भी प्रयोग किए हैं। इससे भाव और अर्थ अत्यन्त सुगमतापूर्वक प्रकट हुए हैं। इस प्रकार के कुछ प्रयोग देखिए-

1. पर तभी उस श्रद्धालु ने मेरा पानी उतार दिया।
2. मैंने खुद कुछ लोगों के चरण छूने के बहाने उनकी टांग खींची है।
3. लंगोटी धोने के बहाने लंगोटी चुरायी है।
4. लोग मेरी इस मजबूरी का नाजायज फायदा उठाकर झट मेरे चरण लेते हैं।
5. मैं भिखारी की तरह उसे देख रहा था।
6. मुझे शर्म से अपने आपको जूता मार लेना था।
7. मुझे ये बड़े बौड़म लगते हैं।
8. यह चरण छूने का मौसम नहीं, लात मारने का मौसम है।

शैली—भाषा की रूपरेखा शैली से प्रकट होती है। दूसरे शब्दों में शैली भाषा को आगे और सामने प्रकट करती है। इस प्रकार भाषा और शैली का सम्बन्ध चोली-दामन का सम्बन्ध है। प्रस्तुत निबन्ध 'विकलांग श्रद्धा का दौर' की शैली बहुत ही रोचक है, जो विविध रूपों में है। कथात्मकता इस निबन्ध की पहली शैली है। इस विषय का कथन बड़े ही तथ्यपूर्ण रूप में सामने आया है। एक उदाहरण देखिए-

"अभी-अभी एक आदमी मेरे चरण छू कर गया है। मैं बड़ी तेजी से श्रद्धेय हो रहा हूँ, जैसे कोई चलतू औरत शादी के बाद बड़ी फूर्ति से पतिव्रता होने लगती है। यह हरकत मेरे साथ पिछले कुछ महीनों से हो रही है कि जब-तब कोई मेरे चरण छू लेता है। पहले ऐसा नहीं होता था। हाँ, एक बार हुआ था, पर वह मामला वहीं रफा-दफा हो गया। कई साल पहले एक साहित्यिक समारोह में मेरी ही उम्र के एक सज्जन ने सबके सामने मेरे चरण छू लिये। वैसे चरण छूना अश्लील कृत्य की तरह अकेले में ही किया जाता है। पर वह सज्जन सार्वजनिक रूप से कर बैठे तो मैंने आसपास खड़े लोगों की तरफ गर्व से देखा- तिलचट्टों, देखों में श्रद्धेय हो गया। तुम घिसते रहो कलम। पर तभी उस श्रद्धालु ने मेरा पानी उतार दिया। उसने कहा, "अपना तो यह नियम है कि गौ-ब्राह्मण के चरण जरूर छूते हैं।"

इस निबन्ध की शैली सम्बन्धित तीसरी विशेषता है- उद्धरण या दृष्टान्त शैली है। लेक ने इस शैली के द्वारा विषय को बखूबी समझाने और सुस्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। इससे लेखक की शैलीगत चातुर्य और क्षमता का सही दिग्दर्शन हुआ है। प्रसंगानुसार उद्धरणों की एक झांकी देखिए।

"हाँ, बीमारी में से श्रद्धा कभी-कभी निकलती है। साहित्य और समाज के एक सेवक से मिलने में एक मित्र के साथ गया था। जब वह उठे तब उस मित्र ने उसके चरण छू लिये। बाहर आकर मैंने मित्र से कहा, "यार, तुम उनके चरण क्यों छूने लगे?" मित्र ने कहा, "तुम्हें पता नहीं है, उन्हें डायबिटीज हो गया है।" अब डायबिटीज श्रद्धा पैदा करे तो टूटी टाँग भी कर सकती है। इसमें कुछ अटपटा नहीं है। लोग बीमारी से कौन फायदे नहीं उठाते। मेरे एक मित्र बीमार पड़े थे। जैसे ही कोई स्त्री उन्हें देखने आती, वह सिर पकड़कर कराहने लगते हैं। स्त्री पूछती, "क्या सिर में दर्द है?" वे कहते, "हाँ सिर फटा पड़ता है।" स्त्री सहज ही उनका सिर दबादेती। उनकी पत्नी ने ताड़ लिया। कहने लगी- "क्यों जी, जब कोई स्त्री तुम्हें देखने आता है, तभी तुम्हारा सिर क्यों दुखने लगता है?" उसने जवाब भी माकुल दिया कहा, "तुम्हारे प्रति मेरी इतनी निष्ठा है कि पर-स्त्री को देखकर मेरा सिर दुखने लगता है। "जान प्रीत-रस इतनेहुं मांही।"

इस निबन्ध की शैली की चौथी विशेषता है- विवरणात्मकता। इससे निबन्ध का कव्य तथ्य रूप से प्रकट हुआ है। एक उदाहरण देखिए-

"और फिर श्रद्धा का यह कोई दौर है देश में। जैसा वातावरण है, उसमें किसी की भी श्रद्धा रखने में संकोच होगा। श्रद्धा पुराने अखबार की तरह रद्दी में बिक रही है। विज्ञान की फसल को तुषार मार गया। इतिहास में शायद कभी किसी जाति को इस तरह श्रद्धा और विश्वास से हीन नहीं किया गया होगा। जिस नेतृत्व पर श्रद्धा थी उसे नंगा किया जा रहा है। जो नया नेतृत्व आया है, वह उतावली में अपने कपड़े खुद उतार रहा है। कुछ नेता तो अण्डरवीयर में ही हैं। कानून से विश्वास गया। अदालत से विश्वास छीन लिया गया। बुद्धिजीवियों की नस्ल पर ही शंका की जा रही है। डॉक्टर को बीमारी पैदा करने वाला सिद्ध किया जा रहा है। कहीं कोई श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं।"

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि श्री हरिशंकर परसाई द्वारा लिखित निबन्ध 'विकलांग श्रद्धा का दौर' निबन्धगत वैशिष्ट्य से परिपूर्ण एक भावप्रद निबन्ध है। जो हास्य-व्यंग्य निबन्ध के क्षेत्र में अतिश्रेष्ठ और अत्युच्च दिखाई पड़ता है। इससे हास्य-व्यंग्य रचनाकारों को सत्प्रेरणा मिलती है। ■

प्रश्न 15. 'भोलाराम का जीव' भ्रष्ट नौकरशाही की चरम परम्परा का पर्दाफाश करती है।"- इस कथा के माध्यम से कहानी की समीक्षा करें।

उत्तर-

'भोलाराम का जीव' कहानी की समीक्षा

भ्रष्टाचार की जड़े समूचे देश में फैली हुई हैं। सर्वत्र दबाव, धन, पहुँच का बोलबाला है। ऐसे में कोई सामान्य व्यक्ति अपनी परेशानियाँ कैसे सुलझाए। आजादी से पूर्व अंग्रेजी अफसरों के अत्याचार, शोषण, प्रताड़ना से त्रस्त आम जनता ने आजादी के बाद चैन की साँस लेने की कल्पना की, मगर अब सरकारी अफसर ही वह भूमिका अदा करने लगे। भोलाराम का जीव कहानी सरकारी पदों पर जमें बदामश, घूँसखोर, अधिकारियों की कारगुजारियों का

पर्दाफाश किया है कि वे किस तरह अपने व्यक्तिगत लाभ हेतु एक गरीब व्यक्ति को उसकी आजीविका की एकमात्र आधार पेंशन से अपने व्यक्तिगत लाभ बाबत् वंचित रखते हैं।

स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दुस्तान में लघु कथात्मक व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से जीवन के उलझे हुए प्रसंगों को जिस बारीकियों से परसाई ने उकेरा है, वह अद्वितीय है। उनके सारगर्भित लेखन की कोई मिसाल नहीं मिलती है। परसाई के व्यंग्यों ने युगान्तकारी परिवर्तन की आधारशिला रखी। मानव की न्यूनताओं, उसकी कमजोरियों के शाब्दिक रेखाचित्र उन्होंने व्यंजना के साथ प्रस्तुत किए। देश की आजादी से पूर्व की स्थिति का यदि आंकलन करना हो, तो उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द को पढ़िए एवं यदि स्वातन्त्रोत्तर हिन्दुस्तान देखना हो तो हमें हरिशंकर परसाई को पढ़ना चाहिए। स्वातन्त्रोत्तर भारत के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पतन की पूरी झाँकी परसाई के व्यंग्यों में मिलती है। चारित्रिक गिरावट, आडम्बर एवं विसंगतियों का पर्दाफाश करते हुए उनके व्यंग्य जनमानस को उद्वेलित क़रते हैं। स्वतन्त्रता के उपरान्त हमारे सारे मानव मूल्यों का ह्रास हुआ है।

विश्लेषण—पौराणिक पात्रों को आधार बना, वर्तमान में शासकीय विभागों में व्याप्त विसंगतियों का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख गिया है। यमराज के पास प्रस्थान करते हैं। तभी रास्ते में भोलाराम का जीव कहीं गायब हो जाता है, यमदूत परेशान हो जाते हैं। वे सारा ब्रह्माण्ड छान मारते हैं अगर भोला का जीव उन्हें नहीं मिलता, अन्ततः वे वापस यमराज महाराज के पास पहुँचते हैं, वहाँ से यमराज जी नारद जी का पृथ्वी पर भोलाराम के जीव का पता करने भेजते हैं। नारज दी भोलाराम की पत्नी से मिलते है। भूखे बच्चे, परेशान फटेहाल भोलाराम की पत्नी को देख नारद जी उसकी हालत पर दया कर भोलाराम की रूकी हुई पेंशन निकलवाने सरकारी दफ्तर जाते हैं। वहाँ वे पेंशन के विषय में पूछताछ करते हैं, वहाँ सरकारी मामले में बैठकर घूँसखोर बाबू आगन्तुकों से अपने ही ढंग से घूँस की माँग करते हैं।

वहाँ से चलकर नारद जी सीधे सरकारी दफ्तर पहुंचे, वहाँ पहले ही कमरे में बैठे बाबू से भोलाराम के केस के बारे में बातचीत की, उस बाबू ने उन्हें ध्यानपूर्वक देखा और बोला- भोलाराम जी ने दरख्वास्त तो भेजी थी, पर उन पर वजन नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ गयी होगी।'' नारदजी ने कहा भई ये बहुत से पेपर वेट तो रखे हैं, इन्हें क्यों नहीं रख दिया ?

बाबू हँसा- आप साधु हैं आपको दुनियादारी समझ में नहीं आती, दरख्वास्त पेपर वेट से नहीं दबती।

सरकारी दफ्तरों में बिना घूँस लिए कोई भी काम नहीं होता। बाबुओं द्वारा माँगी गयी अपेक्षित राशि आदि आप नहीं उपलब्ध करा सकते तो फिर चाहे आप नियमानुसार सही कार्य ही क्यों न कराना चाहते हो, आपके कागजों में कोई न कोई कमी निकालकर निरन्तर आपको प्रताड़ित किया जाता रहेगा और फिर आप कार्यालय के पचीसों चक्कर लगा चुकेंगे, फिर पूछेंगे, अब मैं क्या करूँ तो वहाँ कार्यालय में वर्षों से जमा चपरासी ही आपको समझा देगा कि बाबुओं को, साहबों को घूँस देवें तभी काम होगा। वे एक नासमझ आदमी को भी घूँस देने का तरीका बता देंगे। सरकारी ऑफिसों के इस भ्रमजाल में जब स्वर्ग लोक से आये नारद जी फँसे तो लम्बे चक्कर काटने के बाद ही उन्हें समझ आया कि काम ऐसे नहीं चलेगा। परसाई जी ने बड़े ही सटीक तरीके से व्यंग्य किया है-

नारद उस बाबू के पास गये, उसने तीसरे के पास भेजा, तीसरे ने चौथे के पास, चौथे

ने पीछे से बात, तब चार-पाँच बौरे बाबुओं, अफसरों के पास घूम आये, तब एक सज्जन ने कहा- "महाराज आप व्यर्थ इस झंझट में पड़ गए, आप अगर साल भर भी यहाँ चक्कर लगाते रहें तो भी काम नहीं होगा। आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए, उन्हें खुश कर दिया तो सभी काम हो जायेगा।"

थोड़े आगे चलने पर फिर वही-वही चक्कर फिर लगाने पड़े, कोई भी काम नहीं हुआ। काम आदमी अपने रोजी-रोटी की समस्याओं से जूझता कुछ तरह परेशान रहता है, मगर सरकारी दफ्तरों के चक्कर बाबुओं को इससे भला क्या सरोकार। ये तो बस अपना हल्दू सोचे बैठा बाबू है, इन्हें तो बस पैसा चाहिए। भगवान बाबू ने एक कड़वी सच्चाई को हमारे सामने रखा है। भगवान की अधिकांश रचनाएँ ऐसे ही तथ्यों को भण्डाफोड़ करती है।

भगवान की रचनाओं के विषय में अवधेश सिंह ने लिखा है कि, "भगवान बाबू की अधिकांश रचनाओं में एक चुभता आक्रोश है। व्यवस्था पर, परिवेश पर, आचरण पर, संस्कारों पर, और अन्ततः सभी रचनाओं में बदलते मूल्यों और क्रान्तिकारी शक्तियों और परम्पराओं के प्रति गहरा सम्मान भाव है। उपेक्षित और शोषित वर्गों के प्रति सहानुभूति है और जीने का दृष्टिकोण है।"

भगवान बाबू ने सामाजिक परिस्थितियों पर कलम चलाई। अशिक्षित भाषा का अभाव किया। भ्रष्टाचार को हिमायत करने वाले इसके व्यंग्य भाव मन पर बड़ा असर डालते हैं। कमलापति, बाबू मुंशी साहिब सभी द्वारा अब गाबद बाबू को इशारे से भोलाराम की फाइल पर वजन रखने को कहा जाता है, पर जब गाबद नहीं समझते तो बड़े साहब उसे वजन रखने का तात्पर्य समझाते हैं। कमलापति ने लेकर बड़े साहिब तक सभी आकंठ भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं। कौन चूके। बड़े साहिब तो सामने वाले के पास जो कुछ है बस वही या लेने के इच्छुक हैं। नैतिक मूल्य का यह उदाहरण देखें- "साहिब ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा- मगर वजन चाहिए, आप समझे नहीं... जैसे आपकी यह सुन्दर-सुन्दर सोना है इसका भी वजन भोलाराम की दरखास्त का पड़ा दे सकता है। मेरी लड़की गाना बजाना सीखती है, यह मैं उसे दे दूँगा।"

सरकारी महिकमों में मंत्रालय विभागीय अधिकारी तक सिके लूट खसोट में लगे रहते हैं, उन्हें अपनी कार्यान्वितता, वैयक्तिक जिम्मेदारियों के पूरा करने से कोई मतलब नहीं है। भोलाराम रिटायर होने के पश्चात् अपनी आजीविका की एकमात्र किरण अपनी पेंशन के सिलसिले में ऑफिस के लिए चक्कर लगाता है। उसको भागदौड़ करते-करते वह थक जाता है, मुँह तक से टूट जाता है। फिर जाता है। परिवार भूखों मरने लगता है, धीरे-धीरे सोना, चाँदी, बेचा, बर्तन सब बिक जाते हैं। वह निराशा के गहन अन्धकार में डूबते उतराते अपने पेंशन अकाउन्ट के मुकदमे को लड़ने की तमन्ना लिये अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यमदूत जब भोलाराम के जीव को लेकर स्वर्ग लोक के लिए प्रस्थान करते हैं तो वह रास्ते में ही कहीं गुम हो जाता है। यमदूत सारा ब्रह्माण्ड छान मारते हैं, फिर भी उन्हें भोलाराम का जीव नहीं मिलता। यमराज नारद जी को पृथ्वी पर भेजते हैं। तब वहाँ भोलाराम का जीव अपनी पेंशन की फाइलों में अटका हुआ मिलता है।

भगवान बाबू ने यहाँ बहुत ही मार्मिक ढंग से व्यंग्य किया है, यथा- साहब ने हुक्म दिया- अरे बाबू से भोलाराम के केस की फाइल लाओ, थोड़ी देर बाद चपरासी भोलाराम की सौ, डेढ़ सौ अर्जियों में भरी फाइल लेकर आया। उसमें पेंशन के कागजात भी थे। साहब ने फाइल पर नाम देखा और निश्चित करने के लिए पूछा क्या नाम बताया, साधु जी आपने।

नारद समझे कि साहब कुछ ऊँचा सुनता है, इसलिए जोर से बोले- "भोलाराम" साहसा फाइल में से आवाज आयी कौन पुकार रहा है मुझे- पोस्ट मैन है क्या, पेंशन का आर्डर आ गया।"

एक गरीब आदमी जो शासकीय नौकरी से रिटायर हो चुका हो, सर्वत्र छाये भ्रष्टाचार के कारण हमेशा परेशान रहता है, उसके आय के स्त्रोत काफी कम होते हैं। वह चाहता है कि रिटायर होने के बाद न जाने कब उसकी मृत्यु हो जाये, उसे अपने परिवार के भविष्य की फिक्र रहती है। वह चाहता है कि उसके न रहने पर भी परिवार का जीवन-यापन क्रम चलता रहे। परसाई जी ने भोलाराम के बहाने सारे तमाम नौकरी पेशा मध्यमवर्गियों की स्थिति का खुलासा किया है। पौराणिक कथा को आधार बनाकर लिखा। उनका यह व्यंग्य अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। भोलाराम किसी रोग से ग्रसित नहीं हुआ था, अपितु वह गरीबी की बीमारी के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ था। नारद जी के रामलोक चलने के आग्रह पर भोलाराम का जीव का यह कहना है कि मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता। मैं प्रबंध वक्रता के सफल निदर्शन दिखलाई पड़ते हैं। अधिकारियों की चारित्रिक भ्रष्टता, उनकी मृत होती संवेदना क्षमता रिश्वत खोरी आदि का वक्रोक्तियों द्वारा पर्दाफाश किया गया है। ■

प्रश्न 16. 'एक दीक्षांत भाषण' व्यंग्य लेख की समीक्षा कीजिए।

उत्तर-

एक दीक्षांत भाषण की समीक्षा

हरिशंकर परसाई हिन्दी के विलक्षण एवं विशिष्ट व्यंग्यकार हैं। एक दीक्षांत भाषण उन्हीं का एक महत्वपूर्ण व्यंग्य लेख है, जो राजमहल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'परसाई रचनावली' (खंड 4) में सम्पादित-संकलित है। इसें मुख्य रूप से एक मंत्री महोदय के दीक्षांत भाषण के माध्यम से आज की भारतीय राजनीति के उस कलुषित चरित्र पर चौतरफा व्यंग्य-प्रहार है, जो शिक्षा-संस्कृति के साथ ही जीवन-जगत् के सभी व्यवहार क्षेत्रों को अपना चारागाह समझता है।

एक विश्वविद्यालय में दीक्षांत समारोह का आयोजन है। अत: दीक्षांत भाषण के लिए मंत्री महोदय बुलाये गये हैं। उनके बुलाये जाने के पीछे उनकी योग्यता नहीं, बल्कि अनुदान रूकवाये जाने का डर रहा है। मंत्री महोदय के भाषण से आज के सफेदपोश नेताओं की असलियत उजागर होती है। सर्वप्रथम उन्होंने विद्यार्थियों को संबोधित कर इस बात पर हर्ष जताया कि इस समारोह में छात्रों से ज्यादा सिपाहियों की उपस्थिति है। इस बात को लेकर सरकार और समाज की जो तारीफ की गई है, भला वह कौन होगा, जो सोचने पर मजबूर न होगा। भाषण निरन्तर जारी है, अल्पविराम या अर्द्धविराम की कोई जरूरत नहीं, वह एक ही बार पूर्ण विराम लेगा।

बीच-बीच में यद्यपि श्रोता-दीर्घा से अवरोध भी उत्पन्न होता है, पर भाषण के भूखे मंत्री को कोई परवाह नहीं। वे तो फूले नहीं समा रहे हैं कि उन्हें शिक्षित नवयुक्त हूंट कर रहे हैं। इसी संदर्भ में यह कितना कटु व्यंग्य प्रकट है कि आजकल बृहस्पति जैसे गुरू तो ऐसे समारोहों में आने से इन्कार करेंगे, जबकि मंत्री जैसे धन-मद और मूर्खता के आत्मविश्वासी सहर्ष तैयार होते हैं। भाषण-क्रम में मंच पर कंकड़ फेंके जाने और मंत्री द्वारा अंडे फेंके जाने की बात से देश की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। पुन: जानवरों की बोली बोलने के उदाहरण द्वारा वर्तमान समय के तरूण छात्र-छात्राओं का चारित्रिक छिछलापन उजागर हो जाता है।

अन्त में, मंत्री महोदय प्रबोधन की मुद्रा में आते हैं और युवकों को देश की आशाएँ बताते हैं और उन्हें भविष्य निर्माता कहते हैं, क्योंकि अभी तो उनके जैसे लोग बिगाड़ने का काम कर ही रहे हैं। इसी संदर्भ में युवक द्वारा समय-असमय चलाये जाने वाले आन्दोलनों का जिक्र है, जिसके पीछे क्षुद्र स्वार्थों का प्राबल्य होता है, कोई बड़ा उद्देश्य या विचार नहीं। मंत्री संदेश स्वरूप सत्य की अनूठी व्याख्या पेश करते हुए यहाँ तक कहते हैं कि यदि आपको सत्य डिग्री लेना है तो उसके लिए आप नकल, पेपर आउट से अध्यापक से मारपीट तक बखूबी करें। वर्तमान शिक्षा-पद्धति की कैसी सीधी-सच्ची तस्वीर है यह! बाद में मंत्री छात्रों से राजनीति में भाग न लेने की अपील करते हैं, ताकि उनकी गंदी राजनीति खूब चलती रहे। साथ ही, यहाँ पर ऐसे समारोहों में डॉक्टरेट जैसी उपाधियों को खुशामद स्वरूप प्रदान किए जाने की बात कितनी बड़ी बिडम्बना को किस तल्खी से उजागर करती है, वह सहज ही अनुभवगम्य है।

संक्षेपतः एक दीक्षांत भाषण परसाई जी का एक ऐसे व्यंग्य लेख है, जो हमारे वर्तमान समय की राजनीति के साथ ही शैक्षिक एवं सामाजिक क्षेत्र की ढेर सारी विसंगतियों को बड़ी तल्खी से उभारकर सामने ला देता है। प्रस्तुत लेख की भाषा बड़ी धारदार है, जिसके मारक प्रभाव से पाठक अछूता नहीं रह पाता।

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. कई साल पहले एक साहित्यिक समारोह में मेरी ही उम्र के एक सज्जन ने सबके सामने मेरे चरण छू लिये। वैसे चरण छूना अश्लील कृत्य की तरह अकेले में ही किया जाता है। पर वह सज्जन सार्वजनिक रूप से कर बैठे तो मैंने आसपास खड़े लोगों की तरफ गर्व से देखा-तिलचट्टों, देखों में श्रद्धेय हो गया। तुम घिसते रहो कलम। पर तभी उस श्रद्धालु ने मेरा पानी उतार दिया। उसने कहा, "अपना तो यह नियम है कि गौ-ब्राह्मण के चरण जरूर छूते हैं।" यानी उसने मुझे बड़ा लेखक नहीं माना था, ब्राह्मण माना था।

प्रसंग—प्रस्तुत व्याख्यांश महाव्यंग्यकार श्री हरिशंकर परसाई द्वारा लिखित 'विकलांग श्रद्धा का दौर' निबन्ध से है। इसमें लेखक ने श्रद्धेय होने के आधार पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि-

व्याख्या—कुछ वर्षों पूर्व जब वह किसी एक साहित्यिक आयोजन में शरीक हुआ था, तब उसके पास एक सज्जन आए। वह उससे प्रभावित हो गए। फिर उन्होंने उसके चरणों का स्पर्श सबके सामने निःसंकोचपूर्वक करना अपना परम धर्म समझा। यही नहीं वह ऐसा कर भी लिए। लेखक का यह मानना है कि किसी का चरण-स्पर्श करना एक फूहड़ कर्म के रूप में समझा जाता है। इसलिए यह सब कुछ सबके सामने नहीं किया जाता है, अपितु अकेले में किया जाता है और चुपचाप किया जाता है। लेखक को उस व्यक्ति के द्वारा उसके चरणों को सबके सामने ही स्पर्श करना अच्छा नहीं लगा। फिर भी लेखक को बहुत बड़ा घमण्ड हो गया कि उसे यहाँ उपस्थित लोगों में सबके सामने ही श्रद्धेय होने का सम्मान प्राप्त हो गया है। इसलिए उसने मन-ही-मन सबको फटकारते हुए कहा था- "ओ तिलचट्टों! तुम जीवन भर लेखक बनने के लिए खून-पसीना एक करते रहो, लेकिन मेरा यह दर्जा तुम्हें नहीं प्राप्त हो सकता।" इसी समय मानो उसके विरोध में उस चरण-स्पर्शकर्ता ने स्पष्टतः वह

दिया- वह तो नियमानुसार गौ-ब्राह्मणों के ही चरणों को स्पर्श करता है। इससे सेठ का अहंभरा गर्व भाव समाप्त हो गया। उसका चेहरा फीका पड़ गया।

विशेष—1. श्रद्धेय होने के आधार और उसके प्रभाव का सुन्दरविश्लेषण है।

2. शैली दृष्टान्त है। 3. भाषा सरल है। 4. सम्पूर्ण अंश तीखे व्यंग्य से भरा है।

2. सोचता हूँ, लोग मेरे चरण अब क्यों छूने लगे हैं? यह श्रद्धा एकाएक कैसे पैदा हो गई? पिछले महीनों में मैंने ऐसा क्या कर डाला? कोई खास लिखा नहीं है। कोई साधना नहीं की। समाज का कोई कल्याण भी नहीं किया। दाढ़ी नहीं बढ़ाई। भगवा भी नहीं पहना। बुजुर्गी भी कोई नहीं आई। लोग कहते हैं, वे वयोवृद्ध हैं और चरण छू लेते हैं। वे अगर कमीने हुए तो उनके कमीनेपन की उम्र भी 60-70 साल की हुई। लोग वयोवृद्ध कमीनेपन के भी चरण छू लेते हैं। मेरा कमीनापन अभी श्रद्धा के लायक नहीं हुआ है।

प्रसंग—प्रस्तुत व्याख्यांश महाव्यंग्यकार श्री हरिशंकर परसाई जी द्वारा लिखित "विकलांग श्रद्धा का दौर' निबन्ध से है। इसमें परसाई जी ने श्रद्धा के उत्पन्न होने के विषय आत्मचिन्तन व्यक्त करते हुए कहा है कि-

व्याख्या—मैं लगभग यह सोचा-समझा करता हूँ कि आजकल लोग मेरे चरणों को स्पर्श करके मुझे श्रद्धेय बनाते जा रहे हैं। लोगों की हमारे प्रति यह क्यों श्रद्धा बढ़ती जा रही है। मैं कुछ इस विषय में नहीं समझ पा रहा हूँ। जब कभी मैं इस विषय में सोचता तो बहुत तरह से सोचता हूँ। वह इस तरह की आखिर मैंने बीते हुए समय में कौन-से ऐसे महत्वपूर्ण और विशिष्ट कार्य किए हैं, जिनके मूल्यांकन करके मुझे श्रद्धेय का दर्जा दिया जा रहा है। न तो मैंने कोई विशेष साहित्य-सर्जना की है और न मैंने कोई तपस्या-साधना भी की है। मैंने कोई बहुत बड़ा सामाजिक कार्य भी नहीं किया है। दाढ़ी बढ़ाकर के कोई भगवा वस्त्र भी धारण नहीं किया है। इसी तरह मेरी कोई इतनी उम्र भी नहीं है कि उससे मैं कोई बड़ा वृद्ध कहा जा सकूँ जिससे मैं श्रद्धेय कहा जा सकूँ। लेकिन लोगों की यह आम धारणा है कि मैं काफी बुजुर्ग हूँ। मेरी बुजुर्गी बुलन्दी पर है, इससे लोगों का मेरे प्रति श्रद्धा से भींग जाना उन्हें स्वाभाविक लगता है। और वे इसीलिए मेरा चरण-स्पर्श कर लेते हैं। इस आधार पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि अगर कोई साठ-सत्तर साल का है और वह कमीना और घटिया आदमी है, तब भी उसे श्रद्धेय होने का दर्जा मिल जायेगा। इस तरह लोग वयोवृद्ध कमीने को भी श्रद्धेय मानकर उसके चरण-स्पर्श कर लेते हैं। लेकिन जब मैं अपने विषय में विचार करता हूँ तो यह पाता हूँ, मैं भले ही कमीना क्यों न हूँ, लेकिन अभी मैं वयोवृद्ध नहीं हूँ। इसलिए श्रद्धेय होने का दर्जा इस आधार पर मिलना सम्भव नहीं है।

विशेष—1. भाव गम्भीर और मर्मस्पर्शी हैं।

2. शैली बोधगम्य है।

3. विचारात्मकता इस अंश की सर्वप्रमुख विशेषता है।

4. सम्पूर्ण अंश रोचक और हृदयस्पर्शी है।

3. चित्रगुप्त ने कहा, "महाराज आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को फल भेजते हैं और रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं। होजरी के पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डिब्बे के डिब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है।

राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर कहीं बन्द कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी तो किसी विरोधी ने, मरने के बाद भी खराबी करने के लिए नहीं उड़ा लिया?''

सन्दर्भ तथा प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश भोलाराम का जीव नामक पाठ से लिया गया है। इस अंश में लेखक ने चित्रगुप्त के कथन के माध्यम से देश में व्याप्त भ्रष्टाचार पर व्यंग्य का तीर चलाया है।

व्याख्या—यमदूत ने जब कहा कि भोलाराम के जीव का गायब हो जाना जादू जैसा लगता है, तो चित्रगुप्त धर्मराज से बोले कि इन दिनों धरती पर इस प्रकार का माल उड़ाने का और अपहरण का धंधा बहुत चल रहा है। अगर कोई व्यक्ति अपने मित्र को रेलवे द्वारा फल भेजता है तो रेलवे कर्मचारी उन फलों को रास्ते में ही निकाल लेते हैं। हौजरी (मोजे, बनियान आदि) के सामान से भरे पार्सल ठिकाने पर नहीं पहुँच पाते। उनके मोजे, बनियान आदि रेलवे के अधिकारी मुफ्त में काम में लाते हैं। पार्सल तो दूर की बात है रेलगाड़ी के पूरे डिब्बे जिनमें माल भरा हो, रास्ते में ही उनका ताला काटकर पूरा माल साफ कर दिया जाता है और उनका सामान चोर बाजारियों को बेच दिया जाता है। इसके अलावा एक और गन्दा धन्धा पृथ्वी पर चल रहा है। राजनीतिक नेता लोग अपने विरोधी दलों के नेताओं को अगवा कराके कहीं बन्द कर देते हैं। हो सकता है कि भोलाराम का भी कोई विरोधी रहा हो और उसने भोलाराम से मरने के बाद भी बदला लेने की नीयत से उसका अपहरण करा दिया हो।

विशेष—(1) भाषा सरल और मिश्रित शब्दावली युक्त है। तथा 'उड़ा लेना' मुहावरे का सटीक प्रयोग हुआ है।

(2) शैली व्यंग्यात्मक, वर्णनात्मक और बरबस हँसा देने वाली है।

4. धर्मराज ने कहा, ''वह समस्या तो कभी की हल हो गई मुनिवर! नरक में पिछले सालों में बड़े गुणी कारीगर आ गये हैं। कई इमारत के ठेकेदार, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनायीं। बड़े-बड़े इंजीनियर आ गये हैं, जिन्होंने ठेकेदार से मिलकर भारत की पंचवर्षीय योजना को पैसा खाया। ओवरसीयर हैं, जिन्होंने उन मजदूरों की हाजिरी भरकर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गये ही नहीं।

सन्दर्भ तथा प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश 'भोलाराम का जीव' नामक पाठ से लिया गया है। इस अंश में लेखक ने भ्रष्टाचार में लिप्त सरकारी अधिकारियों और ठेकेदारों की हिस्सेदारी का चित्रण किया है।

व्याख्या—धर्मराज और चित्रगुप्त का वार्तालाप चल रहा था कि वहाँ नारदमुनि आ पहुँचे। धर्मराज को चिन्तित देखकर उनसे पूछा कि क्या वह नरक में निवास स्थान की कमी होने की समस्या के कारण उदास थे? धर्मराज ने कहा कि वह समस्या तो बहुत दिन पहले हल हो गई। पृथ्वी लोक से नरक आने वाले भवन निर्माण के होशियार कारीगरों और भागीदारों के सहयोग से काम पूरा हो गया। इन लोगों में सरकारी भवन बनाने वाले ठेकेदार हैं, जिन्होंने पैसे पूरे लिए, लेकिन इमारतों में खराब सामान लगाकर खूब धन कमाया। भारत से आए बड़े-बड़े इंजीनियरों की सेवाएँ भी हमें प्राप्त हुईं, जिन्होंने वहाँ की पंचवर्षीय योजनाओं में ठेकेदारों से मिलकर सरकार को चूना लगाया। इनमें कुशल ओवरसीयर भी हैं, जिन्होंने कभी काम पर नहीं आए मजदूरों की फर्जी हाजिरी लगाकर उनकी मजदूरी अपनी जेब के हवाले की। इस प्रकार नरक की आवास समस्या बड़ी सरलता से हल हो गई।

विशेष—(1) भाषा में मिश्रित शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

(2) भाव को व्यक्त करने के लिए सही शब्दों का चुनाव करने में परसाई जी बड़े कुशल हैं। 'गुणी-कारीगर' ऐसा ही शब्द है।

5. साहब ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा, "मगर वजन चाहिए। आप मसझे नहीं। जैसे, आपकी सुन्दर वीणा है, इसका भी वजन भोलाराम की दरख्वास्त पर रखा जा सकता है। मेरी लड़की गाना-बजाना सीखती है। यह मैं उसे दूँगा। साधुओं की वीणा तो बड़ी पवित्र होती है। लड़की जल्दी संगीत सीख गई, तो उसकी शादी हो जायेगी।"

सन्दर्भ तथा प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश 'भोलाराम का जीव' नामक पाठ से लिया गया है। इस अंश में साहब भोलाराम की पेंशन का पैसा दिलाने के बदले नारद से उनकी वीणा की माँग कर रहा है।

व्याख्या—साहब ने पेंशन दिए जाने में शीघ्रता का उपाय बताते हुए एक 'मगर' शब्द जोड़ दिया। नारद ने जब मगर या लेकिन शब्द का अर्थ जानना चाहा तो साहब ने बड़ी बेहयाई से उनकी सुन्दर वीणा की माँग कर डाली। धूर्तता भरी मुस्कराहट के साथ बोला कि दरख्वास्त पर वजन चाहिए। यह वजन आपकी इस सुन्दर वीणा का भी हो सकता है। वीणा दे देने से आप बड़ा उपकार का काम भी करेंगे, साहब ने बताया कि उसकी लड़की गाना-बजाना सीख रही है। यह उसके काम आ जाएगी। अगर कन्या ने संगीत जल्दी सीख लिया तो उसका विवाह आसानी से हो जाएगा। आप जैसे साधुओं की तो वीणा भी बड़ी पवित्र होती है। इसके प्रभाव से एक कन्या का उद्धार हो जाएगा।

विशेष—(1) बोलचाल की भाषा का प्रयोग है। (2) शैली व्यंग्य से भरपूर है।

6. "मैं जानता हूँ कि यदि में मंत्री न होता, तो कानूनी डॉक्टर क्या कंपाउंडर भी मुझे कोई न बनाता।'

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत व्यंग्यात्मक पंक्ति 'एक दीक्षान्त भाषण' शीर्षक व्यंग्य लेख से उद्धृत है। इसके लेखक सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई हैं। इस पाठ में लेखक ने मंत्री महोदय के भाषण के माध्यम से आज की राजनीति और शैक्षिक हकीकत को उजागर करने की भरपूर कोशिश है। प्रस्तुत कथन भाषाणांत में नेताजी द्वारा कथित है।

प्रस्तुत पंक्ति में नेताजी दीक्षांत समारोह में भाषण कर रहे हैं। इसी क्रम में अन्त में वे यह बताते हैं कि आज इस समारोह में मुझे विश्वविद्यालय की ओर से डॉक्टरेट की मानद उपाधि मिलने वाली है। हालाँकि मैं इसके काबिल कदापि नहीं। वास्तव में यह मेरे मंत्री बनने का लाभ है। यदि मैं मंत्री न बनता तो मुझे डॉक्टर क्या, कंपाउंडर भी कोई न बनाता। इस प्रकार यह कथन जहाँ नेतावर्ग की योग्यता-क्षमता पर ऊँगली उठाता है, वहीं वर्तमान शैक्षिक जगत् की सिद्धान्तविहीनता और पथभ्रष्टता पर भी बड़ा कड़ा प्रहार करता है। इस प्रकार लेखक कहना चाहते हैं कि आज सर्वत्र शक्ति की पूजा होती है निर्बल व्यक्ति को हमेशा उपेक्षा का दंश झेलना पड़ता है।

7. मेरे साहस का कारण यह है कि मैं बृहस्पति की तरह ज्ञानी हूँ। ज्ञानी कायर होता है। अविद्या साहस की जननी है। आत्मविश्वास कई तरह का होता है- धन का, बल का, ज्ञान का। मगर मूर्खता का आत्मविश्वास सर्वोपरि होता है।

व्याख्या—'एक दीक्षांत भाषण' व्यंग्य से ली गई इन पंक्तियों में हरिशंकर परसाई जी ने यह बताया है कि आत्मविश्वास सबसे बड़ी शक्ति होती है। यह विश्वास कई वस्तुओं

पर आधारित होता है। जैसे धन पर, बल पर और ज्ञान पर। मगर इन सबसे वड़ी चीज है मूर्खता। जो मूर्ख होते हैं वे अति आत्मविश्वासी होते हैं। अत: वे कोई भी मूर्खता निर्द्वन्द्व होकर कर सकते हैं। इसके विपरीत ज्ञानी के पास बुद्धि होती है, अत: कोई कार्य करने के पहले परिणाम के विषय में सोचता है और जहाँ परिणाम विपरीत ज्ञात होता है, हानि की सम्भावना होती है, वहाँ वह कोई खतरा नहीं लेता। इसीलिए ज्ञानी को कायर कहा जाता है। अपने विपय में मंत्री बतलाता है कि वह मूर्ख है। अत: वह छात्रों द्वारा हूट किए जाने के परिणाम को जानते हुए भी भाषण करने चला आया है। प्रकारान्तर से वह कहना चाहता है कि नेता मूर्ख होते हैं। अत: उनमें आतमविश्वास अधिक होता है। इसी आत्मविश्वास के सहारे वे किसी भी खतरे में कूद पड़ते हैं। कोई सोच विचार नहीं करते हैं।

8. ''वर्तमान की चिन्ता आप न करें। वर्तमान को तो हम बिगाड़ रहे हैं। यदि हम वर्तमान को नहीं बिगाड़ेंगे तो आप भविष्य को कैसे बनायेंगे? आपको भविष्य बनाने का मौका देने के लिए हम वर्तमान को बिगाड़ रहे हैं। यह आपके प्रति हमारा दायित्व है।''

व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियाँ व्यंग्य रचना एक दीक्षान्त भाषण से ली गई हैं। यह रचना एक नेता द्वारा किए गए भाषण के रूप में है। इन पंक्तियों में नेता के माध्यमों से लेखक छात्रों को यह वताना चाहता है कि छात्रों को देश का भविष्य निर्माता कहा जातता है। खासकर नेता इस जुमले का वहुत प्रयोग करते हैं। लेखक का पक्ष है, जव वर्तमान विगड़ा रहेगा तभी न भविष्य में वनाने की जरूरत पड़ेगी। इसी जरूरत की पूर्ति के लिए नेता देश का वर्तमान विगाड़ रहे हैं।

इस तरह लेखक सीधे शब्दों में मंत्री के वहाने कहना चाहता है कि देश के सारे नेता मूर्ख और अयोग्य हैं। वे देश को बिगाड़ रहे हैं। ■

इकाई-5

महादेवी वर्मा - पथ के साथी

प्रश्न 17 महादेवी वर्मा द्वारा रचित संस्मरण ''पथ के साथी'' की अंतर्वस्तु का वर्णन कीजिए।

उत्तर- महादेवी वर्मा - पथ के साथी संस्मरण की अंतर्वस्तु

महादेवी वर्मा द्वारा लिखित संस्मरणों का संकलन 'पथ के साथी' 1950 में प्रकाशित हुआ था। इस शीर्षक से ही इस संकलन की प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। इसमे उनके उन सहयोगियों और सहकर्मियों की चर्चा है, जो उनकी रचना-यात्रा में उनके साथ-साथ चले। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत, सुभद्राकुमारी चौहान, नरेन्द्र शर्मा आदि हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान के बारे में लिखा उनका संस्मरण इस इकाई में पाठ के रूप में सम्मिलित किया गया है। हिन्दी समाज उनके नाम से भली-भाँति परिचित है। देश भक्ति से परिपूर्ण वीरता और ओज से भरे गीतों के लिए वह अत्यन्त प्रसिद्ध रही है। 'खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झांसी वाली रानी थी' आज भी लोगों में देश भक्ति का जोश भर देता है। इसी तरह 'वीरों का कैसा हो वसंत' गीत भी अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। इन्हीं सुभद्रा कुमारी चौहान पर महादेवी वर्मा ने यह संस्मरण लिखा है।

सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा दोनों एक ही विद्यालय में पढ़े थे। सुभद्रा जी महादेवी वर्मा से बड़ी थीं और अपने छात्र जीवन से ही कविता लिखने का उन्हें भी शौक था। यही वजह थी कि लड़कियाँ या तो कविताएँ लिखती ही नहीं थीं या लिखती भी तो छुप-छुपाकर। महादेवी वर्मा जी भी कविताएँ लिखती थीं। यह बात सुभद्रा जी को पता चली और फिर इन्हें कविताओं ने कवयित्रियों को एक-दूसरे के इतने करीब ला दिया।

सुभद्रा जी का विवाह उसी समय हो गया था, जब वह कक्षा आठ में पढ़ रही थीं। लेकिन ऐसे व्यक्ति के साथ जो स्वतंत्रता सेनानी था और जिसे लगातार कारागार की सजा होती रहती ती। ऐसे व्यक्ति की पत्नी बनने का अर्थ था, जीवन के दाम्पत्य सुखों को तिलांजलि देना और दुखों की शैय्या पर ही जीवन काट देना। लेकिन सुभद्रा जी ने ऐसा कुछ नहीं किया। अपने पति के साथ वह भी आजादी की लड़ाई में शामिल हो गईं और कारागर की यात्रा उनके जीवन की यात्रा भी बन गई। घर-गृहस्थी और बच्चों के लालन-पालन के साथ-साथ देश की आजादी को भी जीवन का हिस्सा बना लेना सरल काम नहीं था। यह किसी पुरुष के बस की बात नहीं हो सकती ती। महादेवी वर्मा ने उनके जीवन के इस पक्ष को अत्यन्त मार्मिक ढंग से उजागर किया है।

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरम्भ हुआ था, वह अन्त तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थी, यह सोचकर विस्मय होता है।

सुभद्रा जी के व्यक्तित्व पर रोशनी डालते हुए महादेवी वर्मा जी लिखती हैं कि अपने निश्चित लक्ष्य पथ पर अडिग रहना और सब कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था। आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद उनके चरित्र का यह पक्ष उन्हें और महान बना देता है। लेकिन राजनीतिक जागरूकता ही उनके व्यक्तित्व में नहीं थी, सामाजिक जागरूकता भी उतनी ही अधिक थी। कविता लिखकर जिस विद्रोही स्वभाव का परिचय उन्होंने बचपन में दिया था, वह जीवन पर्यंत रहा। अपने बच्चों पर किसी तरह का अंकुश लगाने की बजाए उन्होंने उन्हें स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ने का अवसर दिया। इसी तरह अपनी बेटी का अंतर्जातीय विवाह कर उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में जो साहस का परिचय दिया, वह इस बात से और भी मुखर रूप में सामने आता है कि उन्होंने यह कहते हुए कन्यादान की प्रथा का विरोध किया कि स्त्री कोई निर्जीव वस्तु नहीं है जिसका कि दान किया जा सके।

अपने पारिवारिक जीवन में ही नहीं सामाजिक-राजनीतिक जीवन में भी उन्होंने अपने प्रगतिशील साहसपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय बराबर दिया। महात्मा गाँधी की मृत्यु के बाद इलाहाबाद में अस्थि विसर्जन के अवसर पर हरिजन महिलाओं के अधिकारों के लिए उन्होंने जो संघर्ष किया, वह इसी बात का प्रमाण है।

अपने जीवन में सुभद्रा जी ने जो कुछ भी किया, महादेवी वर्मा ने अपने इस संस्मरण में उसके पीछे उनकी सुविचारित दृष्टि बताई है। सुभद्रा जी का यह कथन इस बात का द्योतक है कि समाज और परिवार व्यक्ति को बंधन में बाँधकर रखथे हैं। वे बंधन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए, वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। बंधन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न नियत किए गए हों, हैं बंधन ही, और जहाँ बंधन है वहाँ असंतोष तथा क्रांति है।''

सुभद्रा जी का उपर्युक्त कथन इस बात का प्रमाण है कि अपने समय और समाज के प्रति उनमें कितनी जागरूकता थी और सुविचारित दृष्टि के साथ सारी बातों को समझने की वे क्षमता

रखती थीं। सुभद्रा जी के व्यक्तित्व के इन पहलुओं को संस्मरण के माध्यम से महादेवी वर्मा ने जिस तरह से उजागर किया है, वह उनकी लेखनीय क्षमता का श्रेष्ठ प्रमाण है।

सुभद्रा कुमारी चौहन के असामयिक निधन के बाद सन् 1949 में जबलपुर में उनकी मूर्ति का अनावरण करते हुए महादेवी वर्मा ने कहा था, 'नदियों के जय-स्तमभ नहीं वनाए जाते और दीपक की लौ को सोने से नहीं मढ़ा जाता .... महादेवी वर्मा की इस उक्ति में उनके संस्मरण का प्रतिपाद्य भी ढूँढा जा सकता है। नदी और दीपक की लौ से सुभद्रा के व्यक्तित्व की तुलना करके वे जैसे उनकी गतिशीलता और तेजस्विता को ही श्रद्धांजलि दे रही थीं। लेकिन उनके व्यक्तित्व के प्राकृतिक गुणों के सम्पूर्ण स्वीकार के बावजूद इसमें किसी प्रकार की अतिरंजना का निषेध भी शामिल है। 'पथ के साथी' के अन्य संस्मरणों की तरह सुभद्रा के व्यक्तित्व के भी वे आधारभूत मानवीय पक्षों पर अपने को केन्द्रित करके चलती है। ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो महादेवी वर्मा के काव्य की अपेक्षा उनके गद्य को अधिक जीवन्त और यथार्थवादी मानते हैं। उनके गद्य की इस जीवंतता का कारण उनका यही यथार्थ और वास्तव के प्रति उनका लगाव है। संस्मरण के केन्द्र में रखे गए व्यक्ति को वे भरपूर आदर देती है। आत्मीयता और अंतरंगता की झिलमिल ज्योति उस व्यक्तित्व के चारों और झिलमिलाती है, लेकिन वास्तविकता की जमीन पर खड़ी होकर ही वे उसके गुणों का बखान करती हैं।

सुभद्रा के संस्मरण में भी सुभद्रा के जीवन का यथार्थ, आर्थिक अभाव और अपनी गृहस्थी के साम्राज्य के प्रति उनकी छोटी-छोटी आकांक्षाएँ इस संस्मरण को गहरी विश्वसनीयता देता है। उनका सारा ध्यान व्यक्ति की विशिष्टताओं को पकड़ने पर केन्द्रित रहता है। इस प्रक्रिया में उस केन्द्रीय व्यक्तित्व की चिंता ही उनकी मुख्य रचनात्मक चिंता होती है। वे उसी का संस्मरण लिखती हैं। उसके बहाने अपना नहीं। युगीन परिवेश के विस्तार में जाकर वे केन्द्रीय व्यक्तित्व की चारित्रिक रेखाओं को धूमिल नहीं करती। क्षुद्रताओं की अपेक्षा वे व्यक्तित्व की विराटता से साक्षात्कार को ही अपने संस्मरण का प्रस्थान बिन्दु मानकर अपनी रचना-यात्रा शुरू करती है। संस्कृत साहित्य, भारतीय संस्कृति और दार्शनिक परम्पराओं का विशाल भंडार उनके सामने होने से वे उस व्यक्तित्व का आकलन इसी सुविस्तृत फलक पर करती है। उनकी रचना की प्रामाणिकता का मूल स्त्रोत भी वस्तुत: यही है। इन सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति अपने गहरे लगाव के कारण ही वे शायद मानती हैं कि मृतात्माओं के उज्जवल पक्ष का ही स्मरण किया जाना चाहिए। उन्हें स्मृति में धारण करके ही उन्हें मरण और विस्मरण से बचाया जा सकता है। ■

प्रश्न 18. 'पथ के साथी' में प्रस्तुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए।

उत्तर- पथ के साथी - रवीन्द्रनाथ ठाकुर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

रवीन्द्रनाथ ठाकुर पथ के साथी रेखाचित्र संग्रह का पहला रेखाचित्र है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति महादेवी की श्रद्धा ही दृष्टव्य है। महादेवी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दिव्य-भव्य साहित्यिक रूप के साथ-साथ उनकी कोमल भावनाओं का अंकन बड़े मार्मिक ढंग से किया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का यह चित्र सूक्ष्मतर से सूक्षमतम होता जाता है। प्रस्तुत चित्र के प्रारम्भिक पृष्ठों में कविवर की बाह्य सौम्यता को अंकित कर महादेवी ने उनकी आन्तरिक सौम्यता का भी चित्रण किया है। कवि का समग्र प्रभावयुक्त चित्र हमारे समक्ष इन शब्दों में

ता है, "अपनी कोमल उँगलियों से, असंख्य कलाओं को अटूट बंधन में बाँधे हुए, अपने येक पदनिक्षेप को, जीवन की अमर लय का ताल बनाए हुए कलाकार जब आँखों से ओझल जाता था, तब हम सोचने लगते, हमने व्यक्ति देखा है या किसी चिरंतन राग को रूपमय।" त चित्र में भावुकता अपनी चरमसीमा पर पहुँची है। महादेवी अपने स्वाभावानुसार वृद्ध हाकवि की उँगलियों में भी केवल कोमलता के माध्यम से उनकी कलात्मकता की सीढ़ियाँ बढ़ती हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बारे में महादेवी ने रवीन्द्र की आँखों की तीक्ष्णता, नाक का ुकीलापन, मुख की सौम्यता आदि के वर्णन तक ही अपने को सीमित नहीं रखा, बल्कि उनको देखने से व्यक्ति का मन उनके स्वभाव, चरित्र और गुण दोषों पर किस दृष्टि से विचार करने लगता है, उसका भी सांगोपांग वर्णन किया है। उनकी हँसी-उँगलियों का तथा उनकी प्रतिमा के चित्र का जैसा वर्णन लेखिका ने किया है, लगता है रेखाएँ बोल उठी हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की चर्चा करते हुए महादेवी ने महान् साहित्यकारों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के बारे में अपने अनुभूतिजन्य सत्य को प्रकट किया है। उनका कहना है, "महान् साहित्यकार अपनी कृति में इस प्रकार व्याप्त रहता है कि उसे कृति से पृथक् रखकर देखना और उसके व्यक्तिगत जीवन की सब रेखाएँ जोड़ लेना कष्ट-साध्य ही होता है। एक को तोलने में दूसरा तुल जाता है और दूसरे को नापने में पहला नप जाता है। वैसे ही जैसे घट के जल का नाप-तोल घट के साथ है और उसे बाहर निकाल लेने पर घट के अस्तित्व-अनास्तित्व का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अनुभूतिजन्य सत्य को प्रकट करना ही महादेवी का उद्देश्य रहा है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता, संगीतज्ञता एवं चित्रकला ने ही महादेवी को प्रभावित नहीं किया है, वे उनके रंगमंच कौशल से भी परिचित हैं। उन्हें यह जानकर दु:ख हुआ कि शान्ति निकेतन के लिए रवीन्द्र बाबू को नाटकों तक का आयोजन करना पड़ा था। महादेवी लिखती हैं, "जीवन की संध्या वेला में शांति निकेतन के लिए उन्हें अर्थ संग्रह में यत्नशील देखकर न कुतूहल न प्रसन्नता, केवल एक विषाद की अनुभूति से हृदय भर आया। हिरण्यगर्भा धरती वाला हमारा देश भी कैसा विचित्र है! जहाँ जीवनशिल्प की वर्णमाला भी अज्ञात है, वहाँ वह साधनों का हिमालय खड़ा कर देता है और जिसकी उँगलियों मे सृजन स्वयं उतरकर पुकारता है, उसे साधनशून्य रेगिस्तान में निर्वासित कर जाता है। निर्माण के इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि शिल्पी और उपकरणों के बीच में आग्नेय रेखा खींच कर कहा जाए कि कुछ नहीं बनता या सब कुछ बना चुका।" महादेवी ने रवीन्द्र बाबू के संघर्ष को विषद किया है।

महादेवी के मन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति पूज्य भाव हैं। लेखिका ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भारतीय संस्कृति, सभ्यता और जीवन दर्शन में असीम आस्था को दर्शाया है। ■

प्रश्न 19. महादेवी वर्मा द्वारा रचित मैथिलीशरण गुप्त संस्मरण में महादेवी वर्मा के विचारों को व्यक्त कीजिए।

उत्तर- 'मैथिलीशरण गुप्त' संस्मरण का महादेवी वर्मा के विचार

महादेवी वर्मा ने अपने रेखाचित्र के प्रारम्भ में ही पात्र का बाह्य रूप से वर्णन किया है। उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति पात्र को हमारे सामने सजीव कर देती है। डॉ. गजानन

चव्हाण के मतानुसार, "किसी मनुष्य को पात्र वनाकर लिखे जाने वाले रेखाचित्र में वाह्य व्यक्तित्व और आन्तरिक चरित्र की ओर ध्यान देना जरूरी है।" रेखाचित्र की सफलता वाह्य व्यक्तित्व और आन्तरिक चरित्र चित्रण पर निर्भर करती है।

मैथिलीशरण गुप्त 'पथ के साथी' के दूसरा रेखाचित्र है। महादेवी वर्मा के इस चित्र में तटस्थता के साथ ही स्नेहभाव की अभिव्यक्ति दिखाई देती है- "गुप्त जी के वाह्य दर्शन में ऐसा कुछ नहीं हैं, जो उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके। साधारण मझौला कद, साधारण छरहरा गठन, साधारण गहरा गेहुँआ या हल्का साँवला रंग, साधारण पगड़ी, अंगरखा, धोती या उसका आधुनिक संस्करन, गाँधी टोपी, कुरता धोती और इस व्यापक भारतीयता से सीमित साम्प्रदायिकता का गठवंधन सा करती हुई तुलसी कंठी। अपने रूप और वेश दोनों में वे इतने अधिक राष्ट्रीय हैं कि भी ड़ में मिल जाने पर शीघ्र ही खोज नहीं निकाले जा सकते।" वाह्य वर्णन इतना सजीव हो उठा है कि गुप्त जी सजीव रूप से उपस्थित हुए हैं, किन्तु गुप्त जी का सामान्य रूप वर्णित करना ही लेखिका का उद्देश्य नहीं हैं, अपितु इस सामान्य रूप एवं वेश में से ही उनके असामान्यत्व की झलक प्रस्तुत करना चाहती हैं, जो इस तरह दृष्टव्य है- "यदि मिट्टी को प्रतिविम्व ग्रहण करने का वरदान मिला होता तो उस कक्ष की दीवारों पर कवि अभ्यागत की छवि आज भी अंकित होती और यदि स्वर को मिटने का अभिशाप न मिला होता तो उस वातावरण में निर्वेद में रौद्र रस की प्रतिध्वनि अव तक गूँजती होती।

याचक की सहनशीलता उनमें नहीं है, पर आत्मीयजनों का अनुरोध अस्वीकार करने की दृढ़ता का भी उनमें अभाव है। इस सम्बन्ध में वे चोट खाने से भी डरते हैं और चोट पहुँचाने से भी।" वर्ण्य के आन्तरिक गुण एवं स्वभावगत विशेषताओं को महादेवी जी ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

गुप्त जी को अपने जीवन में पैत्रिक कर्ज़ से लेकर दो पत्नियों और अनेक संतानों के स्वर्गवासी होने की वेदनाएँ सहनी पड़ी हैं। लेखिका के मन में उनके प्रति करूणा झलकती है। महादेवी वर्मा की विवेचन शक्ति गजब की है, वे लिखती हैं, "उनकी दृष्टि में वही रहता है, जो उनके हृदय में है और हृदय में वही रहा है, जो वचन मे है। हम उन विचारों से सहमत हों या असहमत पर उनके सम्बन्ध में किसी भ्रम या उलझन में नहीं पड़ सकते। अधिकारी, व्यापारी, सम्पन्न, दरिद्र किसी भी वर्ग के व्यक्ति के समान वे उसके दोषों की व्याख्या करने में नहीं हिचकते। उस समय उनकी हँसी जैसे तलवार का मखमली म्यान हो जाती है, जिसका बाहरी कोमल स्पर्श भीतरी धार की पैनी कठिनता का आभास देता है। ऐसी मुखर स्पष्टवादिता लौकिक सफलता से मेल नहीं खाती।" गुप्त जी में स्पष्टतावादिता रूप दिखाई देता है।

मैथिलीशरण गुप्त की स्वभावगत विशेषताएँ स्पष्ट करने में महादेवी वर्मा ने यथेष्ट गहराई, सूझबूझ और व्यवहार कुशलता से कार्य लिया है। उनका गुप्तजी के साथ निकट परिचय उन्हें इन विशेषताओं को जानने के विशेष अवसर देता रहा है। अनेक घटनाएँ बताकर मैथिलीशरण गुप्त की निश्चल प्रकृति का चित्रण करना ही महादेवी वर्मा का उद्देश्य रहा है।

रेखाचित्र द्वारा मैथिलीशरण गुप्त जी की उदारता, भावुकता, स्पष्टवादिता और कर्मनिष्ठता आदि गुणों को विषद् किया है। उनके जीवन में मिलने वाले अद्भुत संतुलन को लेखिका ने दर्शाया है।

प्रश्न 20. पथ के साथी के आधार पर सुभद्राकुमारी चौहान के व्यक्तित्व की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। अथवा
"पथ के साथी" मे व्यक्त सुभद्राकुमारी चौहान का चरित्र चित्रण कीजिए।

उत्तर-

'पथ के साथी' के आधार पर सुभद्राकुमारी चौहान के व्यक्तित्व की विशेषताएँ या चरित्र-चित्रण

सुभद्राकुमारी चौहान पथ के साथी का चतुर्थ रेखाचित्र है। महादेवी वर्मा ने अपने इस सहेली को जो उम्र में उनसे बड़ी थीं, बड़ी लगन और सहानुभूति से अंकित किया है।

महादेवी के मन में सुभद्राकुमारी चौहान के प्रति आत्मीयता एवं सहानुभूति है। इस रेखाचित्र की सर्वाधिक महत्व की विशेषता यह है कि इसमें सुभद्राकुमारी चौहान का वात्सल्यमय रूप प्रधान रूप से अंकित किया गया है। सुभद्रा जो महामयी माँ थी, उसकी वीरता का उत्स वात्सल्य ही कहा जा सकता है। न उनका जीवन किसी क्षणिक उत्तेजना से संचलित हुआ न उनकी ओज भरी कविता वीर-रस की घिसी-पिटी लीक पर चली। उनके जीवन में जो निरन्तर निखरता हुआ कर्म का तारतम्य है वह ऐसी अंतरव्यापिनी निष्ठा से जुड़ा हुआ है, जो क्षणिक उत्तेजना का दान नहीं माना जा सकता। इसी से जहाँ दूसरों को यात्रा का अन्त दिखायी दिया वहीं उन्हें नई मंजिल का बोध हुआ। इन पंक्तियों में सुभद्राकुमारी चौहान की अनेक विशेषताओं का सूत्र रूप में अंकन है। रेखाचित्र में वीरता, वात्सल्य आदि भावों को प्रकट करने का प्रयास किया है।

सुभद्राकुमारी चौहान रेखाचित्र में महादेवी ने मानव मन की संवेदना को जाग्रत किया है। अपनी एक भेंट का वर्णन करते हुए महादेवी ने अपनी गहरी संवेदना का परिचय दिया है। उन्होंने लिखा है, "ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियाँ होती रहती थी। वे अपनी थैले से दो चमकीली चूड़ियाँ निकाल कर हँसती हुई पूछती, 'पसंद हैं? मैंने दो तुम्हारे लिए, दो अपने लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ।' पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठती।" इसी प्रकार महादेवी ने सुभद्राकुमारी चौहान के कोमलता एवं सुकुमारिता का वर्णन किया है। रेखाचित्र में सुभद्राकुमारी चौहान की ममता की भावना को विषद् किया है। उनकी यह भावना समाज और देश तक विस्तृत दिखाई देती है। रेखाचित्र में गहरी संवेदना का परिचय है।

सुभद्राकुमारी चौहान के रेखाचित्र मे रोचकता है जिसके कारण पाठक उसे पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाता है। महादेवी की रोचकता दृष्टि का यह उदाहरण कितना आकर्षक है, "हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय प्रवाह का पाट ज्यों-ज्यों चौड़ा होता चला जाता है। त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक सम्बन्ध गहरा होता है, उनकी रेखाएँ और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुँधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं। पर जिनसे ऐसा सम्बन्ध नहीं होता वे फीके होते-होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है।" महादेवी का उद्देश्य यही है कि इस रोचकता के साथ पाठक को सुभद्राकुमारी चौहान के सम्बन्ध में और कुछ जानने की अभिलाषा लिए इस रेखाचित्र को पढ़ने के लिए विवश किया है।

रेखाचित्र में सुभद्राकुमारी चौहान की असाधारण हँसी सहनशीलता गुण-ग्राहकता, कर्मठता आदि गुणों को दर्शाया है। महादेवी ने उनका रेखांकन अत्यन्त आत्मीय रूप से किया है। रेखाचित्र में रोचकता है।

प्रश्न 20. (अ) पथ के साथी में प्रस्तुत सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- पथ के साथी - सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

'निराला' पथ के साथी का चतुर्थ रेखाचित्र है। महादेवी का उस महान् साहित्य साधक के प्रति करूणा एवं निस्सीम स्नेह स्पष्ट है। महादेवी के हृदय की कोमलता एवं निश्चलता निराला सम्बन्धी रेखाचित्र की आरम्भिक पंक्तियों में स्पष्ट हो उठी है, जब वे कहती हैं, "एक युग बीत जाने पर भी मेरी स्मृति से एक घटा भरी अश्रु-मुखी सावनी पूर्णिमा की रेखाएँ नहीं मिट सकी हैं। उन रेखाओं के उजले रंग न जाने किस व्यथा से गीले हैं कि अब तक सूख भी नहीं पाये, उड़ना तो दूर की बात है।

उस दिन मैं बिना कुछ सोचे हुए ही भाई निराला जी से पूछ बैठी थी, आपके किसी ने राखी नहीं बाँधी ? अस्वस्थ ही उस समय मेरे सामने बंधन शून्य कलाई और पीले कच्चे सूत की ढेरों राखियाँ लेकर घूमने वाले यजमान खोजियों का चित्र था। पर अपने प्रश्न के उत्तर ने मुझे क्षण भरके लिए चौका दिया। "कौन बहिन हम ऐसे भुक्खड़ को भाई बनावेगी।" इस पंक्तियों में निराला की अकिंचनता स्पष्ट करना ही महादेवी का उद्देश्य है। साथ ही भाई-बहन के महत्वपूर्ण रिश्ते को विषद् किया है।

निराला रेखाचित्र में महादेवी की आत्मा रमी है। वे उन्हें राखीबंद भाई बनाने से लेकर उनके पारिवारिक, निजी तथा कलात्मक रूपों तक की मर्मोद घाटिनी झाँकी देती चलती है। मैथिलीशरण गुप्त निराला जी के अतिथि बने, उस समय का चित्र प्रकट करते हुए महादेवी लिखती हैं- "वह आलोक रहित, सुख-सुविधा शून्य घर, गृह स्वामी के विशाल आकार और उससे भी विशालतर आत्मीयता से भरा हुआ था। अपने सम्बन्ध में बेसुध निराला जी अपने अतिथि की सुविधा के लिए सतर्क प्रहरी हैं। वैष्णव अतिथि की सुविधा का विचार कर वे नया घड़ा खरीद कर गंगाजल से आये और धोती-चादर जो कुछ घर में मिल सका, सब तख्त पर बिछा कर उन्हें प्रतिष्ठित किया।" रेखाचित्र के माध्यम से महादेवी ने निराला जी की अतिथि सेवा, उदारता, दानशीलता, सहृदयता, स्वाभिमान और अभावों को विषद् किया है।

रेखाचित्र में महादेवी ने निराला के एकाकी व्यथित जीवन को दर्शाया है। लेखिका ने अतिथि सत्कार के महत्व को विषद् किया है। रेखाचित्र द्वारा निराला की उदारता, दानशीलता, आतिथ्य प्रियता आदि व्यक्तित्व की विशेषताओं का निरूपण किया है।

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. जीवनी किसे कहते हैं ? हिन्दी साहित्य की प्रमुख जीवनी के बारे में बताइए।

उत्तर- जीवनी की परिभाषा—लेखक द्वारा किसी दूसरे विशेष और महान् व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का कलात्मक एवं अतीत की सत्य घटनाओं का क्रमबद्ध चित्रण जीवनी कहलाता है।

जीवनी को अंग्रेजी में बायोग्राफी कहते हैं। जीवनी प्रेरणादायक होती है एवं जीवनी की लेखन शैली वर्णनात्मक होती है, जिसमें लेखक किसी और व्यक्ति के जीवन की सभी घटनाओं का वर्णन प्रमाणिकता द्वारा प्रस्तुत करता है। लेखक शोध द्वारा जीवन की घटनाओं की जानकारी कई स्त्रोतों से प्राप्त कर क्रमबद्ध करता है। जीवनी जीवित एवं मृत व्यक्ति के जीवन पर लिखी जा सकती है, जो कि कई बार अनुमति और कई बार बिना अनुमति के लिखी जा सकती है।

जीवनी में लेखक निष्पक्ष रहकर घटनाओं का वर्णन करता है एवं जीवनी प्रेरणादायक होती है। जीवनी के अनेक भेद होते हैं। जैसे आत्मीय जीवनी, लोकप्रिय जीवनी, ऐतिहासिक जीवनी, मनोवैज्ञानिक जीवनी, व्यक्तिगत जीवनी, कलात्मक जीवनी इत्यादि।

हिन्दी साहित्य की कुछ प्रमुख जीवनी-

- आवारा मसीहा (विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित प्रसिद्ध बांग्ला लेखक शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की जीवनी है)।
- प्रेमचंद - कलम का सिपाही (अमृतराय द्वारा रचित प्रसिद्ध लेखक मुंशी प्रेमचन्द की जीवनी है)।
- शिखर से सागर तक - अज्ञेय की जीवन यात्रा (रामकमल राय द्वारा रचित प्रसिद्ध लेखक अज्ञेय (सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन) की जीवनी है)।
- बापू के कदमों में (राजेन्द्र प्रसाद द्वारा रचित प्रसिद्ध महात्मा गाँधी की जीवनी है)।

प्रश्न 2. आत्मकथा की परिभाषा दीजिए। हिन्दी साहित्य की कुछ प्रमुख आत्मकथा के बारे में लिखिए।

उत्तर- **आत्मकथा की परिभाषा**—आत्मकथा अर्थात् अपनी कहानी, किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं के जीवन में घटित घटनाओं की स्मृतियों द्वारा लिखी गयी कहानी को आत्मकथा कहते हैं। आत्मकथा को अंग्रेजी में ऑटोबायोग्राफी कहते हैं। आत्मकथा में लेखक स्वयं के छिपे हुए पहलू और घनाओं को उजागर करता है, जो कई बार काल्पनिक भी हो जाती है, जिनको प्रमाणित करने की भी आवश्यकता नहीं होती है। आत्मकथा जीवित व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखी या लिखवाई जाती है। आत्मकथा की लेखन शैली कथात्मक होती है।

हिन्दी साहित्य की कुछ प्रमुख आत्मकथा-

- क्या भूलूं क्या याद करूं - हरिवंश राय बच्चन
- कुछ आप बीती कुछ जग बीती - भारतेंदु हरिशचंद्र
- मेरी जीवन यात्रा -राहुल सांकृत्यायन
- मेरी असफलताएँ - गुलाबराय
- अर्ध कथानक - बनारसी दास (पद्य बद्ध पहली आत्मकथा)
- मेरी फिल्मी आत्मकथा - बलराज साहनी आदि।

प्रश्न 3. जीवनी और आत्मकथा में अन्तर बताइए।

उत्तर- जीवनी और आत्मकथा में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं-

- जीवनी किसी महान प्रेरणादायी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का क्रमबद्ध घटनाक्रम होता है, जिसे किसी और द्वारा लिखा जाता है, जबकि आत्मकथा स्वयं के द्वारा लिखा गया स्वयं का जीवन का वर्णन है।

- जीवनी जीवित अथवा मृत व्यक्ति के जीवन पर आधारित होती है, जिसे कोई और प्रमाणिक तथ्यों द्वारा अभिव्यक्त करता है, जबकि आत्मकथा जीवित व्यक्ति द्वारा अपनी स्मृतियों के अनुसार लिखी जाती है, जिसको प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।
- जीवनी प्रेरणादायक होती है और सत्य घटनाओं पर आधारित होती है, जबकि आत्मकथा का प्रेरणादायक होना जरूरी नहीं होता है, यह प्रेरणादायक हो भी सकती है और नहीं भी। साथ ही आत्मकथा काल्पनिक भी हो सकती है।
- जीवनी में किसी व्यक्ति के सार्वजनिक जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन होता है, जबकि आत्मकथा में व्यक्ति के जीवन की अनकही और छिपी हुई बातों का भी वर्णन होता है, जिनका ज्ञान स्वयं लेखक के सिवा किसी और को न हो।
- जीवनी की लेखन शैली वर्णनात्मक होती है, जबकि आत्मकथा की लेखन शैली कथात्मक होती है।

प्रश्न 4. संस्मरण की परिभाषा लिखिए।

उत्तर- संस्मरण का शाब्दिक अर्थ होता है, सम्यक स्मरण। सम्यक स्मरण के मूल में होता है- गम्भीर चिन्तन। मानव जीवन की कटु, तिक्त एवं मधुर स्मृतियाँ, अनुभूति और संवेदना का संसर्ग प्राप्त करके जब हृदय से निकलती हैं, तब वे संस्मरण का रूप धारण कर लेती है। संस्मरण आधुनिक गद्य-साहित्य की एक उत्कृष्ट एवं ललित विधा है।

प्रश्न 5. संस्मरण व रेखाचित्र में क्या विशेषताएँ हैं?

उत्तर- संस्मरण और रेखाचित्र—संस्मरण और रेखाचित्र में पर्याप्त निकट की विधाएँ स्वीकार की जाती हैं। दोनों में ही अतीत की घटनाओं, स्मृतियों, भावानुभूतियों का ऐसा चित्रण रहता है कि उनमें वर्णित वस्तु, घटना एवं स्मृति के यथार्थ चित्र सामने उभर आयें और भावनामूलक तथा कल्पनामूलक रोचकता, यथार्थ के साथ मिली-जुली रहे। दोनों में ही लेखक की व्यक्तिगत रुचियों की महत्ता होती है।

इसके साथ-साथ अन्तर भी पर्याप्त हैं- संस्मरण अधिकतर प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रसिद्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में लिखे जाते हैं, पर रेखाचित्र सामान्य व्यक्ति पर भी लिखा जा सकता है। रेखाचित्र चरित्र उभारने का कार्य करता है, अत: उसे चारित्रिक चित्र भी माना जाता है, जबकि संस्मरण व्यक्ति-विशेष के चरित्र का दर्पण बनकर सामने आता है। रेखाचित्र उसका वर्णन करता है। संस्मरण परिस्थिति विशेष का, क्षण-विशेष का एक सजीव विम्ब उभारकर पाठक के मन में उस विम्ब को साकार कर देता है।

प्रश्न 6. संस्मरण के विकास पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर- संस्मरण विधा का विकास—सन् 1907 में बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने पं. प्रताप नारायण मिश्र के संस्मरण लिखकर इस विधा का सूत्रपात किया, पर इसका व्यवस्थित रूप सन् 1920 के पश्चात् माना जाता है। इसके विकास में 'माधुरी', 'विशाल भारत' पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ. त्रिगुणायत इसका प्रथम लेखक सत्यदेव परिव्राजक को स्वीकार करते हैं। 1905 के आसपास आपने अमेरिका की यात्रा की और उस यात्रा से सम्बन्धित संस्मरणों का सजीव वर्णन किया, जो भाव तथा प्रभाव दोनों से परिपूर्ण है।

मध्यकाल—इस युग के कई विख्यात संस्मरण लेखक हैं- पं. सुन्दरलाल (बालकृष्ण

से सम्बन्धित संस्मरण 'विशाल भारत' में), श्री अमृतलाल चतुर्वेदी (मेरे प्रारम्भिक जीवन की स्मृतियाँ), श्रीनिवास शास्त्री (मेरी जीवन-स्मृतियाँ), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी (श्रीधर पाठक विषयक संस्मरण), पं. रामनारायण मिश्र (अनागरिक धर्मपाल), रूपनारायण पाण्डेय (द्विवेदी जी), गोपालराम गहमरी (साहित्यिक के संस्मरण), राजा राधिकारमण सिंह (वे और हम, 'तब और अब', 'टूटा तारा' आदि), बाबू श्यामसुन्दरदास (लाला भगवानदीन पर), रामदास गौड़ (राय देवी प्रसाद पूर्ण तथा श्रीधर पाठक पर) आदि ने सुन्दर संस्मरण लिखे हैं।

प्रश्न 7. संस्मरण के आधुनिक काल पर एक टिप्पणी कीजिए।

उत्तर- आधुनिक काल—इस काल में संस्मरण का रूप और निखरा। महादेवी के संस्मरण इस विधा को पर्याप्त निखार चुके थे। इसी क्रम में आचार्य चतुरसेन शास्त्री के संस्मरणों में पर्याप्त निखार आया। उन्होंने लोकमान्य तिलक से लेकर जवाहरलाल नेहरू तक सरदार भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारी, वैज्ञानिक डॉ. शान्तिस्वरूप भटनागर और साहित्यकारों में 'जैनेन्द्र' पर भी लिखा। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार, उनके संस्मरणों में उनका मानवतावाद स्वर ही सर्वत्र मुखरित हुआ है। ये संस्मरण इस बात के प्रमाण हैं कि शास्त्री जी अपने समकालीन युग-जीवन की विभिन्न गतिविधियों के साथ घनिष्ठ रूप से समर्पित रहे थे। ये संस्मरण इतने सुन्दर और मार्मिक हैं कि इनके मध्य से शास्त्री जी अपने युगीन-जीवन का एक व्यापक यथार्थ रूप प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ हैं।

इस क्रम में अन्य स्मरणीय नाम हैं- श्रीमती शिवरानी (प्रेमचन्द : घर में), श्रीनारायण चतुर्वेदी (गुप्त का हास्य व्यंग्य), रामवृक्ष बेनीपुरी (जंजीरें और दीवारें), शान्तिप्रिय द्विवेदी (पदचिन्ह), कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (दीप जले शंख बजे), आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (मृत्युंजय रवीन्द्रनाथ), रघुवीरसिंह (शेष स्मृतियाँ), शंकर व्यास (प्रसाद और उनके समकालीन), काका साहब कालेलकर (स्मरण यात्रा), माखनलाल चतुर्वेदी (समय के घाव), राहुल सांकृत्यायन (बचपन की स्मृतियाँ), रामनाथ सुमन (हमारे नेता), जैनेन्द्र (वे और वे), पं. किशोरीदास वाजपेयी (बालकृष्ण भट्ट), देवेन्द्र सत्यार्थी (रेखाएँ बोल उठीं), भगवतशरण उपाध्याय (मैंने देखा), अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद), राय कृष्णदास (जवाहर भाई), उपेन्द्रनाथ अश्क (ज्यादा अपनी कम पराई) आदि।

प्रश्न 8. निम्नलिखित में अन्तर बताइए-

(अ) संस्मरण और रिपोर्ताज, (ब) संस्मरण और निबन्ध।

उत्तर- संस्मरण और रिपोर्ताज में अन्तर

रिपोर्ताज से भी संस्मरण भिन्न है। दोनों में ही वैयक्तिक सम्पर्क की प्रधानता होती है। संस्मरण में स्मृति का आश्रय अधिक रहता है, जबकि रिपोर्ताज तो प्रत्यक्ष पर आधृत है। घटना विशेष के घटित होते ही रिपोर्ताज की रचना प्रक्रिया की उपयोगिता है। अतीत की घटना तो संस्मरण का ही रूप लेगी। इसी प्रकार रिपोर्ताज में रचनाकार का दृष्टिकोण तटस्थ रहता है। कभी-कभी वह उपदेशात्मक भी हो सकता है, जबकि संस्मरण में इन दोनों की आवश्यकता नहीं है।

संस्मरण और निबन्ध में अन्तर

निबन्ध तो मूलत: विचार-तर्क पद्धति से व्याख्यायित विधा है, जबकि संस्मरण में तर्क पद्धति की अपेक्षा आत्मीयता तथा संवेदनात्मक स्वर की प्रमुखता होती है।

प्रश्न 9. डायरी किसे कहते हैं? आत्मकथा व डायरी में अन्तर बताइए।

उत्तर- जब लेखक तिथि-विशेष में घटित घटनाओं को यथातथ्य तथा तिथिवार लिपिबद्ध करता है, तो उसकी वह रचना 'डायरी' कहलाती है। डायरी महत्वपूर्ण तिथियों की क्रमबद्ध घटनाक्रमों से सम्बन्धित भी हो सकती है और दैनिक-पुस्तिका के रूप में भी हो सकती है।

यथार्थ चित्रण, तिथिवार क्रमबद्धता, लेखक के निजी दृष्टिकोणों की घटना से सम्बन्धित अभिव्यक्ति आदि डायरी साहित्य की विशेषताएँ हैं। इस विधा का आविर्भाव छायावादोत्तर युग से माना जाता है।

आत्मकथा एवं डायरी में पर्याप्त अन्तर है। आत्मकथा में लेखक अतीत में घटी घटनाओं को कल्पना में पुन: मूर्त करके लिखता है, जबकि डायरी तिथियों के अनुसार लिखी जाती है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन की घटनाओं में स्वयं को रखकर अपना आत्मविश्लेषण करता है, जबकि डायरी में घटनाओं के प्रति उसका दृष्टिकोण लिपिबद्ध होता है। आत्मकथा में तिथि का उल्लेख नहीं होता, जबकि डायरी में यह अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है।

प्रश्न 10. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबन्धों की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर- शुक्ल के निबन्धों में हिन्दी निबन्ध साहित्य की सभी विशेषताओं का निदर्शन होता है। इनमें मूलरूप से विचार और विवेचन की शैली है। ये बौद्धिक मंथन के परिणाम हैं। विचार विवेचन क अपना एक क्रम है। आरम्भ में शुक्ल प्रतिपाद्य विषय को नपी-तुली शब्दावली में प्रस्तुत करते हैं। यह प्रस्तुतीकरण कहीं छोटी-सी तीन-चार पंक्तियों की भूमिका के साथ होता है तो कहीं सीधा विषय को परिभाषित करते हुए विषय को प्रस्तुत करने के बाद उसे अधिकाधिक स्पष्ट करना चाहते हैं। इस क्रम में वे विचार सूत्रों को फैलाते हैं। शुक्ल के निबन्ध मुख्यत: मनोभावों से सम्बद्ध है, इसलिए विचार-सूत्रों का यह फैलाव मनोभाव विशेष की वर्गगत पहचान करते हुए, उससे सम्बद्ध उसी कोटि में अथवा उसके समकक्ष आने वाले अन्य मनोभावों की चर्चा करते हुए उसकी समता-विषमता तथा सामाजिक जीवन में उनके महत्व के उल्लेख तक सीमित रहता है। विचार-सूत्रों को समेटते हुए वे एक बार फिर अपने मूल गंतव्य को संक्षेप में उपस्थित करते हैं। उनके निबन्ध का अन्त भी अपना एक अलग ढंग लिए होता है। किसी एक दृष्टि को आधार बनाकर अन्त किया जाता है।

प्रश्न 11. ''कविता क्या है?''- निबन्ध के आधार पर आचार्य शुक्ल की कविता की भाषा विषयक मान्यताएँ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- ''कविता क्या है'' आचार्य शुक्ल का सबसे महत्वपूर्ण निबन्ध है। इस निबन्ध के माध्यम से शुक्ल जी ने अपनी काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ प्रस्तुत की है, जिसमें भाषा संदर्भ महत्वपूर्ण है।

कविता की भाषा के संदर्भ में शुक्ल जी बिम्ब एवं नाद सौन्दर्य पर बल देते हैं। शुक्ल जी अलंकारों एवं कोरे उक्ति वैचित्र की अधिकता को कविता के लिए अनावश्यक मानते हैं। वे मूलत: सौन्दर्य को आन्तरिक वस्तु मानते हैं और कहते हैं कि ''सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है मन के भीतर की वस्तु है।'' साथ ही निबन्धों को सरस बनाने के लिए कई स्थानों पर विनोद-भाव का समावेश भी किया है। उदाहरण स्वरूप, ''बन्दर को शायद बंदरिया के मुँह में ही सौन्दर्य दिखाई देता होगा, पर मनुष्य पशु-पक्षी, फूल-पत्ते और रेत-पत्थर में भी सौन्दर्य पाकर मुग्ध होता है।'' (कविता क्या है)

शुक्ल जी ने 'कविता की भाषा' की विशेषताओं में सर्वप्रथम लाक्षणिकता को महत्व दिया है। उनका मानना है कि कविता हमारे समक्ष सूक्ष्म पदार्थों और व्यापारों को भी गोचर

रूप से रखती है, स्थूल रूप में प्रत्यक्ष करती है। अन्य विशेषता उन्होंने नाद-सौष्ठव में देखी है। और कहा कि "(कविता) नादसौष्ठव के लिए संगीत कुछ-कुछ सहारा लेती है।" साथ ही इस बात पर भी ध्यान देते हैं कि भाव को अधिक तीव्रता और पुष्टता प्रदान करने के लिए, केवल चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं, वर्णों का सूक्ष्म भेद अपनाया जाना चाहिए।

कविता में व्यंग्य को वे महत्वपूर्ण मानते हैं और वे व्यंग्य करने में माहिर भी हैं। उनकी मान्यता है कि व्यंग्य विषय व्यंजकता को बढ़ा देता है, वहीं दूसरी ओर गंभीर से गंभीर विषय को सरस भी बना देता है। उदाहरण के लिए, "खेद के साथ कहना पड़ता है कि बहुत दिनों से" बहुत से लोग कविता को विलास की सामग्री समझते चले आ रहे हैं।..... एक प्रकार के कविराज तो रईसों के मुँह में मकरध्वज रस झोंकते थे, दूसरे प्रकार के कविराज कान में मकरध्वज रस ही पिचकारी देते थे, पीछे से तो ग्रीष्मोपचार आदि के नुस्खे भी कवि लोग तैयार करने लगे।

प्रश्न 12. श्रद्धा-भक्ति निबन्ध के आधार पर आचार्य शुक्ल की निबन्ध शैली की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर- आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिन्दी निवन्ध परम्परा के केन्द्रीय रचनाकार हैं। उन्होंने हिन्दी निबन्ध को परिपक्वता के स्तर तक पहुँचाया है 'श्रद्धा-भक्ति' में, उनके परिपक्व निबन्ध शैली का दर्शन होता है।

आचार्य शुक्ल की निबन्ध शैली निगमनात्मक है। वे पहले चिन्तन करते हैं तथा अनेक उदाहरणों से पुष्ट करते हुए अपने चिंतन का विस्तार करते हैं। श्रद्धा भक्ति में उनकी यह शैली देखी जा सकती है। वे आरम्भ में ही श्रद्धा की परिभाषा देते हैं- "किसी मनुष्य में जनसाधारण् से विशेष गुण तथा शक्ति का विकास देखकर, उसके प्रति हृदय में जो स्थायी आनन्द का भाव आता है उसे श्रद्धा कहते हैं।" इस परिभाषा में शुक्ल जी की वह शैली भी दिखती है, जिसमें वह किसी मनोभाव की सूक्ष्म व वैज्ञानिक परिभाषा देते हैं।

उनके निबन्ध यद्यपि बुद्धि प्रधान है, किन्तु बीच-बीच में हृदय की भी भूमिका है जिससे निबन्धों में सरसता आती है। जब वे निजी जीवन का उदाहरण देते हैं, या हास्य-व्यंग्य करते हैं तो हृदय की भूमिका नजर आती है।

शुक्ल जी की निबन्ध शैली की एक विशेषता यह भी है कि वे मुख्य विषय के साथ आने वाले अन्य विषयों का भी सूक्ष्म वैज्ञानिक विवेचन करते हैं। श्रद्धा, प्रेम, भक्ति का विवेचन तथा उनके अन्तर्संबंधों की व्याख्या में यह विशेषता मिली जाती है।

भाषा के स्तर पर शब्दों का मितव्ययी प्रयोग, सटीक शब्दावली, नए शब्दों का निर्माण उनकी अद्वितीय विशेषता है। विचारों की 'गूढ़-गुंफित परम्परा' में वाक्यों की प्रवाहमयी संरचना शुक्ल जी के निबन्ध शैली की अन्यतम विशेषता है। यह सारी विशेषताएँ श्रद्धा-भक्ति में विद्यमान हैं।

निष्कर्षतः श्रद्धा-भक्ति शुक्ल जी के निबन्धों का प्रतिनिधि निबन्ध है। दूसरे शब्दों में, 'श्रद्धा भक्ति' में शुक्ल जी के निबन्ध शैली की सारी विशेषताएँ मौजूद हैं।

प्रश्न 13. 'क्रोध' निबन्ध का सारांश लिखिए।

उत्तर-

क्रोध निबन्ध का सारांश

क्रोध के जन्म के सम्बन्ध में निबन्धकार श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि क्रोध का जन्म चेतन के अनुमान से उत्पन्न होता है, जिस प्रकार एक नन्हा बालक जब अपनी

माता को पहचानने लगता है कि इसी से मुझे दूध मिलता है, भूखा होने पर वह उसे देखकर रोने लगता है। उसके इस रोने में क्रोध का आभास मिलने लगता है।

लेखक का मत है कि क्रोध सर्वथा निरर्थक नहीं होता, समाज में उसकी आवश्यकता सदा से रही है। यदि क्रोध न होता तो मनुष्य दूसरों के कष्टों से अपना वचाव न कर पाता। किसी दुष्ट के दो-चार प्रहार तो सहे जा सकते हैं, किन्तु सदैव के लिए उन प्रहारों को समाप्त करने के लिए व्यक्ति में क्रोध का होना नितान्त आवश्यक होता है।

अन्यथा दुष्ट की दुष्टता पर काबू पाना कठिन हो जायेगा। जहाँ तक दुष्टों के हृदय परिवर्तन कर देने का प्रश्न है, वहाँ हृदय-परिवर्तन कर देने का प्रयत्न एक अच्छा प्रयत्न है, किन्तु दुष्ट में दया, सद्बुद्धि और गुणों को जन्म देने और विकसित करने में अधिक समय लगता है और छोटे-छोटे कामों के लिए कोई इतना समय देना नहीं चाहता। इसलिए दुष्ट के दमन के लिए तात्कालिक उपाय फलप्रद प्रमाणित होता है। क्रोध अधिकतर प्रतिकार के रूप में होता है। किन्तु अनेक बार प्रतिकार के साथ क्रोध में हमारी सुरक्षा भावना भी सम्मिलित होती है। अतएव समाज के लिए क्रोध एक दुर्गुण होते हुए भी एक उपयोगी विकार होता है।

क्रोध के सम्वन्ध में यह भी कहा जाता है कि वह अन्धा होता है। क्रोध करने वाला क्रोध के आलम्वन की ओर ही देखता है, अपनी ओर नहीं देखता। साथ ही क्रोध करने वाला क्रोध के परिणाम को भी नहीं देख पाता है। जब इस प्रकार के क्रोध का उग्र रूप, आततायी की शक्ति को समझे विना प्रयोग किया जाता है तो उससे क्रोध करने वाले को हानि होने की भी सम्भावना रहती है। इस मनोविकार पर बुद्धि और विवेक से ही अंकुश रखा जा सकता है।

क्रोध के सम्वन्ध में यह मत है कि पहले यह प्रयत्न करना चाहिए कि जिस पर क्रोध किया जा रहा है, उसमें भय का संचार किया जाए, सम्भव है वह इसी से डर जाए और क्रोध करने की आवश्यकता न पड़े। एक की उग्र प्रकृति देखकर दूसरा चुपचाप पीछे हट जाता है। अनेक अवसरों पर क्रोध का आशय दूसरे का अभिमान चूर्ण करना होता है। अत: प्रयत्न यह होना चाहिए कि अभिमानी विनम्र वन सके। इस प्रकार अभिमानी पर क्रोध करने में अभिमानी को हानि पहुँचाने का उद्देश्य नहीं होता, वरन् उसे अहंकारी से नम्र बनाना होता है। संसार से अभिमानी, अपमान से ही नम्र हो जाता हैं। क्रोध का वेग बहुत तीव्र होता है। क्रोधी मनुष्य यह भी ध्यान नहीं दे पाता कि जिस व्यक्ति ने उसे पीड़ा पहुँचाई है वह जान-बूझकर किया हुआ कृत्य है अथवा अनायास ही उससे बन पड़ा है। चाणक्य के पैरों में कुश चुभ गये तो उन्होंने क्रोध के वश होकर उन्हें समूल नष्ट कर देने की प्रतिज्ञा कर डाली।

क्रोध अवसर पड़ने पर अन्य मनोविकारों का भी साथ देकर उनकी सृष्टि करने में सहायता देता है। कभी दया के साथ आता है, कभी घृणा के साथ। एक व्यक्ति का क्रोध दूसरे में भी क्रोध का संचार कर देता है। इस प्रकार क्रोध, क्रोध को जन्म देता है।

क्रोध के दो प्रेरक दु:ख होते हैं। पहला, अपना दु:ख और दूसरा दूसरे का दु:ख। जिसे क्रोध के शमन का उपदेश दिया जाता है, वह पहले प्रकार के दु:ख से उत्पन्न क्रोध है। दूसरे के दु:ख पर उत्पन्न क्रोध बुरा नहीं समझा जाता। क्रोध को उत्तेजित करने वाला दु:ख जितना ही अपने स्वार्थ आदि से दूर होता है, वह उतना ही सुन्दर होता है। क्रोध और बैर में कोई विशेष अन्तर नहीं है। क्रोध पुराना होकर बैर बन जाता है जिससे हमें कष्ट हुआ, यदि हमने उससे किसी समय प्रतिकार ले लिया तो वह क्रोध कहलायेगा। यदि हम कष्ट देने

ने की शक्ति देखकर उस समय कष्ट सहन करके चुप रह गये और हमने समय मिलने प्रतिकार करने का दृढ़ निश्चय अपने मन में ठान लिया तो वह वैर कहलायेगा।

क्रोध पुराना होकर वैर वन जाता है। इसीलिए वैर को क्रोध का अचार या मुरब्बा कहा ता है। पशु और बच्चों में वैर नहीं होता, उनमें केवल क्रोध होता है। इसी प्रकार चिड़चिड़ाहट भी क्रोध ही है, किन्तु वह क्रोध का हल्का रूप है। इसमें उग्रता और वैर नहीं ता हैं। किसी कार्य में बाधा पड़ने पर लोग चिड़चिड़ा उठते हैं। यह एक प्रकार की मानसिक र्बलता का परिणाम होता है।

निष्कर्ष—क्रोध की उग्र अवस्था में अमर्ष होता है। इसमें आश्रय का ध्यान आलम्बन की ओर रहता है। अमर्ष की अवस्था में मनुष्य आपे से बाहर होकर अनर्थकारी वचन कहने लगता है। इस निबन्ध में क्रोध के व्यावहारिक मीमांसा करने में निबन्धकार सफल रहा है। इसमें क्रोध की उपादेयता पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

प्रश्न 14. हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक परिचय दीजिए।

उत्तर-

हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक परिचय

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिन्दी साहित्य के निबन्धकार, उपन्यासकार, आलोचक एवं सम्पादक थे। उन्होंने, हिन्दी गद्य साहित्य की अनेक विधाओं की रचना की है। द्विवेदी जी की संस्कृत भाषा और हिन्दी भाषा पर अच्छी पकड़ थी। इसके अतिरिक्त वे अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के भी ज्ञानी थे। द्विवेदी जी ने साहित्येतिहास, आलोचना, निबन्ध, उपन्यास आदि विधाओं में रचनाएँ लिखीं। इन्होंने विश्व भारती और अभिनव भारतीय ग्रंथमाला का सम्पादन भी किया है। इन्होंने हिन्दी साहित्य का इतिहास नामक शोधग्रंथ की भी रचना की। रामचंद्र शुक्ल जिस हिन्दी आलोचना की नींव डाल गए थे, द्विवेदी जी ने उसे नई ऊँचाइयाँ दीं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी को डी लिट्, पद्मभूषण, मंगलाप्रसाद पारितोषिक और आलोक-पर्व निवन्ध संग्रह के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया, लखनऊ विश्वविद्यालय ने इनको डॉक्टर ऑफ लेटर्स, डी.लिट्.) का सम्मान दिया।

द्विवेदी जी की साहित्य के प्रति विशेष रूचि थी और उनका स्वभाव व आचरण अत्यन्त मधुर था। चाहे वे निवन्ध लेखन कर रहे हों अथवा आलोचना या उपन्यास लिख रहे हो या फिर साहित्येतिहास, उन्होंने सांस्कृतिक जागरूकता की भावना निरन्तर बनाए रखी, जो उनकी सभी रचनाओं में व्याप्त थी।

प्रश्न 15. हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचनाएँ एवं कृतियों के बारे में लिखिए।

उत्तर- रचनाएँ-व कृतियाँ—हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रमुख रचनाएँ एवं कृतियाँ निम्नलिखित हैं-

1. उपन्यास—बाणभट्ट की आत्मकथा, अनामदास का पोथा, पुनर्नवा, चारू चंद्रलेखा, सूर साहित्य।

2. निबन्ध संग्रह—अशोक के फूल (1950), कल्पलता (1951), मध्यकालीन धर्मसाधना (1952), विचार और वितर्क (1957), विचार-प्रवाह (1959), कुट्ज (1964), आलोक, पर्व (1972)।

3. निबन्ध—कल्पतरू, गतिशील चिंतन, साहित्य सहचर, नाखून क्यों बढ़ते हैं, अशोक के फूल, देवदारू, बसंत आ गया, वर्षा घनपति से घनश्याम तक, मेरी जन्मभूमि, घर जोड़ने की माया।

4. इतिहास ग्रंथ—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य।

5. अनूदित रचनाएँ—प्रबन्ध चिन्तामणि, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, प्रबन्ध कोश, विश्व परिचय, लाल कनेर, रा बचपन।

6. सम्पादित ग्रन्थ—पृथ्वीराज रासो (संक्षिप्त), नाथसिद्धों का बानियां, सन्देश रासक।

प्रश्न 16. हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषागत विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर-

भाषागत विशेषताएँ

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विषयानुकूल भाषा लिखने में सिद्धहस्त हैं। संस्कृत, अपभ्रंश, अंग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओं पर अधिकार होने के कारण इनकी भाषा अत्यन्त समृद्ध है। इनकी भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली, तद्भव, देशज तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अत्यन्त कुशलता से हुआ है। भाषा को गतिशील और प्रवाहपूर्ण बनाने के लिए मुहावरे और लोकोक्तियों का खुलकर प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं संस्कृत शब्दों की अधिकता के कारण इनकी भाषा क्लिष्ट हो गई है। इनका शब्द चयन सार्थक एवं सटीक है। इनकी भाषा में आलंकारिकता, चित्रोपमता और सजीवता जैसे गुण मिलते हैं।

भाषा में माधुर्य का समावेश करने के लिए उन्होंने देशज तथा ग्रामीण शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। संस्कृत की समयावली के साथ-साथ उसमें अंग्रेजी एवं उर्दू के प्रचलित शब्द का भी उपयोग किया गया है। भाषा को व्यावहारिक, सरस और मधुर बनाने के लिए वे संस्कृत, बांग्ला, हिन्दी की सूक्तियों एवं उद्धरणों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते हैं। वस्तुत: इनकी भाषा की मूल प्रवृत्ति संस्कृतनिष्ठता है, जो इनके आगाध पाण्डित्य एवं बहुज्ञता का स्वाभाविक परिचय है।

प्रश्न 17. 'अशोक के फूल' निबन्ध का सार लिखिए।

उत्तर-

'अशोक के फूल' हिन्दी साहित्य का सार

यह एक ललित निबन्ध है। भारतीय साहित्य और समाज में अशोक पुष्प किस प्रकार आया, इस पर विचार करते हुए कहा गया कि ऐसा तो कोई नहीं कह सकता कि कालिदास के पूर्व भारत में इस पुष्प को कोई नहीं जानता था। यह पुष्प कालिदास के काव्य में अपूर्व शोभा और सुकुमारता के साथ वर्णित हुआ है। कालान्तर में भारत में इस्लाम शासन की स्थापना से यह पुष्प साहित्य के सिंहासन से उतर गया। भारतीय धर्म, साहित्य और शिल्प में यह पुष्प अद्भुत महिमा के साथ वर्णित हुआ है। कामदेव के पंच बाण कमल, अशोक, आम, चमेली तथा नील कमल आदि माने गए हैं। अशोक के छोटे लाल पुष्प कामदेव के पंचबाणों में से एक है। यहाँ की आदिम जातियों गंधर्वों और यक्षों ने अशोक वृक्ष की पूजा को आरम्भ किया। अशोक वृक्ष की पूजा वास्तव में इसके स्वामी कामदेव की पूजा है, जिसे मदनोत्सव कहा जाता था। प्राचीन साहित्य में इस उत्सव का बड़ा सरस वर्णन हुआ है। उस समय के राजाओं व सामन्तों के द्वारा इन उत्सवों को संरक्षण मिला। बाद में सामन्तों का प्रभाव समाप्त होने से मदनोत्सव की धूमधाप समाप्त हो गई।

इस निबन्ध में मानव की जीवन जीने की शक्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि मानव की जीवनी शक्ति अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों को रौदते हुए आगे बढ़ती जाती है। इसी से समाज और संस्कृति का रूप परिवर्तित होते रहता है। इसी परिवर्तन ने अशोक

वृक्ष के महत्व को भी भुला दिया। लेखक अशोक के फूल के वैभवशाली अतीत का स्मरण करते हुए उदास होता है। कोई भी बहुमूल्य संस्कृति सदैव नहीं बनी रह सकती है। परिवर्तन इस संसार का नियम है। लेखक का मानना है कि अशोक आज भी उसी मस्ती में झूम रहा है, जैसा कि वह दो हजार वर्ष पहले था। अत: कहीं भी कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी नहीं बदला है, जो भी परिवर्तन हुआ है, वह मानव की मनोवृत्ति बदलने के फलस्वरूप हुआ है।

प्रश्न 18. ललित निबन्ध की दृष्टि से 'कुटज' की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर- ललित निबन्ध वह साहित्यिक विधा है, जिसमें भावना और विचारों का समन्वय होता है। इसमें जीवन की वास्तविकता, कहानी और संवेदना, नाटक की नाटकीयता, उपन्यास की चारू कल्पना, गद्य काव्य की भावातिश्यता, महाकाव्यों की गरिमा एक साथ प्राप्त होते हैं। 'कुट्ज' निबन्ध की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. कुटज एक ललित निबन्ध—इसका विषय कुटज है। कुटज हिमालय की उ. श्रृंखलाओं पर उगता है, जिसे शिवालिक कहा जाता है। इससे शिवालिक में ज्ञान का प्रकाश है। इसके पश्चात् नाम और रूप की सैद्धांतिक व्याख्या है और फिर कुटज शब्द की भाषागत के अनुसार व्याख्या है।

2. कुटज मानव-चेतना का रूप—द्विवेदी जी ने कुटज को मानव-चेतना का रूप दिया है। इसके बीच में कालिदास का मेघदूत और उनकी कुटज कुसुमों से मेघ की अभ्यर्थना समाहित है। उनकी आत्मीयता कुटज के साथ समाहित है। कुटज ने कालिदास के संतप्त चित्त को सहारा दिया। इसलिए कभी उसे गाढ़े का साथी भी कहता है। अर्थात् जब परिस्थितियाँ विपरीत होती हैं, उस समय विपरीत परिस्थितियों का साथी ... कुटज ही है।

3. कुटज का ऐतिहासिक संबंध—कुटज की प्राचीनता, उसकी व्युत्पत्ति, उसके विविध आयामों पर शास्त्रोक्त में मीमांसा करने के पश्चात् पुन: प्रकृति लालित्य के मध्य कुटज की प्रतिष्ठा करते हुए प्रतीत होते हैं। वे कुटज को आदर्श चिन्तन का प्रवक्ता मानते हैं। वे कहते हैं कि जिस कठोर भूमि में सब कुछ सूख चुका हैं, वहाँ यह कुटज पाषाण की छाती को चीर, जलस्त्रोत से बरबस रस खींच कर सरस बना हुआ है। कितनी कठिन जीवन-शक्ति है।

4. स्वच्छंदता—ललित निबन्ध का एक वैशिष्ट्य स्वच्छंदता है। स्वच्छंदता ही वह विशेषता है जो निबन्ध को शास्त्र के बोझ से मुक्त कराती है। स्वतंत्रता का अर्थ अनियंत्रित होना नहीं है, अपितु अपनी निजता से मुक्ति है। द्विवेदी जी को कुटज में मुक्तभाव से अपने विचारों को निबन्ध में स्थान देते हैं।

5. आत्मीयता और आडंबरहीनता—ललित निवन्ध में आत्मीयता और आडम्बर हीनता का विशेष स्थान है। इसमें शास्त्रीयता के साथ आत्मीयता का समन्वय होता है। बुद्धि और हृदय इस प्रकार के निबन्धों में अलग-अलग राह पर न चलकर उनमें एकात्मकता पाई जाती है। इसमें रागाश्रित व्यंजना होती है, जो पाठक को आकर्षित कर उसे आत्मीयता से बाँधे रखती है। पाठक, लेखक और निबन्ध तीनों ही एक साथ स्वयं रचना में समाहित होते हैं।

6. विषय की अभिन्नता—विषय के अभिन्नता ललित निवन्ध के लिए आवश्यक है। यह एकत्व और आत्मीयता होने पर वस्तु की अंतरंगता प्रकट होती है। हृदय का हृदय से विनियोग होता है। यह चिंतन को प्रवाह प्रस्तुत करता है तथा भाषा को गतिमान बनाता है, आत्मीयता से भर देता है, शिल्प को वैभव प्रदान करता है और भाषा को सरस व सारगर्भित बनाता है।

7. कुटज का वर्णन—द्विवेदी जी इसमें कुटज का शानदार वर्णन कते हुए नजर आते हुए कहते हैं ... कि कुटज "द्वंदातीत" है अलमस्त है, मुझे अनादिकाल से जानता है, मैं भी इसे अवश्य पहचानता हूँ। कुटज चिर-परिचित दोस्त है। वे मानव चेतना व छोटी-छोटी बातों में दु:खी होने वालों से कहते हैं- जीवन जीना चाहते हो तो कुटज के समान जिओ, कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर, वायुमंडल को चूसकर, झंझा-तूफान को रगड़कर, अपनी प्राप्त्य वसूल लो, आकाश को चूसकर, आकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लो। कुटज का यही उपदेश है।

अत: यह कहा जा सकता है कि कुटज मे सहजता, सरलता और रस की भाषा का प्रयोग किया गया है। यह सभी गुण कुटज में भी विद्यमान है। यह निबन्ध अपने लघु आकार में एक महाकाव्य के गरिमा को धारण किए हुए हैं। यह जीवन-शक्ति प्रदान करने वाला है। यह वह कुटज है, जो मनुष्य के गाढ़े का साथी है अर्थात् जब सब साथ छोड़ देते हैं, उस समय अपने धर्म का निर्वहन करने वाला है यह कुटज।

प्रश्न 19. "जीना भी एक कला है"- कुटज के आधार पर सिद्ध कीजिए।

उत्तर- यह बिल्कुल सही है कि जीना भी एक कला है। कुटज ने यह सिद्ध कर दिया है। जो विकट परिस्थितियों में और असामान्य परिस्थितियों में भी स्वयं को जिंदा रखे हुए हैं, तो उसकी जितनी भी तारीफ की जाए कम है। ऐसी ही मनुष्य को जीना चाहिए। सुख-दु:ख तो आते रहते हैं। जो मनुष्य सुख-दु:ख में स्वयं को समान रख सके, वही वास्तव में जीना जानता है। सुख में तो सभी सुखी होते हैं, जो दु:ख में रहकर भी हँसे सही मायने में उसने जीना सीख लिया है। इस कला को हर कोई नहीं जानता है। इस कला को विकसित करने के लिए हमें गंभीरता से विचार करना पड़ेगा। अगर हमने सीख लिया तो यह जीवन स्वर्ग हो जाएगा।

प्रश्न 20. मुक्तिबोध का साहित्यिक जीवन एवं कृतियों के बारे में लिखिए।

उत्तर-

मुक्तिबोध का साहित्यिक जीवन

मुक्तिबोध तारसप्तक के पहले कवि थे। मनुष्य की अस्मिता, आत्मसंघर्ष और प्रखर राजनैतिक चेतना से समृद्ध उनकी कविता पहली बार 'तार सप्तक' के माध्यम से सामने आई, लेकिन उनका कोई स्वतंत्र काव्य-संग्रह उनके जीवनकाल मे प्रकाशित नहीं हो पाया। मृत्यु के पहले श्रीकांत वर्मा ने उनकी केवल 'एक साहित्यिक की डायरी' प्रकाशित की थी, जिसका दूसरा संस्करण भारतीय ज्ञानपीठ से उनकी मृत्यु के दो महीने बाद प्रकाशित हुआ। ज्ञानपीठ ने ही 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' प्रकाशित किया था। इसी वर्ष नवम्बर 1964 में नागपुर के विश्वभारती प्रकाशन ने मुक्तिबोध द्वारा 1963 में ही तैयार कर दिए गए, निबन्धों के संकलन नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध को प्रकाशित किया था। परवर्ती वर्षों में भारतीय ज्ञानपीठ से मुक्तिबोध के अन्य संकलन 'काठ का सपना', तथा 'विपात्र' (लघु उपन्यास) प्रकाशित हुए। पहले कविता संकलन के 15 वर्ष बाद, 1980 में उनकी कविताओं का दूसरा संकलन "भूरी भूर खाक धूल' प्रकाशित हुआ और 1985 में 'राजकमल' से पेपरबैक में छः खंडों में 'मुक्तिबोध रचनावली' प्रकाशित हुई, वह हिन्दी के इधर के लेखकों की सबसे तेजी से बिकने वाली रचनावली मानी जाती है। कविता के साथ-साथ, कविता विषयक चिंतन और आलोचना पद्धति को विकसित और समृद्ध करने में भी मुक्तिबोध का योगदान अन्यतम है।

उनके चिंतन परक ग्रंथ हैं- एक साहित्यिक की डायरी, नयी कविता का आत्मसंघर्ष और नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र। भारत का इतिहास और संस्कृति इतिहास लिखी गई उनकी पुस्तक है। काठ का सपना तथा सतह से उठता आदमी उनके कहानी संग्रह हैं तथा विपात्रा उपन्यास है। उन्होंने 'वसुधा', 'नया खून' आदि पत्रों में सम्पादन-सहयोग भी किया।

कुछ प्रमुख कृतियाँ—चांद का मुँह टेढ़ा है, भूरी-भूरी खाक धूल (कविता संग्रह), काठ का सपना, विपात्र, सतह से उठता आदमी (कहानी संग्रह), कामायनी : एक पुनर्विचार, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र (आखिर रचना क्यों), समीक्षा की समस्याएँ, एक साहित्यिक की डायरी (आलोचनात्मक कृतियाँ) एवं भारत: इतिहास और संस्कृति।

प्रश्न 20. (अ) मुक्तिबोध द्वारा रचित विधा 'एक साहित्यक की डायरी' पर अपने विचार दीजिए।

उत्तर- मुक्तिबोध - ''एक साहित्यिक की डायरी'' पर विचार

गजानन माधव मुक्तिबोध (13 नवम्बर, 1917 - 11 सितम्बर, 1964) हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि, आलोचक, निबन्धकार, कहानीकार तथा उपन्यासकार थे। उन्हें प्रगतिशील कविता और नयी कविता के बीच एक सेतु भी माना जाता है। डायरी साहित्य विधा के क्षेत्र में मुक्तिबोध का शीर्ष स्थान है। मुक्तिबोध की ''एक साहित्यिक की डायरी'' समकालीन साहित्य का श्रीवर्द्धन करती है।

अपने शैलीगत और विचार तत्व दोनों की विशेषता के कारण इसने हिन्दी साहित्य के पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। मुक्तिबोध की डायरी को हिन्दी साहित्य के बहुत सम्मान प्राप्त है। अज्ञेयजी ने मुक्तिबोध की एक साहित्यिक की डायरी के सम्बन्ध में लिखा है मुक्तिबोध की डायरी उस सत्य की खोज है, जिसके आलोक मे कवि अपने अनुभव को सार्वभौमिक अर्थ दे देता है। विचारों की विश्रृंखलता डायरी विधा की एक प्रमुख विशेषता है, क्योंकि डायरी अन्य रचनाओं की अपेक्षा अधिक मुक्त और असम्बद्ध होती है। इसकी प्रधान विशेषता इसमें है कि कवि अपने जीवन की घटना का ऐसा विवरण प्रस्तुत करता है, जो तात्कालिक होने के कारण अधिक सजीव एवं सरस होता है।

मुक्तिबोध ने अपने डायरी लेखन में न केवल वर्तमान के ताजे अनुभव प्रस्तुत किए हैं वरन् उन्होंने अपना आत्म-विश्लेषण करते हुए अपने सम्पर्क में आये हुए व्यक्तियों, विद्वानों के विचारों को भी बड़े ही आत्मीयतापूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। मुक्तिबोध ने अपने डायरी लेखन में प्रारम्भ सीधा-सादा फिर कहीं एक काल्पनिक पात्र से वार्तालाप पर आदि से अन्त तक भाव और स्वर रखे हैं। मुक्तिबोध की डायरी का प्रत्येक क्षण और प्रत्येक चरण इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए एक विषय की परतें हलके-फुलके खुलती हुई प्रश्नों का भीतर के प्रश्नों से साक्षात्कार कराती है। मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' वास्तव में पाठक को भी सोचने एवं समाधान के अन्वेषण के लिए प्रेरित करती है।

प्रश्न 21. ''क्या भूलूँ क्या याद करूँ'' के सन्दर्भ में मुक्तिबोध के धर्म और दर्शन सम्बन्धी विचार लिखिए।

उत्तर- धर्म और दर्शन सम्बन्धी विचार

जीवन में धर्म और दर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। खासकर भारतीय जीवन को निर्धारित करने में धर्म और दर्शन ने केन्द्रीय भूमिका निभाई है। क्या भूलूँ क्या याद करूँ

में लेखक ने मुख्यत: हिन्दू धर्म की सामाजिक व्यवस्था से जुड़े अनेक पक्षों पर विचार किया है और इसी क्रम में जन्म, मृत्यु, आत्महत्या आदि दार्शनिक विषयों पर खुलकर अपनी राय प्रकट की है।

लेखक ने हिन्दू समाज में जाति-व्यवस्था, छुआछूत दीक्षा, शिखा-केश आदि की परम्परा को धर्म से जोड़ते हुए खुलकर इनका विरोध किया है। वह मानता है कि जाति व्यवस्था और छुआछूत का सबसे बड़ा कारण हिन्दू धर्म और उसकी वर्ण व्यवस्था है, जो मठ एवं मन्दिरों के कारण समाज में व्याप्त रही है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में जन्म, मृत्यु, आत्महत्या आदि जैसे मुद्दों पर लेखक ने एक दार्शनिक की तरह विचार किया है। यद्यपि 'आत्मा' को लेकर उठे प्रश्न का उत्तर पाने में वह अपने आपको असफल मानता है पर इस सत्य को स्वीकार करता है कि किसी की मृत्यु से दुनिया नहीं बदल जाती है, बल्कि वह यथावत् चलती रहती है- 'पर दुनिया, दुनिया है। दुनिया के लिए कोई अनिवार्य नहीं। इधर लाश उठती है, उधर दुनिया के काम यथापूर्व होने लगते हैं।' यह सच भी है, क्योंकि मरने के बाद आत्मा की परिणति कहाँ और किस रूप मे होती है, इसका सही उत्तर आज तक हमारे पास नहीं है। लेकिन जीवित शरीर का सच सबके सामने होता है। लेखक कहता है, 'शरीर रहने तक मनुष्य को क्या-क्या सहना पड़ता है। शरीर छूटा कि सारे दु:ख-दर्द, चिंताएँ-व्यथाएँ, शोक-संताप विलुप्त!'' पर क्या आत्महत्या इन कष्टों से सहन मुक्ति का उपाय है? लेखक मानता है नहीं! क्योंकि आत्महत्या के बारे में, ''.... जो सोचता है, वह मेरी दृष्टि में निरात्मा है।'' निरात्मा यानी कि जिसके अन्दर सोचने, समझने और महसूस करने की ताकत खत्म हो गयी हो! जो जीवन की चुनौतियों से भाग रहा हो! और ऐसा मनुष्य पौरुषवान नहीं हो सकता है।

वस्तुत: धर्म और दर्शन से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर लेखक के अन्दर उठे इन विचारों का गहरा सम्बन्ध उसकी अपनी जिन्दगी से रहा है। इसलिए कई जगह उसके विचार वैयक्तिक लगते हैं। पर महत्वपूर्ण बात यह है कि इन वैचारिक प्रश्नों से वह जूझता है, भागता नहीं।

प्रश्न 22. हरिशंकर परसाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में लिखिए।

उत्तर-

हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंग्य लेखक श्री हरिशंकर परसाई का जन्म 22 अगस्त सन् 1922 को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले में जामानी नामक गाँव में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। उसके बाद इन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। कुछ वर्षों तक अध्यापन का कार्य करने के बाद इन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और 1957 से स्वतंत्र लेखन आरम्भ कर दिया। परसाई जी मुख्य रूप से व्यंग्य लेखक हैं। हिन्दी में व्यंग्य लेखन कम हुआ है पर परसाई जी ने इस अभाव की पूर्ति की है और उनका यह कार्य अनुपम और अनूठा है। 10 अगस्त सन् 1995 को जबलपुर में इनका देहान्त हो गया।

परसाई जी मूलत: एक व्यंग्यकार है। सामाजिक विसंगतियों के प्रति गहरा सरोकार रखने वाला ही लेखक सच्चा व्यंग्यकार हो सकता है। परसाई जी सामयिक समय का रचनात्मक उपयोग करते हैं। उनका समूचा साहित्य वर्तमान से मुठभेड़ करता हुआ दिखाई देता है। परसाई जी हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विधा को एक नई पहचान दी और उसे एक अलग रूप प्रदान किया, इसके लिए हिन्दी साहित्य उनका हमेशा ऋणी रहेगा।

हरिशंकर परसाई की रचनाएँ (कृतित्वध)

हरिशंकर परसाई की निम्नलिखित रचनाएँ हैं-

कहानी संग्रह- जैसे उनके दिन फिरे।

उपन्यास- रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज।

निबन्ध संग्रह- तबकी बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, पगडंडियों का जमाना, सदाचार की ताबीज, शिकायत मुझे भी है, और अन्त में।

व्यंग्य-निबन्ध संग्रह—तिरछी रेखायें, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर, वैष्णव की फिसलन।

1982 में विकलांग श्रद्धा का दौर व्यंग्य-संग्रह पर उन्हें साहित्य अकादमी सम्मान प्राप्त हुआ। व्यंग्य के क्षेत्र में इस सम्मान को पाने वाले हरिशंकर परसाई हिन्दी के एकमात्र व्यंग्यकार हैं।

प्रश्न 23. हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबन्ध ''विकलांग श्रद्धा का दौर'' की विषयवस्तु को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- ''विकलांग श्रद्धा का दौर'' निबन्ध की विषय-वस्तु

जैसा कि विदित है परसाई एक समक्ष व्यंग्य थे, उन्होंने कई विषयों पर अपनी लेखनी उठाई है। इस व्यंग्य में अनायास ही होने वाली अन्ध श्रद्धा पर भी व्यंग्य किया है। व्यंग्य का प्रारम्भ ही नाटकीय ढंग से किया एक व्यक्ति चरण छूता है, वे समझते हैं कि उसके साहित्यकार होने के कारण उसने चरण स्पर्श किया है, किन्तु उसने कहा कि उन्हें ब्राह्मण समझकर उनके चरण स्पर्श किए हैं। बड़ा लेखक मान कर नहीं उन्होंने व्यंग्य किया कि वे श्रद्धेय बनने की कामना नहीं करते हैं, क्योंकि उन्होंने श्रद्धेयों की दुर्गति देखी है- एक महोदय पी.एच.डी. हुए, जो शोध कार्य के कारण नहीं आचार्य की कृपा से हुए थे- ज्ञान से नहीं तथा इतने अधिक लोग पी.एच.डी. हो गए हैं कि उनकी संख्या अत्यधिक हो गई- व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि चौराहे पर पाँच व्यक्ति घायल हो गए और वे पाँचों हिन्दी के डॉक्टर थे। वे व्यंग्य करते हैं कि मैंने भी चरण छूने के बहाने टाँगें खींची हैं देखिए-

मैंने खुद कुछ लोगों के चरण छूने के बहाने उनकी टाँगें खींची हैं। लंगोटी धोने के बहाने लँगोटी चुराई है। श्रद्धेय बनने की भयावहता मैं समझ गया था। वरन् मैं समर्थ हूँ। अपने आपको कभी का श्रद्धेय बना लेता। मेरे ही शहर में कॉलेज के एक अध्यापक थे। उन्होंने अपने नेमप्लेट पर खुद ही 'आचार्य' लिखवा लिया था। मैं तभी समंझ गाया था कि इस फूहड़पन में महानता के लक्षण हैं। आचार्य बम्बईवासी हुए और वहाँ उन्होंने अपने आपको 'भगवान रजनीश' बना डाला। आजकल वह फूहड़ से शुरू करके मान्यता प्राप्त भगवान हैं। मैं भी अगर नेम-प्लेट में नाम के आगे 'पण्डित' लिखवा लेता तो कभी का 'पण्डित जी' कहलाने लगता।

सोचता हूँ, लोग मेरे चरण अब क्यों छूने लगे हैं? यह श्रद्धा एकाएक कैसे पैदा हो गयी? पिछले महीनों में मैंने ऐसा क्या कर डाला? कोई खास लिखा नहीं है। कोई साधना नहीं की। समाज का कोई कल्याण भी नहीं किया। दाढ़ी नहीं बढ़ायी। भगवा भी नहीं पहना। लोग बुजुर्ग होने पर कभी चरण छू लेते हैं-

लोग तो वृद्धों के कमीनेपन पर पैर छू लेते हैं। परसाई जी के शेष व्यंग्य को हम प्रस्तुत कर रहे हैं-

मेरा कमीनापन अभी श्रद्धा के लायक नहीं हुआ है। इस एक साल में मेरी एक ही तपस्या है- टाँग तोड़कर अस्पताल में पड़ा रहा हूँ। हड्डी जुड़ने के बाद भी दर्द के कारण टाँग फुर्ती से समेट नहीं सकता। लोग मेरी इस मजबूरी का नाजायज फायदा उठाकर झट मेरे चरण छू लेते हैं। फिर आराम के लिए मैं तख्त पर लेटा ही ज्यादा ही मिलता हूँ। तख्त ऐसा पवित्र आसन है कि उस पर लेटे दुरात्मा के भी चरण छूने की प्रेरणा होती है।

क्या मेरी टूटी टाँग में दर्द की तरह श्रद्धा पैदा हो गयी है? तो यह विकलांग श्रद्धा है। जानता हूँ, देश में जो मौसम चल रहा है, उसमें श्रद्धा की टाँग टूट चुकी है। तभी मुझे भी यह विकलांग श्रद्धा दी जा रही है। लोग सोचते होंगे- इसकी टाँग टूट चुकी है। यह असमर्थ हो गया। दयनीय है। आओ हम इसे श्रद्धा दे दें।

हाँ, बीमारी में से श्रद्धा कभी-कभी निकलती है। साहित्य और समाज के एक सेवक से मिलने मैं एक मित्र के साथ गया था। जब वह उठे तब उस मित्र ने उनके चरण छू लिए। बाहर आकर मैंने मित्र से कहा, "यार तुम उनके चरण क्यों छूने लगे? मित्र ने कहा, "तुम्हें पता नहीं है, उन्हें डायबिटीज हो गया है।" अब डायबिटीज श्रद्धा पैदा करे, तो टूटी टाँग भी कर सकती है। इसमें कुछ अटपटा नहीं है। लोग बीमारी से कौन से फायदे नहीं उठाते। मेरे एक मित्र बीमार पड़े थे। जैसे ही कोई स्त्री उन्हें देखने आती, वह सिर पकड़कर कराहने लगते। स्त्री पूछती, "क्या सिर में दर्द है?" वे कहते "हाँ सिर फटा पड़ता है।" स्त्री सहज ही उनका सिर दबा देती। उनकी पत्नी ने ताड़ लिया। कहने लगी, "क्यों जी, जब कोई स्त्री तुम्हें देखने आती है तभी तुम्हारा सिर क्यों दुखने लगता है?" उसने जवाब भी माकूल दिया कहा, "तुम्हारे प्रति मेरी इनती निष्ठा है कि परस्त्री को देखकर मेरा सिर दुखने लगता है। जान प्रीत-रस इतनेहु माहीं।"

श्रद्धा ग्रहण करने की भी एक विधि होती है। मुझसे सहज ढंग से अपनी श्रद्धा ग्रहण नहीं होती। अटपटा जाता हूँ। अभी 'पार्ट टाइम' श्रद्धेय ही हूँ। कल दो आदमी आए। वे बात करके जब उठे, तब एक ने मेरे चरण छूने को हाथ बढ़ाया। हम दोनों ही नौसिखिए। उसे चरण छूने का अभ्यास नहीं था, मुझे छुआने का। जैसा भी बना उसने चरण छू लिये पर दूसरा आदमी दुविधा में था। वह तय नहीं कर पा रहा था कि मेरे चरण छूये या नहीं। मैं भिखारी की तरह उसे देख रहा था। वह थोड़ा-सा झुका। मेरी आशा उठी। पर वह फिर सीधा हो गया। मैं बुझ गया। उसने फिर जी कड़ा करके, कोशिश की। थोड़ा झुका। मेरे पाँवों में फड़कन उठी। फिर वह असफल रहा। वह नमस्ते करके ही चला गया। उसने अपने साथी से कहा होगा- तुम भी यार, कैसे टुच्चों के चरण छूते हो। मेरे श्रद्धालु ने जवाब दिया होगा- काम निकालने को उल्लु से ऐसा ही किया जाता है। इधर मुझे दिनभर ग्लानि रही। मैं हीनता से पीड़ित रहा उसने मुझे श्रद्धा के लायक नहीं समझा। ग्लानि शाम को मिटी, जब एक कवि ने मेरे चरण छुए। उस समय मेरे एक मित्र बैठे थे। चरण छूने के बाद उसने मित्र से कहा, "मैंने साहित्य में जो कुछ सीखा है, परसाई जी से।" मुझे मालूम है, वह कवि सम्मेलनों मे हूट होता है। मेरी सीख का क्या यही नतीजा है? मुझे शर्म से अपने आपको जूता मार लेना था। मैं खुश था। उसने मेरे चरण छू लिये थे।

अभी कच्चा हूँ। पीछे पड़ने वाले तो पवित्रता को भी छिनाल बना देते हैं। मेरे ये श्रद्धालु, मुझे पक्का श्रद्धेय बनाने पर तुले हैं। पक्के सिद्ध-श्रद्धेय मैंने देखे हैं। सिद्ध मकरध्वज होते हैं। उनकी बनावट अलग होती है। चेहरा, आँखें खींचने वाली। पाँव ऐसे कि बरबस

आदमी झुक जाये, पूरे शरीर पर 'श्रद्धेय' लिखा होता है। मुझे ये बड़े बौड़म लगते हैं। पर ये पक्के श्रद्धेय होते हैं। ऐसे एक के पास मैं अपने मित्र के साथ गया था। मित्र ने उनके चरण छुये जो उन्होंने विकट ठण्ड में भी श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए चादर से बाहर निकाल रखे थे। मैंने उनके चरण नहीं छुए। नमस्ते करके बैठ गया। अब एक चमत्कार हुआ। होना यह था कि उन्हें हीनता का बोध होता कि मैंने उन्हें श्रद्धा के योग्य नहीं समझा था। हुआ उलटा। उन्होंने मुझे देखा और हीनता का बोध मुझे होने लगा- हाय, मैं इतना अधर्म हूँ कि अपने को इनके पवित्र चरणों को छूने के लायक नहीं समझता सोचता हूँ ऐसा बाध्य करने वाले रौब मुझे आछे श्रद्धेय में कब आयेगा।

श्रद्धेय बन जाने की इस हल्की-सी इच्छा के साथ ही मेरा डर बेकार है। श्रद्धेय बनने का मतलब है 'नान परसन'- 'अव्यक्ति' हो जाना श्रद्धेय वह होता है, जो चीजों को हो जाने दे। किसी चीज का विरोध न करे- जबकि व्यक्ति की, चरित्र की पहचान यह है कि वह किन चीजों का विरोध करता है। मुझे लगता है, लोग मुझसे कह रहे हैं तुम अब कोने में बैठो। तुम दयनीय हो। तुम्हारे लिए सब कुछ हो जाया करेगा। तुम कारण नहीं बनोगे। मक्खी भी हम उड़ायेंगे।

और फिर श्रद्धा का यह दौर है देश में? जैसा वातावरण है, उसमें किसी को भी श्रद्धा रखने में संकोच होगा। श्रद्धा पुराने अखबार की तरह रद्दी में बिक रही है। विश्वास की फसल को तुषार मार गया। इतिहास में शायद कभी किसी जाति को इस तरह श्रद्धा और विश्वास से हीन नहीं किया गया होगा। जिस नेतृत्व पर श्रद्धा थी। उसे नंगा किया जा रहा है। जो नया नेतृत्व आया है। वह उतावली में अपने कपड़े खुद उतार रहा है। कुछ नेता तो अण्डरवियर मे ही हैं। कानून से विश्वास गया। अदालत से विश्वास छीन लिया गया। बुद्धिजीवियों नस्ल पर ही शंका की जा रही है। डॉक्टरों को बीमारी पैदा करने वाला सिद्ध किया जा रहा है। कहीं कोई श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं।

अपने श्रद्धालुओं से कहना चाहता हूँ- "यह चरण छूने का मौसम नहीं, लात मारने का मौसम है। मारो एक लात और क्रान्तिकारी बन जाओ।

इस तरह स्पष्ट हो गया कि परसाई जी ने चरण स्पर्श पर ही व्यंग्य किया है। टाँगें तुड़वाकर औषधालय में भरती होने पर किसी ने चरण स्पर्श किये तो उसे विकलांग श्रद्धा का नाम दे दिया, उन्होंने निम्नलिखित तत्वों पर व्यंग्य किया है-

1. किसी व्यक्ति की जाति के आधार पर चरण छूने की श्रद्धा।
2. अयोग्य व्यक्ति पर श्रद्धा।
3. हिन्दी में पी.एच.डी. पाने वालों एवं उन गुरुओं पर जो अयोग्य को उपाधि दिला देते हैं एवं उनकी संख्या पर भी।
4. दूसरों द्वारा श्रद्धा का ढोंग कर श्रद्धेय की टाँग खींचने की बात।
5. खोखली श्रद्धा जैसे बीमार होने पर, टाँग टूटने पर लोग अस्पताल में भर्ती हों तो उनके प्रति श्रद्धा ज्ञापन।
6. श्रद्धा ग्रहण करने की योग्यता- कोई केवल उपक्रम करे वो लोग भ्रम में पड़ जाते हैं, उसे वे पार्ट टाइम श्रद्धा कहते हैं।
7. व्यंग्य से चरण स्पर्श की श्रद्धा। उदाहरण- जो कुछ सीखा परसाई से सीखा कहने वाला कवि सम्मेलनों में हूट होता है, आदि अयोग्यता पर व्यंग्य।
8. बनावटी श्रद्धा पर भी व्यंग्य है।

प्रश्न 24. 'विकलांग श्रद्धा का दौर' के आधार पर परसाई की भाषा-शैली व उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- भाषा—व्यंग्य की भाषा सदैव तीक्ष्ण होती है, वह दुधारी तलवार की तरह मार सकती है। वक्रोक्ति, अन्योक्ति समासोक्ति के माध्यम से लेखक बहुत कुछ कह जाता है। इस व्यंग्य में भी इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग है। साधारण बात भी घुमाकर कही जाती है, जैसे उलटवासी में कबीर कहता है-

उलटे कबीर की उल्टी बानी, बरसे कम्बल भागे पानी
और कुत्ता भौंके चोर इत्यादि।

परसाई की भाषा सबल, सशक्त व्यंजना परक है। उसमें मुहावरों का भी प्रचुर प्रयोग है। इस व्यंग्य में भी है, जैसे- टाँगें खींचना, टाँगे तोड़ना, लँगोटी धोना, विकलांग, श्रद्धा इत्यादि।

शैली—शैली भी व्यंग्यात्मक, भावात्मक है तथा विवरणात्मक और व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग परसाई जी ने इस छोटे से व्यंग्य में किया है। वह अत्यन्त मार्मिक और प्रहारक है। हिन्दी के डॉक्टरों का बनना, आज के प्राध्यापकों का घाल मेल न जाने कौन-कौन सी बातें हैं- सत सईया के दोहरे ज्यों नावक की तीर देखने में छोटे लगे घाव करे गम्भीर की तरह यह शैली तीखा प्रहार करती है।

अन्य विशेषताएँ—अन्य विशेषताओं में पहली बात तो यह है कि परसाई ने बड़े मनोरंजक ढंग से बात कही इसमें मनोरंजकता, मनोवैज्ञानिकता, समाजसुधार, व्यंग्य, नकली मुखौटा या आडम्बर सभी को प्रस्तुत किया है।

उद्देश्य—परसाई का उद्देश्य समाज सुधार एवं सत्य का उद्घाटन रहा है, जो 'शर्करा मिश्रित कुनैन' की तरह कड़वी बात को मधुर ढंग से कहना और प्रभाव करने की तरह है।

प्रश्न 25. "भोलाराम का जीव" नामक निबन्ध का सारांश संक्षेप में अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर- 'भोलाराम का जीव' एक तीखी व्यंग्य रचना है। इसमें वर्तमान शासन व्यवस्था और सरकारी मशीनरी पर अत्यन्त करारा व्यंग्य है। आज के शासन की यह स्थिति है कि चाहे जो भी विभाग हो, बिना रिश्वत दिये आपका काम नहीं हो सकता। सरकारी दफ्तरों में चल रही घूसखोरी, भ्रष्टाचार, लम्परत: ढिलाई, बेशरमी और उससे होने वाले प्रभाव पर एक तीखी चोट है। शैली शुरू से आखिर तक परिहासपूर्ण और चुस्त है।

भोलाराम एक सीधा गरीब आदमी है, जो जबलपुर से धमापुर मोहल्ले में नाले के किनारे रहता था। भूखमरी से तंग आकर वह एक दिन मर गया। कहानी यहीं शुरू होती है कि देह त्यागने के पाँच दिन बाद भी उसकी आत्मा यमराज के पास नहीं पहुँची और वह जीव यमराज के एक सीनियर और चुस्त दूत को चकमा देकर कहीं भाग गया। इस अवस्था पर यमराज के हेडक्लर्क, चित्रगुप्त परेशान हैं और जीव की खोज हो रही है।

हमेशा की तरह नारदजी पहुँच जाते हैं और वे परोपकार की भावना से यह सुझाव देते हैं कि वे उस जीव की खोज करने स्वयं जायेंगे। भारत-भूमि पर आकर वे पहले तो उसके परिवार से पूछताछ करते हैं तो पता चलता है कि भोलाराम को रिटायर हुए पाँच साल हो गए थे, परन्तु उसकी पेंशन के प्रकरण का अभी तक निकाल नहीं हो पाया था। सैकड़ों प्रार्थना-पत्र पहुँचाने के बाद भी उसे पेंशन नहीं मिली थी, परिणामस्वरूप पहले तो वह घर के बर्तन

बेच-बाच कर अपना और अपने बच्चों का पेट भरता रहा। जब बेचने को भी कुछ नहीं रहा तो कुछ फाकाकशी कुछ घोर निराशा और कुछ चिन्ता में वह मर गया।

नारद जी सम्बन्धित विभाग में फटकते फिरते हैं। कोई क्लर्क कोई सहायता नहीं करता। क्लर्कों की मनोवृत्ति परसाई जी व्यंग्य करते हैं कि, "उसने तीसरे के पास भेजा, तीसरे ने चौथे के पास भेजा, चौथे ने पाँचवे के पास भेजा। इस प्रकार नारद 25-30 बाबूओं के पास फिरते रहे। अन्त में ऑफिसर के पास पहुँचा दिये गये और उन्हें इस सत्य का ज्ञान कराया कि भोलाराम के प्रार्थना पत्रों पर वजन नहीं था। 'भोलाराम ने दरख्वास्तें तो भेजी थी पर वजन नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ गई होंगी।"

अन्त में, नारद जी की वीणा पर सौदा तय हुआ, क्योंकि नारद जी के पास नगद धन तो था नहीं। वीणा पर सौदा इसलिए तय हो गया कि- "मेरी लड़की गाना बजाना सीखती है, यह मैं उसे दूँगा। साधु सन्तों की वीणा से अच्छे स्वर निकलते हैं। लड़की जल्दी संगीत सीख गई तो उसकी शादी हो जायेगी।"

भोलाराम की फाइल लाई गई। बहुत मोटी हो गई थी। साहब के पूछने पर नारद जी ने फिर एक बार नाम बताया 'भोलाराम' और ..... "सहसा फाइल में से आवाज आई"- 'कौन पुकार रहा है मुझे पोस्टमैन है क्या? पेंशन का आर्डर आ गया क्या?

यहाँ अटका था भोलाराम का जीव बेचारा जाता भी कैसे? वह तो मर गया था। परन्तु उसके बाल-बच्चे तो जीवित थे उनका क्या होगा? ■

प्रश्न 26. "सत्य को इसी तरह दांतों से पकड़ा जाता है।" इस कथन से नेताजी का क्या अभिप्राय है? 'एक दीक्षान्त भाषण' निबन्ध के संदर्भ मे स्पष्ट करें।

उत्तर- 'एक दीक्षांत भाषण' शीर्षक निबन्ध में हरिशंकर परसाई ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के वर्तमान स्वरूप का युक्तियुक्त विवेचन किया है। लेखक ने आज के नेतागण के कपटपूर्ण व्यवहार को कुशलता से निरूपित किया है।

नेताजी के शब्दकोष में सत्य शब्द का अर्थ अवसरवादिता है। उनका सत्य है- ईमान, धर्म इत्यादि सात्विक गुणों का परित्याग करना। प्रत्येक अनैतिक कार्य करने के लिए वे सत्य शब्द का प्रयोग करते हैं। उनके जीवन का सत्य मंत्री बनना था। ईमान तथा धर्म का परित्याग कर अनुचित तरीका का उन्होंने सहारा लिया। सरकार किसी भी दल की रही हो, वे उसमें मंत्री पद पर आसीन हुए। पार्टी बदलने में उन्होंने तनिक भी विलम्ब नहीं किया, क्योंकि वे इस सत्य को पकड़े हुए थे कि उन्हें मंत्री बनना है। उन्होंने छात्रों को परामर्श दिया कि यदि उनको (छात्रों) को सत्य डिग्री लेना है तो वे इसके लिए प्रश्न आउट करके तथा नकल करके डिग्री प्राप्त करें। यदि उनको इस सत्य की रक्षा के लिए अध्यापकों से मारपीट करने पड़े तो वह भी करें।

इस प्रकार लेखक ने नेताजी के द्वारा आज के इस कथित सत्य का यथार्थ उद्घाटित किया है। ■

प्रश्न 27. महादेवी वर्मा का जीवन परिचय एवं प्रमुख कृतियों के बारे में वर्णन कीजिए।

उत्तर-

महादेवी वर्मा का जीवन परिचय

महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद शहर में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। 1916 ई. में विवाह के कारण इनकी शिक्षा कुछ समय